वर्ष 37, अंक-6, नवंबर-दिसंबर, 2014

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698	प्रशासन अनुभाग	:	23370834
			अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
महानिदेशक	:	23378103 23370471	वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
			भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379386
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23370784	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
उप-महानिदेशक (ए.एस.)	:	23370228	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
			अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249	हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

नवंबर-दिसंबर, 2014

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

नई दिल्ली

संपादक

अरुण कुमार साहू

उप-महानिदेशक

आवरण : सस्मिता मिश्रा

('द विंटर', वॉटर कलर)

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : ddgas.iccr@nic.in

गगनांचल अब वेबसाइट पर भी उपलब्ध है। www.iccr.gov.in पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.

नई दिल्ली-110028

www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

हाइकु कविता के विकास में अनुवाद की पृष्ठभूमि (हिंदी और जापानी परिप्रेक्ष्य में) 5
डॉ. मिथिलेश दीक्षित

निर्गुण संतों की वैश्विक कर्मठ संस्कृति एवं प्रेम-भक्ति 9
डॉ. शुभंकर बनर्जी

टैगोर की कविता पर पाश्चात्य प्रभाव 12
दानबहादुर सिंह

हिंदी संस्कृति और समाज 19
गिरीश्वर मिश्र

राष्ट्रीय अस्मिता और वर्तमान कविता 23
आचार्य एस. शेषारत्नम्

ग्रामीण कथा साहित्य के सारस्वत प्रतिमान : रामवृक्ष बेनीपुरी 28
सीताराम पांडेय

भारतीय कला वैभव का प्रतीक : खजुराहो 32
राधाकांत भारतीय

कश्मीरी लोकनृत्य के कुछ ऐतिहासिक व सामाजिक आयाम 36
अवतारकृष्ण राजदान

कोटा राज्य के राजसी स्मारकों में अंकित पारलौकिक आस्थाएं 41
गौतम मोनिका

लोकरुचि की परिष्कृति में भिखारी ठाकुर का अवदान 45
धनंजय सिंह

यात्रा उज्जैन की 50
अल्पना अग्रवाल

दान—एक विहंगम दृष्टि 53
डॉ. कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'

मेघाडंबर में कौंधती विद्युल्लता : सुभद्राकुमारी चौहान 55
डॉ. दादूराम शर्मा

विश्व शांति एवं मानव-श्रेय के सनातन स्रोत 59
डॉ. श्याम बाला राय

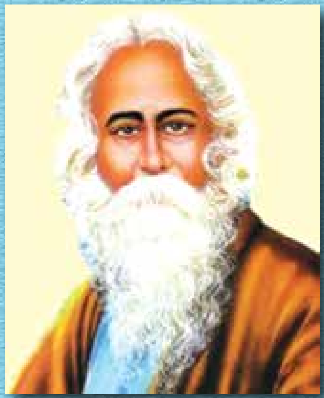

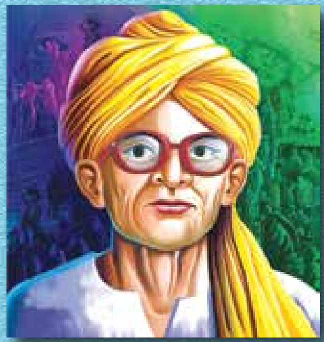

लोकगीतों की प्रासंगिकता 61
डॉ. राजन यादव

चंबा एक 'अचंबा' है 65
प्रवीण कुमार सिंह

कहानी

हरा-भरा रेगिस्तान 68
भगवती प्रसाद द्विवेदी

नहीं अम्मा 72
रणीराम गढ़वाली

दलदल 76
सुशांत सुप्रिय

रिश्ते 81
मूल/अनुवाद : कृष्ण शर्मा

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

इतिहास/सुख-दुःख, संबंध और मृत्यु 84
अमरेंद्र खटुआ

खुली पुस्तक/मैं आपका दर्पण हूं/झूठ नहीं बोलता दर्पण
अलेक्सांद्रा जिनोव्येवा 85

पत्थरों के ढेर पर.../उम्मीदों के चरागों में... 86
डॉ. मालिनी गौतम

मुक्तक 86
हरीलाल 'मिलन'

कहीं हद से गुजर जाए.../दिल के आंगन में.../ रिश्तों की भीड़ में... 87
अशोक आलोक

हाइकु 88
चक्रधर शुक्ल

किनारों को समंदर काटता है 88
डॉ. कृष्ण कुमार सिंह 'मयंक'

बाकी लोग हैं सूरत से गऊ 89
डॉ. कृष्ण कुमार सिंह 'मयंक'

लौट गए घन बिन बरसे/प्रीति के कथानक 89
रजनी मोरवाल

गुल खिलाने लगी/मुक्तक 90
डॉ. अशोक 'गुलशन'

मुहब्बत गीत वो है... 90
अशोक 'अंजुम'

तब मेरे पास कोई उत्तर नहीं था/अंतरदीप के बिना दीपावली 91
अखिलेश आर्येंदु

मेरे देश अब तो जाग/वो बोले 92
डॉ. कैलाश निगम

पुस्तक-समीक्षा

बालगीत एक नए अंदाज में 93
विमला पांडे

प्रकाशक की ओर से

समय की अविरल धारा में कई बार ऐसे मोड़ आते हैं, जहां समय भी पीछे पलटकर अतीत की घटनाओं को देखने के लिए विवश हो जाता है। हमारा यह सौभाग्य है कि हमारा वर्तमान जितना ऊर्जावान है, अतीत उससे भी अधिक गौरवशाली और सशक्त रहा है। साथ ही वह वर्तमान को प्रेरणा देने का काम भी कर रहा है।

इतिहास के पृष्ठों पर अनेक ऐसी घटनाएं अंकित हैं, जो न केवल भारतीयों को गौरवान्वित करती हैं बल्कि विश्व के मानस पटल पर भी अपनी विशिष्ट छाप छोड़ती हैं।

इन्हीं गौरवशाली पृष्ठों में से कुछ को हमने इस अंक में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। खजुराहो के मंदिर, कश्मीरी लोक नृत्य, लोकगीतों की प्रासंगिकता आदि लेखों से पाठकों को हमारी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर, उसकी विविधता एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रासंगिकता के बारे में पता चलेगा।

हमें उम्मीद है कि 'गगनांचल' के इस अंक को पढ़कर पाठकों को अपने अतीत को जानने और समझने की एक नई दृष्टि मिलेगी।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)

महानिदेशक

संपादक की ओर से

कला एवं संस्कृति किसी भी देश का आईना होती है। किसी भी देश के लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार को समझना हो, तो वह मार्गदर्शक का कार्य करती है।

आज के इस बाजारवादी युग में लोगों में अभी भी जो सहिष्णुता, मानवीय मूल्य तथा आपसी भाईचारा बचा हुआ है, तो केवल इसी वजह से कि कहीं न कहीं वह अपनी संस्कृति की मजबूत डोर से बंधा हुआ है। यह डोर समाज से व्यक्ति को न केवल जोड़ती है, बल्कि उसमें आत्मीयता का भाव भी जागृत करती है।

भारत का यह सौभाग्य रहा है कि उसकी कला एवं संस्कृति न केवल विविधतापूर्ण है बल्कि अपनी स्वर्णिम आभा से आज भी विश्व में हमें श्रेष्ठ स्थान दिलवाए हुए है।

'गगनांचल' के इस अंक में हमारे पाठक न केवल खजुराहो, चंबा, उज्जैन का भ्रमण करेंगे बल्कि वहां की कला एवं संस्कृति का दिग्दर्शन भी करेंगे। इसके साथ ही कोटा राज्य के राजसी स्मारकों में अंकित पारलौकिक आस्थाओं से भी रूबरू होंगे।

आशा है हमारा यह प्रयास सुधी पाठकों को अवश्य पसंद आएगा और हमें उम्मीद है कि पाठक अपने सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं से हमें अवश्य अवगत करवाएंगे।

(अरुण कुमार साहू)
संयुक्त सचिव एवं उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हाइकु कविता के विकास में अनुवाद की पृष्ठभूमि (हिंदी और जापानी परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. मिथिलेश दीक्षित

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. मिथिलेश दीक्षित की 35 पुस्तकें प्रकाशित। कविता, निबंध, समीक्षा लेखन के अलावा पत्रकारिता का अनुभव।

भारत और जापान के साहित्यिक विनिमय की परंपरा साहित्यजगत में एक बड़ी उपलब्धि है। ''मान्योशू (पौराणिक कविता-संग्रह), गेंजीमोनोगातारी (गेंजी की कहानी), ताकितोरी मोनोगातारी (बांस से निकली परी की कहानी), ऐसे कई साहित्यिक संकलन हैं, जो भारत-जापान के सदियों पुराने साहित्यिक विनिमय को उजागर करते हैं।''(डॉ. उनीता सच्चिदानंद, संस्कृति पृ. 51)। भारत और जापान के सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में भारतीय कला और संस्कृति के प्रेमी ओकाकुरा तेनशिन (सन् 1862-1913) का बहुत बड़ा हाथ रहा। वे कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर के अच्छे परिचित थे। वस्तुतः जापान के लिए भारत की छवि बौद्ध धर्म के माध्यम से बनी। बौद्ध धर्म भारत से चीन और कोरिया के द्वारा जापान पहुंचा। भारत की संस्कृति और बौद्ध धर्म को जापान ने अपने साहित्य में स्थान देना प्रारंभ कर दिया, परंतु वहां अधिकांश भारतीय साहित्य अंग्रेजी माध्यम से ही जाता रहा और वह भी प्रवासियों के द्वारा। वहां से आए पर्यटकों को भी भारत की बाह्य छवि ही देखने को मिल पाई थी।

भारत और जापान के मध्य राजनयिक संबंध सन् 1952 में स्थापित हुए थे। इससे दोनों देशों के बीच भाषा और संस्कृति के आदान-प्रदान के द्वार भी खुले। उससे पूर्व सन् 1911 में तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय में हिंदी के शिक्षण की सुचारु व्यवस्था प्रारंभ हो चुकी थी। सन् 1921 में ओसाका में विदेशी भाषा संस्थान की स्थापना हुई थी। भारत में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन कर चुके श्री के. दोई (1916-1983) ने तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करते हुए हिंदी में महत्त्वपूर्ण अनुवाद किए। हिंदी के प्रारंभिक पुरोधाओं में रेइचि गामो (1901-1977) की भूमिका भी उनसे कम नहीं थी। अनुवाद की परंपरा प्रारंभ हुई, तो अनुवाद और शोध के रूप में, भारत के महान रचनाकारों की कृतियों के अनुवाद होने लगे। तोशिया तानाका ने शोध, समीक्षा और अनुवाद के द्वारा जापानी साहित्य को समृद्ध किया। सुजुकि वोशियाकि ने 'ज्वालामुखी' पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया। कोगा कात्सुरो ने जापानी-हिंदी शब्द-कोश (1996 प्रकाशन वर्ष) तैयार किया। 'हिंदी-लिटरेचर' पत्रिका के संपादन प्रो. इशिरा हिदेआकी ने 'जापानी सोसायटी फॉर हिंदी लिटरेचर' संस्था स्थापित की। ताइगेन हाशीमीतो तथा हिसायोशी मियामोतो ने भारतीय दर्शन पर इनसाइक्लोपीडिया प्रकाशित किया।

विगत दो दशकों से जापान में भारतीय साहित्य के प्रति बहुत रूझान बढ़ा है और अब अंग्रेजी से न होकर सीधे हिंदी से जापानी में अनुवाद कार्य हो रहा है। चूंकि अनुवाद की प्रक्रिया और कला बड़ी जटिल होती है। अतः प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी प्रकृति के कारण और कभी-कभी रचनाकार की अनुभूति की गहनता और उसके चिंतन के स्तर के कारण अनुवादक की भूमिका बहुत चुनौतीपूर्ण हो जाती है। देखा जाए, तो पूर्णरूपेण आदर्शात्मक अनुवाद प्रायः असंभव ही होता है। अनुवाद के लिए सबसे आवश्यक है कि अनुवादक को मूल भाषा का भी ज्ञान हो और उसका संवेदनात्मक धरातल मूल रचनाकार के भावबोध तक पहुंचने में सक्षम हो। हिंदी में प्रायः अनुवाद मूल भाषाओं से न होकर अंग्रेजी अनुवादों से ही हुआ करते थे। अपने देश में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन भाषाओं के पठन-पाठन-अध्ययन हेतु अनेक संस्थाओं में व्यवस्था होती गई और इन भाषाओं की कृतियों के अनुवाद भी हुए, परंतु एशियाई भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा अत्यल्प रूप में बहुत बाद में हुई। प्रो. सत्य भूषण वर्मा के प्रयासों से जापानी से हिंदी तथा हिंदी से जापानी भाषा में अनुवाद की प्रवृत्ति विकसित होने लगी। प्रो. सत्यभूषण वर्मा की 'जापानी कविताएं' सन् 1977 में प्रकाशित हुई, जिसमें 10 तांका और 40 जापानी हाइकु का उन्होंने अनुवाद प्रस्तुत किया था। अपने देश में हिंदी के साथ-साथ जापानी हाइकु (भले ही अनुवाद के रूप में हों) का प्रचार-प्रसार हो रहा है, परंतु जापान में हिंदी हाइकु का अधिक प्रचार नहीं हो पाया है। हिंदी हाइकु कविताओं का जापानी भाषा में अनुवाद करने वाले दो नाम अवश्य महत्त्वपूर्ण हैं—प्रो. क्यूया दोई और योशिआक सुबुकि, जिन्हें प्रारंभिक प्रेरणा के रूप में हम ले सकते हैं।

जापानी से हिंदी अनुवाद की समस्याओं में एक समस्या उसकी लिपि भी है, जिसके बारे में प्रो. सत्यभूषण वर्मा ने स्पष्ट किया है—''जापानी में ध्वनिमूलक काना-लिपियों

हीरागाना और काताकाना के अतिरक्त भावमूलक चित्राक्षरों का प्रयोग भी होता है, जिन्हें अंग्रेजी में 'इडियोग्राम' कहा जाता है। हिंदी में हम इन्हें भावाक्षर कह सकते हैं। इन भावाक्षरों का प्रयोग अनुवादक की क्षमता को उसके भावाक्षरों के ज्ञान के साथ सीमित कर देता है। भावाक्षरों का प्रयोग चीनी भाषा में भी होता है पर जापानी में अधिक होता है, लेकिन चीनी में भावाक्षर का पाठ निश्चित और स्थिर है। जापानी में एक ही भावाक्षर संदर्भ-भेद से कई तरह से पढ़ा जा सकता है। भावाक्षरों का प्रयोग भाषा में सामासिकता और अर्थ-गांभीर्य ला देता है। एक ही भावाक्षर या भावाक्षरों के संयोग से बना हुआ एक शब्द भी कभी इतना कुछ कह देता है कि उसे व्यक्त करते हुए अनुवाद की ध्वनिमूलक लिपि के समानांतर शब्द में अर्थमयता लुप्त हो जाती है।'' (जापानी हाइकु और आधुनिक हिंदी कविता, पृ. 65)

इसके साथ ही जापानी भाषा की एक प्रमुख प्रकृति है उसकी लयात्मकता। जापानी अक्षर स्वरांत होते हैं, अतः कविता में गीतात्मकता का प्रवाह रहता है। अनुवाद में यह प्रवाह नहीं आ पाता। हालांकि प्रो. वर्मा जैसे अनेक विद्वान यह मानते हैं कि जापानी भाषा अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिंदी के अधिक निकट है। प्रो. वर्मा का कथन यहां दृष्टव्य है—''जापानी भाषा की रूप-रचना का हिंदी से बहुत साम्य है। जापानी वर्णमाला की ध्वनियां अत्यंत सीमित हैं और वे देवनागरी में सुविधापरक यथा उच्चारण लिखी जा सकती हैं। देवनागरी की मूर्द्धन्य और महाप्राण ध्वनियां तथा 'ल' जापानी में नहीं है। स्वर केवल पांच हैं—आ, इ, उ, ए, ओ। प्रत्येक व्यंजन किसी स्वर के साथ संयुक्त होकर ही लिखा जा सकता है। अतः जापानी लिपि में प्रत्येक अक्षर स्वरांत है। अनुनासिक या हलंत न् एकमात्र अपवाद है।'' (जापानी हाइकु और आधुनिक हिंदी कविता, पृ. 64)

हाइकु एक लघुकाव्य विधा है, जिसका सौंदर्य अमिधा में या शब्दों में न होकर संकेत में या बिंब में निहित है, अतः अनुवाद की प्रक्रिया सरल नहीं रह जाती। इसके बावजूद अनूदित साहित्य की जो अनेकपक्षीय उपयोगिता और प्रयोजनशीलता होती है, उसे भी नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि उससे सभी देश परस्पर जुड़े हैं और वे संस्कृति, धर्म, समाज, कला आदि से परिचित होते हैं। महादेवी वर्मा ने अनुवाद कार्य को इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण माना था। सप्तपर्णा (पृ. 69) में अभिव्यक्त महादेवी के कथन को प्रो. वर्मा ने उद्धृत किया है, ''युग-विशेष की कृती स्रष्टा की अनुभूतियों की पुनरावृत्ति सहज नहीं होती। कवि जब अपनी अनुभूतियों की भी यथातथ्य आवृत्तियां करने में असमर्थ रहता है, तब युगांतर के किसी कवि की अनुभूतियों के संबंध में तादात्म्यमूलक आवृत्ति आवश्यक ही रहेगी, जिसमें वह देश-काल के व्यवधान पार करके किसी कवि की अनुभूति को नवीन वाणी दे सके।''

कभी-कभी एक ही कविता का अनुवाद अपनी-अपनी काव्यप्रतिभा के अनुसार अनेक व्यक्ति करते हैं। जापानी कवि फुजिवारा मिचिनोबु की एक कविता है—

''आकेनुरेबा
कुरुरु मोनो तो वा
शिरिनागारा
नाओ उरामेशिकि
आसाबोराके का ना।''

इसका अनुवाद अज्ञेय ने किया है—

''भोर में जान रहा हूं
फिर आएगी रात
किंतु यह उगता दिन
फिर भी तो सहा नहीं जाता।''
(नया प्रतीक, अक्टूबर, 1975, पृ. 50)

इला डालमिया का अनुवाद है—

''भोर में
यह जानते हुए भी
कि अंधेरा फिर होगा
चढ़ते दिन पर
कितना चिढ़ता हूं।''
(नया प्रतीक, पूर्णांक, पृ. 63)

प्रो. सत्यभूषण वर्मा का अनुवाद है—

''बीती जो रात
वह फिर आएगी
यह जानते हुए भी
अप्रिय है
भोर का होना।''
(जापानी कविताएं, पृ. 17)

साहित्यिक और शैक्षिक संस्थाओं से भी विभिन्न भाषाओं के अनुवाद कार्य को बढ़ावा मिलता है। सन् 2002 में जापान और भारत के राजनयिक संबंधों की पचासवीं वर्षगांठ भारत और जापान में धूमधाम से मनाई गई थी। इससे दोनों देशों के सांस्कृतिक और साहित्यिक अवदानों का भी प्रचार-प्रसार हुआ। सन् 2004 में 'इंडो जापान एसोसिएशन फॉर लिट्रेचर एंड कल्चर' और सन् 2005 में अंतरराष्ट्रीय ताकिबोकु अध्ययन संस्था (जापान) की स्थापना हुई थी। नवंबर 18-19,2005 में दिल्ली (भारत) में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन संपन्न हुआ था। सन् 2007 में भारत और जापान के सांस्कृतिक संबंधों की पचासवीं वर्षगांठ पर भारत और जापान दोनों ही देशों में अनेक आयोजन संपन्न हुए थे। सन् 2011 में लखनऊ (भारत) में डॉ. मिथिलेश दीक्षित द्वारा 'हिंदी हाइकु परिषद्' का गठन हुआ था, जिससे भविष्य में दोनों भाषाओं के अंतरसंबंधों को बल मिलेगा।

दोनों देशों की पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भारत-जापान के साहित्य का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हुआ, विशेषकर हाइकु कविता का। सन् 1975 (अक्टूबर) का 'नया प्रतीक' का जापानी-साहित्य विशेषांक निर्गत हुआ था। इसमें बाशो, बुसोन और इस्सा की हाइकु-कविताओं के अनुवाद हैं, जो संभवतः अज्ञेय द्वारा किए गए थे। हाइकु कविताओं के क्षेत्र में अज्ञेय को प्रमुख अनुवादक के रूप में प्रसिद्धि मिली।

प्रो. सत्यभूषण वर्मा ने भी उनकी प्रशंसा की थी। एक कवि होने के नाते अज्ञेय ने कवि की मूल अनुभूति तक पहुंचने का प्रयास किया। प्रो. तोशियोतनाका ने लिखा है, ''अज्ञेय को हाइकु के अनुवाद कार्य में जितनी सफलता मिली, उतनी किसी जापानी भाषाविद् विदेशी लेखक को भी नहीं मिली थी।'' (हाइकु और अज्ञेय, धर्मयुग, 19 अक्तूबर, 1966, पृ. 17)। भारत में सबसे पहले दो जापानी कविताओं के उर्दू अनुवाद जनवरी, 1936 में उर्दू पत्रिका 'साकी' (दिल्ली) में प्रकाशित हुए थे। उनमें से एक कविता है—

''त्सुयु नो यो वा
त्सुयु नो यो नागारा
सारिनागारा।''

उर्दू में कविता है—

''यह दुनिया शबनम के कतरे जैसी है
बिल्कुल शबनम के कतरे जैसी
फिर भी कोई हर्ज नहीं।''

डॉ. प्रभाकर माचवे ने इसको प्रस्तुत किया—

''शबनम की दुनिया
शबनम की दुनिया है और फिर भी
और फिर भी।
(भारत और एशिया का साहित्य पृ. 276)

एक अनुवादक के रूप में प्रभाकर माचवे का प्रदेय कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने हाइकु (जापानी) के सर्वाधिक अनुवाद किए थे। डॉ. नायक के अनुसार उनके 250 हाइकु कविताओं के अनुवाद तो अप्रकाशित ही रह गए थे। जब अज्ञेय को इस काव्य के अनुवाद कार्य में अत्यधिक श्रेय मिल रहा था, तब रीवा के प्रो. आदित्य प्रताप सिंह ने हाइकु के अनेक भाषाओं में अनुवाद किए थे और बहुभाषाविद् होने के कारण उन्होंने अनेक भाषाओं एवं बोलियों में भी हाइकु सृजित किए थे।

प्रो. सत्यभूषण वर्मा और अज्ञेय दोनों ही जापानी हाइकु को भावबोध की दृष्टि से भारतीय चिंतन के अधिक निकट मानते रहे हैं। स्वयं कवि होने के कारण तथा 1957 में जापान जाने के कारण अज्ञेय के हिंदी अनुवाद अपेक्षाकृत अधिक सटीक लगते हैं। प्रो. सत्यभूषण वर्मा ने जापानी कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद का दृष्टांत देते हुए अज्ञेय के हिंदी अनुवाद को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

बुसोन की कविता—

''हारु सामे या
मोनोगातारि युकु
मिनो तो कासा।''

कैनेथ का अनुवाद—

''In the rain of spring
An umbrella and-cost
Pass by conversing"

ब्लिथ का अनुवाद—

"Spring rain
A straw rain-coat goes chatting
With a bamboo hat.''

अज्ञेय का अनुवाद—

''वर्षा में वसंत की मैंने देखा
छाता एक, एक बरसाती
साथ-साथ जाते, बतियाते।''

अज्ञेय अपनी ओर से भी एक-दो शब्द कभी-कभी जोड़ देते हैं। उनके अनुवाद कला की एक विशेषता तो भाषागत है और अन्य है उनके कवि की व्यक्तिनिष्ठता।

जापानी कवि बाशो का बहुत प्रसिद्ध एक हाइकु है, संसार की अनेक भाषाओं में जिसके अनुवाद हुए हैं—

''फुरु इके या
काबाजु ताबिकोमु
मिजु नो आतो।''

रवींद्रनाथ टैगोर ने इसे बंगला में अनूदित किया—

''पुरोनो पूकुर
बैङ्गेर लाफ
जलेर शब्द।''

नीलमणि फूकन ने असमिया में अनुवाद किया—

''एटा पूरवा पूखूरी
पानीत डूब मरा
बेङ्गर शब्द।''

ब्लिथ का अंग्रेजी अनुवाद है—

"The old pond
A frog jumps in
The round of of the water."

अज्ञेय ने पहले इसका अनुवाद किया था—

''ताल पुराना
कूदा दादुर
गुड़ुप!''

पुनः उन्होंने (नया प्रतीक, अक्तूबर, सन् 1975 में) इसका अनुवाद इस रूप में किया—

''ताल पुराना
कूदा दादुर
पानी का स्वर!''

बाशो की एक कविता और है, जिसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं। किसी ने तुकबंदी का सहारा लिया, तो किसी ने बहुत विस्तार दे दिया, परंतु अज्ञेय ने संक्षेप में कविता को कविता में ही, पूरी भाव व्यंजना के साथ चित्रित कर दिया—

बाशो— ''नात्सु-गुसा या
त्सुवामोनो दोमो गा
युमे नो आतो।''

अज्ञेय— ''यह सावन की दूब
हरे सपने ये
खेत रहे वीरो के।''

डॉ. भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज' और डॉ. अंजलि देवधर ने जापानी हाइकु के अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद किए। डॉ. नियाज ने

स्फुट रूप से अनेक अनुवाद किए। प्रकाशन की योजना होते हुए भी वे उन्हें प्रकाशित नहीं करा पाए। डॉ. अंजलि देवधर ने अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। कोवायाशी इस्सा से संबंधित 'दूर का पर्वत' (The Distant Mountain), 'विश्वभर से बच्चों के हाइकु' (children's Haiku from Around th World) तथा 'भारतीय हाइकु' (Indian Haiku) उनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। डॉ. अंजलि देवधर की तांका शैली की भी अनूदित पुस्तक आई है, जिसका जापानी से अंग्रेजी में अनुवाद क्ले मैकाले (Clay Mc Auley) ने किया था। उसका अनुवाद हिंदी में डॉ. देवधर ने किया है। इसका नाम है—''ओगुरा ह्याकुनिन इश्शु' —100 कवियों की सौ कविताएं (Ogura Hyakunin Isshu–100 poems by 100 Poets)। इनके अतिरिक्त भी अनेक अनुवादक हैं, जो इस कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं।

अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में भी अनेक पुस्तकों के तथा हजारों हाइकुओं के भारतीय भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं, क्षेत्रीय और साहित्यिक बोलियों में अनुवाद हो रहे हैं।

उर्मिला कौल, नीलमेंदु जी, कृष्ण चैतन्य ने हिंदी से अंग्रेजी में अनुदित हाइकु प्रस्तुत किए हैं। मराठी भाषा में शिरीषपै ने जापानी से मराठी में अनुवाद किए तथा अन्य अनुवाद भी किए। मराठी की (साप्ताहिक) 'लोकप्रभा' 5 जुलाई, 1981 अंक हाइकु विशेषांक था। इसमें बाशो, बुसोन, इस्सा आदि अनेक रचनाकारों के हाइकु अनुवाद प्रकाशित हुए थे। गुजराती भाषा में डॉ. कमल पुंजाणी और डॉ. भगवतशरण अग्रवाल ने गुजराती से हिंदी में हाइकु अनुवाद किए। उड़िया में डॉ. लक्ष्मण प्रसाद नायक ने तथा कोंकणी में व.भ. बोरकर ने अनुवाद किए। तेलुगु में प्रो. गालि नासर रेड्डि तथा कन्नड़ में भा.वै. ललितांबा के नाम भी प्रकाश में आए हैं। पंजाबी में अमृता प्रीतम ने जापानी कविताओं के अनुवाद किए जो उनके द्वारा संपादित 'नागमणि' (पंजाबी पत्रिका) में प्रकाशित हुए।

कश्मीरी लाल चावला ने भी हिंदी से पंजाबी में अनुवाद किए हैं। असमिया भाषा के रचनाकार नीलमणि फूकन ने असमिया में अनुवाद किए। उनकी अनूदित कविताओं का संकलन भी है, जिसका नाम है—'जापानी कविता'। इसमें 73 जापानी कवियों की 93 कविताएं संकलित हैं। रामनिवास 'पंथी' की पुस्तक 'वर्तमान की आंखें' में अवधी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला आदि भाषाओं में हाइकु के अनुवाद हैं। नेपाली में डॉ. रामदयाल 'राकेश' ने भी अनुवाद किए हैं। डॉ. भगवत शरण अग्रवाल की पुस्तक 'अर्थ' में उनके हाइकु के अनेक भाषाओं में अनुवाद हैं। डॉ. रामनिवास 'मानव' की 'बूंद-बूंद सागर' पुस्तक में भी हाइकु के अनेक भाषाओं में अनुवाद हैं। डॉ. मिथिलेश दीक्षित के हाइकुओं के भी अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। उनकी अनुवाद की हाइकु पुस्तकें हैं—'आशा के बीज' (सीड्स ऑफ होप) तथा 'धरा के रंग'। इस प्रकार हाइकु कविता के मौलिक सृजन के साथ-साथ अनुवादों की भी परंपरा द्रुतगति से आगे बढ़ रही है तथा जालघरों के माध्यम से भी लाखों पाठकों तक पहुंच कर हाइकु साहित्य से उन्हें परिचित करा रही है।

जी-91, सी, संजयगांधीपुरम्,
लखनऊ-226016 (उ.प्र.)

निर्गुण संतों की वैश्विक कर्मठ संस्कृति एवं प्रेम-भक्ति

डॉ. शुभंकर बनर्जी

डॉ. शुभंकर बनर्जी पिछले 37 वर्षों से स्वतंत्र लेखन में संलग्न हैं। नई दिल्ली में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में विश्व शांति प्रबोधक महासंघ द्वारा 'हिंदी सेवी सम्मान' से सम्मानित।

संत कबीर की वाणी है, 'भूखे भजन न होत गोपाला।' संस्कृति, संस्कार, सभ्यता, श्रद्धा-भक्ति आदि सात्विक गुणों के साथ-साथ समुचित भोजन भी आवश्यक है। एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति की इस मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति के लिए, निर्गुण धारा की भक्ति परंपरा के अग्रणी संत कबीर ने ही इसका समाधान करने हेतु परमात्मा परमेश्वर परब्रह्म से सविनय प्रार्थना की, ''सांई इतना दीजिए जामे कुटुंब समाए, मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाए।''

कुटुंब (परिवारजन) के साथ-साथ अपनी और अतिथि की भूख का निवारण हो, यह हर प्राणीमात्र की मूलभूत आवश्यकता है। साधारणतः प्राणियों की सहज प्रवृत्तियों में आहार, निद्रा, मैथुन, भय आदि हैं, जिसमें से स्वाभाविक तौर पर 'आहार' ही सबसे शक्तिशाली तथ्य है। न केवल मानव बल्कि समस्त प्राणी जगत को जन्म से मृत्यु तक आहार की आवश्यकता होती है। यहां तक कि पेड़-पौधों को भी फोटोसिंथेसिस की सहायता से पंच तत्व की भूमिका के द्वारा भोजन की पूर्ति करनी पड़ती है। इस तरह से सभी 'जीव और वनस्पति' जगत अपने आहार की समुचित व्यवस्था हेतु प्रयासशील (या क्रियाशील) रहते हैं। अपने दैनिक जीवन की क्रियात्मकता में आहार प्राप्त करना भी एक प्रमुख लक्ष्य है।

सभी प्रकार के सजीव प्राणी तथा जीवों में मानव सर्वाधिक सचेतन प्राणी है। इसी चैतनावस्था के कारण संपूर्ण मानव जाति अपनी सहज प्रवृत्तियों पर न केवल नियंत्रण प्राप्त करती है, बल्कि उसे समुचित दिशा भी प्रदान करती है। परंतु ठीक इसके विपरीत मानव जाति उन सहज प्रवृत्तियों को संपूर्णतः नकार भी देती है। यह एक बिल्कुल 'निराला-अनोखा' समाज होता है, जिसका संचालन भक्तजन करते हैं। भक्त अपने आपको संपूर्णतः अपने इष्टदेव के प्रति समर्पित करते हैं और समर्पण की इस प्रक्रिया में भक्त अपनी सहज प्रवृत्तियों पर भी विजय प्राप्त करने के अपने उद्देश्य की साधना सफल करते हैं। परंतु प्रश्न यहां फिर वही उठता है—''भूख तो आखिर भूख ही है, उसका निवारण कैसे हो?'' साधारण प्राणी से लेकर संत-महापुरुषों तक, सभी को भूख लगती, वे सभी भूख से व्याकुल होते हैं। भारत के संत-महात्माओं ने इसे निवारण हेतु व्यापक 'मानव-चिंतन' किया है।

मध्ययुगीन भक्तिकाल के भक्तों ने परब्रह्म को समर्पित आरतियों की रचनाएं कीं। इन आरतियों या प्रार्थनाओं में परमात्मा प्रभु की स्तुति की जाती है। 'परमेश्वर सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर' से निवेदन करके उनसे कुछ मांगा जाता हे। मांगने का यह आयाम विविधतापूर्ण हो सकता है। उदाहरण के तौर पर परब्रह्म के चरण-कमल का अनुसरण (या अनुकरण) हो सकता है, उनके दर्शन की अभिलाषा हो सकती है, पार्थिव (सांसारिक) कष्टों अर्थात् 'भव रोग' से मुक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना हो सकती है। परंतु भक्तिकाल के कुछ संत सकर्मक भक्ति में भी विश्वास करते थे, अर्थात् उन्हें श्रमजीवी वृत्ति से जुड़े महात्मा कहा जा सकता है। कहने का निहितार्थ यह है कि ऐसे भक्त कवियों ने भक्ति में लीन होने के साथ-साथ अपना कामकाज भी किया। वे अपनी आजीविका, बस कुटुंबजन के साथ-साथ संत जनों सहित अपनी भूख के निवारण हेतु अपनाते थे। संत कबीर जुलाहे का काम करते हुए अपनी खड्डी चलाते थे, संत रविदास जूते गांठते थे, संत नामदेव कपड़े रंगते थे तथा संत धन्ना खेती करते थे। साधारणतः ऐसे भक्त कवि धरती से जुड़े सामान्य जन थे तथा कुछ सीमा तक निर्धनता का सामना करते हुए ही अपना जीवन निर्वाह करते थे।

उन्हें न तो अपनी साधना या भक्ति पर अभिमान था और न ही पांडित्य का कोई अहंकार था। परमेश्वर की भक्ति में लीन होने का अभिमान भी नहीं था और दूसरी ओर मोह-माया से मुक्ति प्राप्ति की लालसा भी नहीं थी। अतः ऐसे संत संसार में रहते हुए, सांसारिक संबंधों का पालन करते थे। वे अपने दैनिक उत्तरदायित्वों का बखूबी पालन करते थे। वे महात्मा होते हुए भी, सामान्य जनता की ही तरह घर-गृहस्थी की चिंता करते थे। सामान्य जीवन जीने की प्रक्रिया अपनाते हुए, आम आदमी की तरह सांसारिक आकांक्षाओं की पूर्ति करने का दायित्व निभाकर परब्रह्म की भक्ति के रस में लीन रहते थे।

सर्वाधिक रोचक तथ्य यह भी था कि ऐसे भक्त कवियों की मांगें भी सामान्य व्यक्तियों की तरह ही थीं। अपने परमात्मा के प्रति उनका क्रोध भी आम आदमियों की तरह था। इस आध्यात्मिक क्रांति के अग्रणी सूत्रधार

संत कबीर ने कहा, ''भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै।'' (यदि आप मेरी भूख की समस्या का समाधान नहीं कर सकते हैं तो अपनी जपमाला वापस ले लो, भूखे पेट मुझसे भक्ति नहीं होती है)। अतः उन्होंने कहा, ''माधो कैसी बने तुम संगे, आपनी देहु व लेवहु भंगे।'' (यदि तुम मेरी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी नहीं करोगे तो, हे माधव, मैं मांग कर लूंगा)।

संत कबीर ने परमेश्वर से कहा, ''यह मेरा लोभ नहीं हैं, यह तो मेरे जीवित रहने की बुनियादी जरूरत है।'' अतः उन्होंने अपनी न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं की एक संक्षिप्त (परंतु पूर्ण) सूची परब्रह्म के सामने प्रस्तुत कर दी, ''मुझे प्रतिदिन दो सेर आटा, पाव भर घी, कुछ नमक, आधा सेर दाल चाहिए ताकि मैं सपरिवार (कुटुंबजन और साधु सहित) दोनों समय का भोजन कर सकूं। मुझे चारपाई, सिर के नीचे रखने का तकिया, नीचे बिछाने की तलाई, ऊपर लेने के लिए ओढ़न भी चाहिए। तभी मैं ठीक से भक्ति कर सकूंगा। तभी मैं तुम्हारा नाम अच्छी तरह जप पाऊंगा। तभी मुझे संतुष्टि मिलेगी। जब भी मेरा मन मान जाएगा, मैं हरि भजन में मस्त हो जाऊंगा।''

भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण काल होने का स्थान दिया जाए, तो भी यह कदापि अनुचित नहीं होगा। इसी अवधि में हिंदी भाषा में श्रेष्ठ भक्ति साहित्य की रचना भक्त कवियों द्वारा की गई। भक्ति आंदोलन के महाकवि रचनाकारों ने ऐसे साहित्य की रचनाएं की जिसमें सांसारिकता और भौतिकता की विभिन्न अभिलाषाओं से बहुत ऊपर पहुंच कर भक्त को आध्यात्मिक प्रेम और तृप्ति की अनुभूति हुई।

ऐसे भक्त विशुद्ध भक्ति परंपरा का पालन करते हैं। पेट भरने के लिए आटा, दाल, घी और नमक की मांग तथा सोने के लिए चारपाई, रजाई-तलाई, सिरहाना आदि की इच्छा करना—नितांत भौतिक चाहत है। अतः भक्त तो अंततः मोक्ष (परमात्मा की परम प्राप्ति की उपलब्धि अर्थात् प्रेम भक्ति) से कम की आकांक्षा नहीं करता है। परंतु संत कबीर ने ठीक इसके विपरीत एक भक्ति-क्रांति का सूत्रपात किया और उन्होंने भक्ति की अमूर्त आराधना को 'वायवीय उच्च ऊंचाइयों' से नीचे उतार कर नितांत जन सामान्य के वास्तविक धरातल पर लाने की पहल की। उन्होंने इस कटु सत्य का प्रतिपादन किया कि एक भूखे व निर्धन व्यक्ति को ईश्वर भक्ति, समाज सेवा, देश प्रेम तथा अन्य विभिन्न उच्च आदर्श तभी शोभा देते हैं, जब उसके पेट में अन्न की ऊर्जा समाहित हो। भूख पेट हरि-भजन कहां तक संभव है। उसे तो प्रसाद सेवन करना ही होगा। गौड़ीय (बंग प्रदेश के) वैष्णव समाज में एक पंक्ति प्रचलित है, ''प्रसाद सेवा करिते हय सकल प्रपंच जय।'' अर्थात् सभी प्रकार की दुनियादारी पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रसाद सेवन करना आवश्यक है। संस्कृत साहित्य में एक उक्ति है, ''बुभुक्षितः किं न करोति पापम्?'' अर्थात् भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता है?

संत धन्ना जाट समुदाय के थे तथा खेती-बाड़ी करके अपनी आजीविका चलाते थे और साथ ही साथ हरि गुण गाने में तल्लीन रहते थे। अपने युग के श्रेष्ठ भक्तों में उनकी गणना की जाती थी। उन्होंने अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की कामना हेतु संत कबीर से भी दो कदम आगे बढ़कर अपनी रचना प्रस्तुत की। उन्होंने सामान्य भक्तों की तरह अपने परमेश्वर की आरती उतारने के बजाए आरता उतारने की पहल की, ''गोपाल तेरा आरता, जो जन तुमरी भगति करते, तिन काज संवारता।''

दरअसल उनके आरता में मोक्ष की कामना नहीं है, जन्म-मरण के आवागमन से मुक्ति की कामना भी नहीं है, किसी कल्पित स्वर्ग की लुभावनी छवि भी उनके सामने कदापि नहीं है। उनकी आकांक्षाएं एक मेहनत करने वाले श्रमजीवी कृषक की भांति इस पार्थिव समाज से जुड़ी हुई हैं। हालांकि उनके आरता में संत कबीर की ही तरह सीदा (आटा) और घी की मांग भी है। परब्रह्म के आरता उतारते समय उनका मन, ''दाल सीदा मांगउ, हमरा खुशी करै नित जीउ'' की अनुभूति करता है। इतना ही नहीं, इन भोजन सामग्रियों के अलावा उन्हें कुछ अतिरिक्त अनाज की भी आवश्यकता है। उन्हें तो अच्छे जूते और अच्छे कपड़े भी चाहिए। दूध देने वाली गाय और भैंस की भी उन्हें आवश्यकता है। सवारी करने के लिए उन्हें घोड़ी भी चाहिए। सर्वाधिक अहम मांग यह भी है कि उन्हें घर चलाने के लिए एक अच्छी गृहिणी भी चाहिए। इस विषय में उनकी वाणी इस प्रकार है, ''पन्हीया छादनु नीका, अनाजु मंगहु मत सीका। गऊ भैंस मंगहु लावेरी, इक ताजनि तुरी चंगेरी। घट की गीहनि चंगी, जबु धन्ना लेवे भंगी।''

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि भक्ति काल के निर्गुण एवं सगुण भक्तों में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंतर भी है। भक्तिकाल के अधिकांश सगुण भक्त कवि उच्च और कुलीन ब्राह्मण वंश के थे। ब्राह्मण कुलोद्भव होने के कारण तत्कालीन समाज में उनका भरपूर आदर-सम्मान था। उनके अनुयायी श्रद्धालु जनों में समृद्ध और संभ्रांत व्यक्ति सम्मिलित थे।

स्पष्ट है कि सगुण भक्त कवियों को भोजन, वस्त्र, घर आदि मूलभूत आवश्यक सामग्रियों की कमी नहीं होती थी। अतः निश्चिंत होकर सगुण भक्त कवि अपना जीवनयापन करने में समर्थ होते थे। दूसरी ओर अधिसंख्य निर्गुण भक्त निम्नवर्ग के समझे जाने वाले दुर्बल जाति से संबद्ध थे। उच्च वर्ण के भक्त और अन्य सवर्ण व्यक्ति भक्ति के क्षेत्र में असवर्ण एवं निर्धन वर्ग के भक्तों को प्रवेश की अनुमति नहीं देते थे। उच्च वर्ण के सगुण भक्ति मार्ग के व्यक्ति या भक्त निम्न वर्ण के निर्गुण भक्तों के 'भक्ति जगत' में प्रवेश को उनका अनुचित हस्तक्षेप तथा अवांछनीय चेष्टा समझते थे, जिसके परिणामस्वरूप भक्तिकाल की समाज व्यवस्था में इन निर्गुण संतों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं था।

उनकी भक्ति का स्तर सर्वोच्च था, फिर भी उनकी जाति की छाप पर ही उनका परिचय होता था। संत नामदेव छीपा थे, संत कबीर जुलाहा थे, संत सैण नाई थे, संत रविदास

चर्मकार थे, संत धन्ना जाट थे, संत सधना कसाई थे। इन निर्गुण संतों का जातिगत परिचय मानो कभी समाप्त नहीं होता था।

हालांकि सत्गुरु नानक देव और उनके परवर्ती गुरु साहबान खत्री थे, जिन्हें उच्च वर्ग का माना गया था। तत्कालीन जाति आधारित समाज में ऐसे महान संतों से यह अनिवार्यतः अपेक्षा थी कि वे भक्ति की उपलब्धि के साथ-साथ अपना पुश्तैनी कार्य भी करें और अपने जातिगत रोजगार से ही अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करें। परंतु विशेष तथ्य यह भी था कि उन्हें अपने पैतृक या पारंपरिक कार्य करने में न कोई दुविधा थी और न ही कोई संकोच था। उन्हें तो बस इस बात का संतोष था कि निम्नवर्ण में जन्म लेने के बावजूद उन्होंने 'परब्रह्म' परमात्मा की भक्ति में उस सर्वोच्च स्थान को प्राप्त कर लिया, जिसे उच्च वर्ण के महान भक्त भी प्राप्त नहीं कर पाए थे।

उल्लेखनीय है कि अधिकांश सगुण भक्तों ने स्मृति एवं श्रुति शास्त्र, विभिन्न संहिताओं, चारों वेदों (चतुर्वेदों), वेदांत, वेदांग, उपनिषदों, पुराणों, इतिहास (रामायण तथा महाभारत), श्रीमद्भागवत आदि ईश्वरीय ग्रंथों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। स्पष्ट है कि विद्वान सगुण भक्तों का आध्यात्मिक आधार सशक्त था। परंतु निम्न वर्ण के इन निर्गुण संतों को तो 'श्रुति एवं स्मृति' शास्त्रों के अध्ययन का अधिकार ही नहीं था। अतः निर्गुण भक्तों की शक्ति शास्त्रीय पूंजी तो बस उनकी निश्चल भक्ति की अनुभूति ही थी।

संत कबीर ने स्पष्टतः स्वीकार किया, ''मसी कागद छुओ नहीं, कलम धरै नहीं हाथ।'' (स्याही और कागज छुआ नहीं, हाथ से कभी कलम नहीं पकड़ी)। अतः उन्होंने यह भी स्पष्ट किया, ''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आखिन देखी।'' अंत में उन्होंने निष्कर्ष निकाला, ''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।'' (मोटी-मोटी किताबें पढ़ कर कोई विद्वान नहीं बना, परब्रह्म के प्रेम से ही सच्चे विद्वान बन सकते हैं।)

संत कबीर ने चेतावनी दी, ''तोरी उम्र गई बीत, तूने अजहू न कृष्ण कहौ?'' उन्होंने उपाय बताते हुए समाधान भी दिया, ''नाम हरि का जप ले बंदे, वरना फिर पछताएगा। तेरा क्या तू लाया था जो साथ लेकर जाएगा। खाली हाथ आया था और हाथ खाली जाएगा।''

इस तरह से इन निर्गुण भक्तों का एक मंच भी अनायास ही बन गया था। इन निर्गुण पंथियों ने एक सांस्कृतिक आंदोलन प्रस्तुत किया। इन संतों ने निम्न या दलित वर्ग के परिवारों में जन्म लेकर भी अपनी अनन्य भक्ति की शक्ति से परमेश्वर की कृपा प्राप्त की और महात्मा होने की लोक मान्यता प्राप्त की तथा इनकी लोक सांस्कृतिक भक्ति तथा संगीत-रचना की ख्याति पूरे विश्व में फैली। निर्गुण भक्ति की संस्कृति की प्रशंसा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हुई। निर्गुण भक्ति के वैश्विक मंच से उन्होंने अपनी रचनाओं में एक-दूसरे का उल्लेख तथा स्मरण भी किया तथा उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों की चर्चा भी की। उदाहरणतः संत कबीर सहित, नामदेव, त्रिलोचन, सधना तथा सैण का उल्लेख संत रविदास ने अपनी रचनाओं में किया, ''नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना, सैण तरे। कहि रविदास सुनहु रे संतहु, हरि जू ते सभै सटै।''

संत रविदास ने संत नामदेव की हरि भक्ति के विषय में व्याख्या दी, ''नामदेव प्रीति लगी हरि सेती, लोक छीपा कहै बुलाई। खत्री ब्राह्मण पिठि दे छोड़े हरि, नामदेव लीआ मुखि लाई।'' (अर्थात् नामदेव की हरि से प्रीति ऐसी लगी कि जिसे लोग छीपा कहते थे उसे हरि ने खत्री और ब्राह्मण जैसी सवर्ण जातियों को छोड़कर स्वीकार कर लिया)।

वास्तविकता यह है कि निर्गुण पंथी संत कर्मठ जीवन में आस्था रखने वाले 'भक्त और महात्मा' थे। स्पष्टतः वे पूरी तरह धरती से जुड़ी भक्ति परंपरा से संबद्ध थे। बहुजन सामान्य वर्ग तथा निर्धन एवं दलित समाज से वे जुड़े हुए थे। अतः उनकी अभिलाषाएं और आकांक्षाएं भी जन सामान्य की भावनाओं की ही अभिव्यक्ति थी।

अंततः यह उल्लेख करना अत्यावश्यक है कि निर्गुण पंथ की भक्ति संस्कृति का स्वरूप अंतरराष्ट्रीय है। गौड़ीय, वैष्णव तथा अन्य वैष्णव संप्रदाय की सगुण भक्ति, सूफी मतानुसार खुदाई इश्क तथा विभिन्न निर्गुण धाराओं के मार्ग यहां इस तरह सम्मिलित होते हैं, जैसे तीर्थराज प्रयाग में गंगा, यमुना एवं सरस्वती की धाराएं आपस में मिलकर त्रिवेणी संगम की नींव रखती हैं।

परमेश्वरीय प्रेम भक्ति का दिव्य मार्ग ऐसी 'विश्व संस्कृति' की अनोखी परंपरा है, जहां 'परब्रह्म' के भक्त अपने मालिक के प्रेम में मस्त होकर बस 'तू ही तू' बोलते हुए नृत्य-गीत करने में लीन हो जाते हैं। जीवन की कठोर वास्तविकता की अनुभूति करते हुए भी वे अपने मूल कार्य ('राम जपन तेरा काज है') को नहीं भूलते हैं। 'कर्म और परमेश्वर' के साथ तालमेल करके 'युगलबंदी' करने की अनोखी कला इसी 'विश्व संस्कृति' की देन है।

**श्री राधाकृष्ण निवास, 5ए, 4/9, स्वर्ग आश्रम,
वेस्ट मुखर्जी नगर के सामने, परमानंद चौक,
दीवार के पास, दिल्ली-110009**

टैगोर की कविता पर पाश्चात्य प्रभाव

दानबहादुर सिंह

सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन में सक्रिय डॉ. दानबहादुर सिंह की बारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मध्ययुगीन साहित्य, अर्वाचीन साहित्य, आधुनिक साहित्य, कविता और आलोचना लेखन के विषय।

महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर न केवल भारत, बल्कि विश्व की धरती और स्वर्ग के कवि थे। वह आनंद और अनासक्ति के ध्यान-व्यापार की साधना में मग्न थे। वह एक साथ कवि, पेंटर, कंपोजर, संगीतज्ञ, नाटककार, अभिनेता, प्रवक्ता और राष्ट्र नेता भी थे। वह एक भविष्यद्रष्टा, यथार्थवादी और उच्चकोटि के दार्शनिक थे। वह अपनी मातृभाषा बांगला के अलावा, अनेक भारतीय भाषाओं और विश्व की कतिपय समृद्ध भाषाओं के जानकार और अनुवादक भी थे। ऐसे प्रतिभाशाली युगांतरकारी और सौंदर्यबोधी कवि की बहुमूल्य रचनाओं पर पाश्चात्य प्रभाव की खोज करना अभीष्ट है। सर्वप्रथम उन्होंने सन् 1893 ई. में अपने को केवल एक कवि समझा और लिखा था—''The moment I begin to write poetry, I enter in to my true self; true for all time. I distinctly feel that there lies my true home... poetry is the sole refuge of all the deepest truths of my life,'' पुनः—''As for as I can see, it is in poetry that I am most at home... of all the muses, she is the one that comes closest to me,'' और इस संदर्भ में उन्होंने सन् 1931 ई. में लिखा—''As going round the long circling course of life, I have at parting time today the entire ircle in view, I well realize that there is just one thing to know me by, namely, that 'I am only a poet.''' ('आत्म परिचय', पत्रिका बंगला सन् 1931 ई. से उद्धृत)। कहने का अभिप्राय यह कि टैगोर को कविता करने में शाश्वत सत्य की अनुभूति हुई और उनकी काव्य-प्रतिभा को विश्व ने मान्यता प्रदान की।

उपर्युक्त विषय का विवेचन करते समय हमें पता चलता है कि जब टैगोर का जन्म हुआ, उस समय अर्द्धशताब्दी से भी अधिक काल तक बंगाली जीवन, साहित्य और विचार शृंखला पर पाश्चात्य प्रभाव धूमिल पड़ चुका था। सच तो यह है कि 19वीं शताब्दी में बंगाल का पुनर्भ्युदय व्यापक रूप से पाश्चात्य प्रभाव का ही एक परिणाम कहा जा सकता है। उनका लालन-पालन पाश्चात्य प्रभाव के वातावरण में गहराता गया और सत्रह वर्ष की किशोरावस्था में उन्होंने इंग्लैंड की पहली बार यात्रा की। उन्होंने वहां पर सन् 1878-80 ई. तक अर्थात् अनवरत रूप से दो वर्षों तक अध्ययन किया। पहली बार वह ब्राइटन गए और तदनंतर वह लंदन में अध्ययनरत रहे। यह वह समय था जब मेधावी बंगाली मन पश्चिम की समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता से लोभ संवरण न कर सका और उसकी ओर झुकाव बढ़ता ही गया। उन दिनों टैगोर जैसा मेधावी और ज्ञानोदीप्त से बढ़ कर बंगाल में और कोई परिवार उतना संवेदनशील नहीं था, जो पश्चिमी साहित्य, कला और चिंतन के क्षेत्र में बढ़-चढ़ कर आगे आया हो। इंग्लैंड से वापसी पर टैगोर ने पश्चिमी साहित्य और दर्शन में अपना पर्याप्त समय बिताया। घरेलू

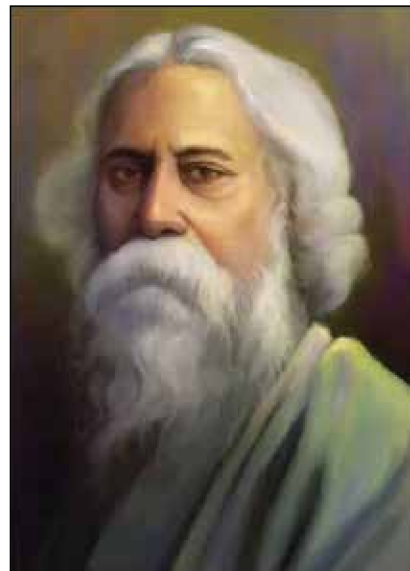

प्रभाव के अलावा, वह आरंभ में साहित्यिक सहयोगियों की संगति पाने में भाग्यशाली रहे। अपने बड़े भाई ज्योतिरिंद्रनाथ टैगोर के अलावा, उनके सहपाठियों में अक्षयचंद्र चौधरी, प्रियनाथ सेन, आशुतोष चौधरी और लोकेन पलित आदि नामोल्लेखनीय हैं। इन सबने पाश्चात्य साहित्य से उनके ज्ञान को प्रशस्त करने में अत्यधिक सहायता पहुंचाई। अपने संपूर्ण दीर्घ जीवन में उन्होंने पाश्चात्य देशों की यात्रा करने की कई बार इच्छा जाहिर की। 69 वर्ष की आयु में उन्होंने सन् 1930-31 ई. में अंतिम रूप से नौवीं बार यूरोप की यात्रा की थी।

टैगोर के गद्य निबंध, आलोचना, संस्मरण, यात्रा संबंधी डायरियां, पत्राचार और अनुवादों से तथा पश्चिम की बौद्धिक विरासत के सूक्ष्म गुण-दोष विवेचन आदि से उनके अगाध ज्ञान का पता चलता है। उन्हें ऐसी विरासत मिली

थी जिसने भारतीय ढांचे में एक सार्वभौम संस्कृति के प्रमुख तत्वों का निर्माण किया। कालांतर में विश्वभारती की स्थापना के भीतर उन्होंने इन सबका समन्वय करने में भगीरथ प्रयास किया। उन जैसे महाकवि के बारे में अमित रे ने अपनी 'शेषेर' कविता में अंग्रेजी और अन्य पश्चिमी साहित्य के अध्ययन संबंधी संस्मरणों में उनकी स्मृति को उजागर किया है। टैगोर जैसे महाकवि के संवेदनशील और समेकित मन के संपूर्ण अनुभवों के ऐंद्रिक भाग को उनका गहन अध्ययन रूपायित करता है। वस्तुतः ये संस्मरण उनके चेतन और अचेतन मन की स्वाभाविकता को प्रकट करते हैं। ये उनकी लोकप्रिय कविताओं के गहन संश्लिष्ट निर्माण में सहायक हुए।

हमें यहां एक बात स्पष्ट झलकती है कि टैगोर की कविता की भावग्रंथि अपने आप में इतनी प्राकृतिक साधन संपन्न और अनेकाकार थी कि उसे रूपायित करने में कठिनाइयां आईं। कहा जा सकता है कि यदि उन्होंने पाश्चात्य साहित्य से उदारतापूर्वक और अनुभूति शीलतापूर्वक कुछ ग्रहण किया है तो बदले में बहुत कुछ दिया भी है। यहां हम प्रख्यात् विद्वान जान बोजर की बात को उद्धृत करना चाहत हैं जिसे उन्होंने सन् 1931 ई. में उनके बारे में लिखा था—"He is India bringing to Europe a new divine symbol, not he cross, but the Lotus." अर्थात् वह भारत से यूरोप के लिए 'क्रास' के स्थान पर एक सर्वदा नूतन ईश्वरीय प्रतिमूर्ति अर्थात् 'कमल' लाए हैं—"The golden book of Tagore (Homage torabindranath Tagore from India and the world in celebration of his seventieth), Calcutta, सन् 1931, P. 40 से उद्धृत) पाश्चात्य 'क्रास' के ज्ञान से बंगाल नव जागरण का विशिष्ट रूप भारतीय 'कमल' की उद्बुद्ध चेतना से वहां पर नई लहर उठी। पाश्चात्य शिक्षा ने राष्ट्रीय विरासत के पुनरन्वेषण की और लोक-चेतना को सशक्त किया। 19वीं शताब्दी के दूसरे आधे भाग के आद्योपांत भारतीय राष्ट्रीय चित-शक्ति में बहुत बड़ी वृद्धि हुई। भारतीय मनीषा ने परिपक्वता की दिशा में साहसिक कदम बढ़ाया। देश के समृद्ध अतीत की सांस्कृतिक संपदा की महानता अथवा जागरूकता बंगाल में किसी भी परिवार के पास न थी। कवि के पिता महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोर स्वयं इस भारतीय विचार शृंखला में सराबोर हो गए और अपने परिवार के भीतर इस जागरूकता को उत्पन्न करने के लिए संनद्ध हो गए। टैगोर ने प्राचीन भारतीय साहित्य और दर्शन को पाश्चात्य संस्कृति के समानांतर लाने में अथक प्रयास किया। तदनुसार संस्कृत और पालि साहित्य तथा भारतीय दर्शन ने पाश्चात्य साहित्य और विचार-शृंखला की अपेक्षा टैगोर के लेखकीय व्यक्तित्व पर गौरवपूर्ण रचनात्मक प्रभाव डाला था।

एक अन्य प्रमुख प्रभाव था, मध्ययुगीन बंगाली वैष्णव कविता जिसमें उनकी मौलिक कविता की रचना और प्रगाढ़ कल्पना भरी हुई थी। तेरह वर्ष की किशोरावस्था में उन्होंने इस दिशा में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। आरंभकाल में उनकी कुछ कविताएं वैष्णव कविता की अनुभूतियों से आपूर्ण थीं और भानुसिंह ठाकुर वैष्णव कवि की रचनाओं के माध्यम से विश्व के समक्ष प्रकट की गई थीं, किंतु बांगला लोकगीत, लोक संगीत, बाउल और अन्य गीतों का योगदान शिथिल रहा और उन पर मध्ययुगीन कवि और संत कबीर का प्रभाव पड़ा। अंततोगत्वा महाकवि ने कबीर के महत्त्व को विधिवत स्वीकार किया। वास्तव में उनकी कविताओं पर मुख्य रूप से बांगला और संस्कृत साहित्य का अत्याधिक प्रभाव पड़ा। उन पर पाश्चात्य प्रभाव आंशिक कहा जा सकता है। पाश्चात्य साहित्य की तुलना में उनकी कविताओं की रचना पर देशज प्रभावों के बारे में पता लगाना अधिक श्रेयस्कर होगा। पूर्वकालीन रचनाओं को व्यापक और महत्त्वपूर्ण ढंग से ढूंढ निकाला जा सकता है। उनकी विचार शैली, दृष्टिकोण, कल्पना और अन्य संदर्भो को ढूंढने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

टैगोर की कविताओं पर वास्तविक प्रभाव और उसके भीतर से आती ध्वनि पाश्चात्य की अपेक्षा भारतीय और बंगाली दोनों ही स्वाभाविक लगती हैं। उनकी कविता के किसी महत्त्वपूर्ण उद्धरण को स्मरण करना जिस पर पाश्चात्य प्रभाव न पड़ा हो, सचमुच एक दुस्साध्य कार्य है। लेकिन किसी को भी इस प्रकार का उद्धरण बिना किसी भारतीय पृष्ठभूमि का ही ढूंढने में अथवा उसे स्मरण करने में देर नहीं लगेगी, 'शेष सप्तक' में चालीसवीं उनकी ऐसी रचना है, जो अत्यधिक प्रेरक एवं अगाध भावों से भरी है और वही अमर्त्य और चिरस्मरणीय भी कही जा सकती है। वह प्रत्यक्ष रूप से अथर्ववेद से प्रभावित कही जा सकती है।

उनकी कुछ और भी कविताएं हैं, जिन पर प्रत्यक्ष रूप से उपनिषदों के दो प्रसिद्ध परिच्छेदों का प्रभाव है। जहां तक वैयक्तिक लेखकों के प्रभावों का प्रश्न है, उसके बारे में विश्लेषण से ही पता लगाया जा सकता है। टैगोर की कविता पर कालिदास की रचनाओं का प्रभाव युक्तिसंगत है और किसी भी पाश्चात्य कवि की तुलना में बढ़-चढ़ कर है। 'मेघदूत' (1890) से लेकर 'मानसी' से 'यक्ष' (1938) तक और 'अनुसूया' (1940) तक सर्वत्र महाकवि कालिदास की कल्पना का प्रभुत्व दिखाई देता है। ऐसा कृतित्व किसी अन्य कवि का नहीं दिखाई देता।

उनकी कविता में पाश्चात्य प्रभावों की विशिष्ट प्रतिध्वनि और छायांकन की खोज नाममात्र है। उन्होंने स्वयं फैशन के रूप में पर्यालोचन करना अथवा पाश्चात्य मॉडल का अनुकरण करना कभी स्वीकार नहीं किया। वह इस प्रकार के कवि नहीं थे, जो विदेशी मॉडल के अनुकरण से पाश्चात्य साहित्यिक शैली को अपना कर नैसर्गिक प्रतिभा अथवा निपुणता से वंचित हो कर रचना करने की ओर प्रवृत्त होता है। उनके आध्यात्मिक साहचर्य के क्षेत्र में अभिवृद्धि होती गई और कविता की संभावनाओं की जागरूकता ऊंचाइयों को छूने

लगती थी। संगीत और कविता के प्रति उनके आत्मज्ञान में निरंतर वृद्धि होती गई।

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि वह पाश्चात्य सभ्यता के कुछ दृष्टिकोणों की ओर आकर्षित हुए थे तो ऐसी स्थिति में वह वहां के तौर-तरीकों से भी उदास रहने लगे थे। 20वीं शताब्दी के दौरान उनके विचारों में अभूतपूर्व परिवर्तन आने लगा था। पाश्चात्य लेखकर इजेकिल का कहना है कि टैगोर के मानस पटल पर नैतिक आध्यात्मिक दर्शन की पृष्ठभूमि इतनी गहरी थी कि उनका आत्मसाक्षात्कार सशक्त होता चला गया। उन्होंने अपने आलेखों में बारंबार उन सबका उल्लेख किया है। पाश्चात्य सभ्यता की सभी अभिव्यक्तियां जिनसे वर्तमान शताब्दी प्रभावित होती जा रही थी, लोग मशीनों और ऐश्वर्य की ओर आकर्षित होते जा रहे थे और अविश्वासों की राजनीति जोर पकड़ती जा रही थी। ऐसी दशा में टैगोर ने अपने एक आलेख में पश्चिम की साम्राज्यवादी लोलुपता और औपनिवेशिक शोषण, उनकी जातीय उद्दंडता और रंगभेद का पूर्वग्रह, उनका तड़क-भड़क वाला रहन-सहन, मूल्यों का विघटन, हिंसात्मक उपासना पद्धति, आक्रमणों का अनुक्रम जिसमें उसने अपने को और दूसरों को भी झोंक दिया था, इन सबने टैगोर को पश्चिम के विश्वासों और निराशा की ओर ताकने पर मजबूर कर दिया था। ये सारे वृत्तांत उनके आलेखों में समाहित हो गए थे। अंततोगत्वा उन्होंने अप्रैल सन् 1941 ई. में एक जन समुदाय को संबोधित करते हुए 'सम्यतार संकट' शीर्षक निबंध में स्पष्ट किया था। अपनी मृत्यु से पूर्व 80 वें जन्मोत्सव पर उन्होंने कहा था—''I started life.'' उसी बात को आगे इस प्रकार कहा था—''with a devour faith in Europe's gift of civilization, in the riches of her soul. Today, as I am about to go, that faith of mine is gone completely bankrupt.'' अर्थात् ''यूरोप की सभ्यता और संस्कृति के धर्मनिष्ठ आस्था के उपहार से अभिभूत हो गया। अब तो मेरे जाने का समय निकट आ गया है और मेरा विश्वास पूर्णरूपेण टूट चुका है।''

अभिलेखों से पता चलता है कि टैगोर के जीवन में वातावरण का महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। उनकी सृजनात्मक ऊर्जा एक निर्दिष्ट दिशा की ओर मुड़ गई और एक उपयुक्त समय पर उनकी कविता में परिवर्तन की लहर आई। इसी से उन्हें अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला। इसी को वह ''A change of season'' कहते हैं। यह तथ्य पाश्चात्य अथवा पूर्वात्य 'प्रभाव' से कहीं बढ़-चढ़ कर है। सन् 1888 ई. में एक बार गाजीपुर (उ.प्र.) गए हुए थे। उस दौरान सैर-सपाटे से उनकी कविता में परिवर्तन देखने को मिला। इस बात का उल्लेख उन्होंने अपनी एक रचना 'मानसी' की भूमिका में किया है। जब वह सन् 1903 ई. में अल्मोड़ा गए थे तो उसके बारे में भी उसी भूमिका में उल्लेख मिलता है। उन्होंने लिखा है—''Repetedly noted the influence on my imagination of a change of milieu.'' अर्थात् वहां के वातावरण का उनकी कल्पना पर बारंबार एक अभूतपूर्व प्रभाव दिखाई देता है। उनकी एक कविता है, 'सोनार तरी' जिसमें एक बड़ी महत्त्वपूर्ण कल्पना है, जो हमें पाश्चात्य साहित्य में बड़ी कठिनाई से मिलेगी।

उनके नाना गीत काव्य लगभग अपने आपको गेयता की ओर संकेत करते हैं। गीतों के रूप में लिखे ऐसे अनेक लिरिक इलिजावेथेन के भी हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह एक अत्यंत रोचक समरूपता है। किंतु यह तो पूर्णरूपेण एक दैवी घटना है और यहां पर कोई विचार करना भी एक विसंगति होगी कि उन दोनों की कल्पना किसी संदर्भ में एक जैसी रही होगी। टैगोर की लिरिक कविताओं की इस विशिष्टता की आवश्यक पृष्ठभूमि वैष्णव कविता ही रही होगी। एक अन्य उदाहरण के लिए उक्त कविता की कुछ समापन पंक्तियां यहां उद्धृत हैं, जो उनके उपन्यास से जुड़ी 'शेषेर कविता' से हैं—

''कालेर यात्रार ध्वनि शुनिते कि पाओ
तारि रथ नित्यई उधावो।''

और यहां एंड्रयू मारवेल की कुछ प्रसिद्ध पंक्तियां उद्धृत हैं—''But at my book I always hear trine's winged chariot hurrying near.''

वस्तुतः यह एक प्रकार से नाजायज कल्पना होगी कि हम परवर्ती की प्रतिध्वनि को प्राक्कालीन से जोड़ें। यद्यपि वह एक उपन्यास का उपसंहार कर रहे थे कि जो 'अंग्रेजी' 'तत्वमीमांसीय' के साथ टैगोर के परिचय को एक चित्ताकर्षक शब्द प्रमाण को अंतर्भूत करती है। पुनः चूंकि जार्ज हर्बर्ट और सर विलियम वाट्सन ने ''The bridal of earth and sky'' लिखा था। अर्थात् धरती और आकाश का विवाहोत्सव। क्या हम कहेंगे कि उन्होंने टैगोर को उनके 'श्रवण गाथा' की पंक्तियों को उनके साथ जोड़ने का कोई सुझाव दिया था। यथा—

''धरणीर गगनेर मिलनेर छंदे।''
—(श्रवण गाथा)

यहां यह ध्यातव्य है कि टैगोर की शृंगारिक बिंब-सृष्टि उनके 'जीवन देवता' जैसी कविता को उजागर करती है। उसी के साथ उनकी अनेक धार्मिक कविताएं भी जुड़ी हुई हैं। एक ऐसा फीचर जिसने डॉ. इडवर्ड थांपसन को विभ्रांति में डाल दिया था, वहीं रिचर्ड क्रेशा की धार्मिक कविता को मिलते-जुलते फीचर से व्युत्पन्न दिखाई देती है।

प्रत्यक्ष रूप से यहां एक तथ्य विसंगत प्रतीत होता है कि वैष्णव कविता थोड़े बहुत अंतर के साथ एक बार पुनः पृष्ठभूमि को समन्वित करती दिखाई देती है अथवा एक दूसरा उदाहरण लीजिए। डॉ. इडवर्ड थांपसन ने लिखा है कि टैगोर के ऊपर ब्राउनिंग का प्रभाव विचारणीय है। सन् 1921 ई. में प्रोफेसर अमूल्य चंद्र ने कोलकाता यूनिवर्सिटी एक्सटेंशन व्याख्यान माला में ब्राउनिंग और टैगोर के बीच नाना समानांतर तथ्यों को उजागर किया है। हमें यहां यह कहने में

न्यायसंगत नहीं लगता कि उपनिषद् में डूबा हुआ टैगोर जैसा मेधावी भारतीय संस्कृति की गहरी छाप लिए ब्राउनिंग जैसे कवि उनके प्रेरणा-स्रोत बन सकते हैं? यदि कोई यह सोचता है कि उपनिषद् के भीतर कौन सा रहस्य छिपा है और टैगोर को उससे कौन सी प्रेरणा मिली? यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह लंदन में अपने प्रवास काल के दौरान हेनरी मोरले के साथ सर थामस ब्राउन को भी विधिवत पढ़ा था और मृत्यु के रहस्य को लेकर दोनों के बीच समानांतर प्रतिबिंब दिखाई देता है। इसमें तनिक भी संकोच नहीं है कि इससे भारतीय मिथ की अनभिज्ञता स्पष्टतः नजर आती है।

सारभूत बात यह है कि टैगोर कविताओं में अनुप्रासिक सौंदर्य अंग्रेज कवियों के प्रभाव के कारण आया। ऐसा कहना संस्कृत और वैष्णव कविता की अनुप्रासिक संपदा की पूर्णरूपेण खिल्ली उड़ाना होगा। उनकी कविता अथवा गद्य शैली का ऐश्वर्य पाश्चात्य भाषाओं अथवा साहित्यों से कुछ लेना-देना नहीं है। अलबत्ता यत्र-तत्र विशेषतः उनके गद्य लेखन में अभिव्यक्ति का वास्तविक दृश्य-खंड पढ़ने में तदनुरूपी अंग्रेजी का अनुवाद जैसा प्रतीत होता है किंतु शब्दों के ऊपर उनकी देशज शक्ति का प्रयास संस्कृत साहित्य में गहरी पैठ के कारण संभव हो सका है। टैगोर की कविताओं से स्वतः ऐसे स्रोत फूटते हैं कि मानो धरती की प्रबुद्ध चेतना ईश्वरीय वरदान जैसी है। यह सोच कर ऐसा आकर्षण उत्पन्न होता है कि जिस समय उनकी भारतीय विरासत से ईश्वरीय चेतना के फव्वारे फूटे, उस समय धरती की चेतना अपने आप पाश्चात्य प्रभाव में समाहित हो गई। यहां-वहां अनेक शब्दों में इस प्रभाव के प्रति कोई भी व्यक्ति उनके अनुभावन के आर-पार जा सकता है और टैगोर के अपने लेखन में सामयिक अवतरण इस प्रकार के अनुभावन के प्रति न्याय संगत रूप देने के लिए प्रकट भी हो सकते हैं। किंतु धरती की प्रबुद्ध चेतना और ईश्वरीय जागरूकता का विलयन भारतीय परंपरा में कदापि विदेशी नहीं हो सकते। साक्ष्य रूप में प्राचीन भारतीय मंदिरों पर, अजंता के भित्ति चित्रों पर अथवा यह यथार्थ कि वृहदारण्यक और छांदोग्य जैसे उपनिषदों में सृष्टि की उत्पत्ति की खोज का विषय बन सकते हैं।

अमेरिकी लेखकों में इमर्सन के प्रति टैगोर के हृदय में बहुत ऊंचा स्थान था। उन्होंने उनके साहित्य को बड़ी गहराई और अभिरुचि के साथ पढ़ा। यद्यपि उसका चिंतन अव्यवस्थित ही रहा। उन्होंने इमर्सन का कहीं अनुकरण नहीं किया है। फिर भी 'मानसी' की यह पंक्ति, ''काछे गेले रूप कोथा करे पलायन'' इमर्सन के चिंतन से मिलती-जुलती है। यहां यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि कवि उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करे। इमर्सन अपनी पुस्तक ''The conduct of life'' में essay on beauty पर कहते हैं–''It (beauty) is not yet possessed, it can not be handled... It is properly ot in the form, but in the mind. It instantly deserts possession, and flies to an object in the horizon, If I could put my hand on the north star, would be as beautiful? The seas is lovely, but when we bath in it, the beauty farsakes all the near water.'' कहने का भाव यह कि सौंदर्य मन की प्रतीति है। सागर के सौंदर्य के बारे में क्या कहना। लेकिन जब उसमें हम स्नान करते हैं तो जल के खारेपन में सौंदर्य खो जाता है।

भारतीय और पाश्चात्य आलोचक बहुधा इस बात को दुहराते हैं कि टैगोर की कविता का माहात्म्य जो आज है, वह विगत में न रहा होता। किंतु अंग्रेजी की रोमांटिक कविता के बारे में क्या कहना। टैगोर के पूर्व बंगला कविताओं के बारे में यह कहना अधिक सत्य होगा कि उसका रूप जो आज पढ़ने को मिल रहा है, ऐसा विगत अवधि में नहीं था। लेकिन कुछ काल तक अंग्रेजी कविता निस्संदेह टैगोर की ही प्रतिभा की देन कही जा सकती है। टैगोर की अपनी प्रतिभा की महत्ता और उनकी भारतीय पृष्ठभूमि की गहराई को पूरी तरह से नकारना उनके प्रति अन्याय होगा। जहां तक अंग्रेजी रोमांटिक कविता के प्रभाव का संबंध है, उसका आधुनिक बांगला कविता में शुरूआत हो चुकी थी। यद्यपि उसका प्रवेश काफी विलंब से हुआ।

टैगोर की कविता के अभ्युदय के दो वर्ष पूर्व ही लोगों में एक नए आकर्षण का विषय बन चुकी थी। उसी समय माइकेल मधुसूदन दत्त ने तिलोत्तमा संभव काव्य की रचना की थी। अपने समकालीनों और निकटतम रोमांटिक कविता के प्रभाव में रचना करना बेहतर समझा। किंतु इस बात की स्वीकृति देना कि उन्होंने कविता को एक नया मोड़ दिया और परिवर्तन लाने की बात स्वीकारना जल्दबाजी होगी। 'अनुसूया' में दिए गए उनके वक्तव्य की महत्ता पर जोर देना उचित नहीं होगा। ''I am a born romantic'' अर्थात् मैं जन्मजात रोमांटिक कवि हूं। यदि वह एक रोमांटिक कवि थे कि जैसा कालांतर में दिखाई दिया था तो साथ ही साथ एक यथार्थवादी कवि भी थे और इसके अलावा वह कुछ और भी थे। यहां हम उनकी कुछ विशिष्ट कविताओं के फीचर की पड़ताल कर सकते हैं। जहां तक प्रकृति के साथ उनके तादात्म्य की बात है, टैगोर के भीतर उनकी अपनी गहन अभिव्यक्ति थी।

अंग्रेजी रोमांटिक कविता से लगाव की बात को दुहराने की यहां कोई जरूरत नहीं है। बचपन से ही उनमें मूलतः बांगला और भारतीयता की ओर अभिरुचि थी। इसके अतिरिक्त, उसी दौरान रोमांटिक कवि इस पर वैयक्तिक रूप से ध्यान देने लगे थे अथवा प्रकृति की ओर अपनी अभिरुचि प्रकट करने लगे थे। टैगोर अपनी कविता में उसके तमाम पक्षों की ओर प्रकृति की ही बात करते थे। वह प्रकृति के नाना रूपों और उसके दृश्य जगत की ओर निहारने लगे थे। रोमांटिक कवियों की जब बात चलती है तो उसमें वर्ड्सवर्थ और शेली अग्रगण्य हैं।

प्रकृति के प्रति टैगोर जैसा प्रतिभाशाली और कोई समानांतर कवि दिखाई नहीं देता। यही नहीं, बल्कि वह पूर्णरूपेण भारतीय

दर्शन और संस्कृति में सराबोर थे। इस संदर्भ में उनकी अपूर्व पुस्तक 'वनवासी' की प्रस्तावना में अथवा 'उत्सर्ग' की सॉनेट में रोमांसवादी कल्पना की प्रगाढ़ता किसी अन्य कवि में दिखाई नहीं देती। यह उल्लेखनीय भी है कि वह अपनी काव्य पुस्तक 'छिन्न पत्र' में प्रकृति का संपूर्ण दृश्य जगत देखते हैं। पाश्चात्य रोमांटिक कवियों में भी ऐसा असाधारण चित्रांकन नहीं मिलता। अलबत्ता बांगला भाषा की वैष्णव कविता में उनकी अपूर्व कल्पना के दर्शन होते हैं। ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता कि उनकी 'मानसी' दौर की नाना कविताओं के अवसाद से साफ झलकता है कि उनके युवाकाल की प्रमाणिक और मूल अनुभवों में मौलिकता नहीं झलकती। अंग्रेजी रोमांटिक कविताओं से अवतरित रचनाएं प्रायः स्तंभित करती हैं। माइकेल मधुसूदन दत्त, हेमचंद्र बंधोपाध्याय, नवीनचंद्र सेन, बिहारीलाल चक्रवर्ती आदि टैगोर के निकटतम पूर्ववर्ती कवियों के साथ ही बांगला कविता में आत्मवाद और गेयत्व के अतिरिक्त, भावातिरेक और भावानुभूति पर रोमांटिक दबाव का प्रवेश पहले ही हो चुका था। इन सबने अपने योगदान से बांगला कविता को समृद्ध किया।

सौंदर्य की विलक्षणता के संवर्धन हेतु उनको अपनी कविताओं में कल्पना के सहारे रोमांसवाद और अन्य स्रोतों को अपनाने में अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा। कुछ भी हो अंग्रेजी की रोमांटिक कविताओं की विस्तृति फीचर को टैगोर के निकटतम पूर्ववर्ती कवियों ने सामान्यतया उसे संवर्द्धित करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी और वह बाइरन, स्काट, मूरे और कैंपबेल की ओर अन्य ब्रिटिश रोमांटिक कवियों की अपेक्षा अत्यधिक आकर्षित हो गए। सुंदर, सूक्ष्मदर्शी और अंग्रेजी रोमांसवाद के तत्व चिंतक वर्ड्सवर्थ, पुरातन धरती के आत्मिक भाषा प्रेमी—शेली, संपूर्ण सृष्टि के साथ क्रीड़ा करने वाली कीट्स अपने ही सौंदर्य को खोने वाला अर्थात् ये सभी समानांतर रूप से महाकवि टैगोर में आ कर समाहित हो गए।

व्यावहारिक रूप से हम यहां टैगोर का आह्वान करते हैं। जिसे बांगला कविता का शेली कहा जाता है और जो समानांतर रूप से कल्पना, अभिव्यक्ति अथवा उनकी कविता का अवतरण बन सकता है, उन्हें शेली के अनुरूप नहीं मानते। उनकी अपनी मौलिकता थी। हां, दोनों महाकवियों में कुछ बातें एक समान पाई जाती हैं। जैसे—दोनों का पारलौकिक दृष्टिकोण एक जैसा है। किंतु स्वाभाविक रूप से टैगोर शेली की रचनाओं से कहीं प्रेरणा ग्रहण नहीं करते। उनके व्यक्तित्व में जो बातें लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, वह सब हम शेली में नहीं पाते। डॉ. एडवर्ड थांपसन कहते हैं कि रवींद्रनाथ की कल्पना व्यक्ति को झूमने पर मजबूर कर देती है। उनके बौद्धिक सौंदर्य में देवगीत समाया हुआ था। (Hymn to intellectual beauty, swaying influence on Rabindranath's imagination.) शेली का बौद्धिक सौंदर्य हमें टैगोर की अपूर्व रचना 'उर्वशी' में दिखाई देता है। उनकी झंझावती कविता 'वर्ष शेष' ''ode to the west wind'' का स्मरण दिलाती है। यद्यपि दोनों में पर्याप्त असमानता है। टैगोर ने कहीं भी शेली से कुछ भी नहीं लिया है। किंतु उनकी 'आमार धर्म' कविता से उनके आध्यात्मिक जीवन का पता चलता है। टैगोर की रचनाएं 'नववर्ष', 'आविर्भाव' और 'रात्रि' पढ़ते समय हमें शेली का सौंदर्य साफ झलकता है। अधोलिखित काव्यांश में उनकी अपूर्व कल्पना तो देखिए—

''आछे शुधू पाखा, आछे महानभ-अंगन
ऊषा दिशाहारा निबिड़-तिमिर-आंका।
वोरे विहंग वोरे विहंग मोर,
एखनि, अंध, बंध कोरो ना पाखा।।''

रोमांटिक कवियों के मध्य टैगोर को संभवतः अन्य अंग्रेजी के कवियों की तुलना में कीट्स के निकट पाते हैं। दोनों की काव्य ध्वनि संबंधी अंतर्वस्तु एक जैसी लगती है। टैगोर की अपूर्व रचनाओं का ऐंद्रिय वैभव हमें संस्कृत और वैष्णव कविताओं के प्रभाव में नजर आता है। उसी के भीतर कीट्स का अनुभावन झलकता है। उनकी 'उर्वशी' में हमें नारी के प्रति मानव संबंधों का वंचित रूप दिखाई देता है। उसी समय 'एबार फिराओ मोरे', 'अंशेष' और 'वर्ष शेष' जैसी कविताओं के प्रति टैगोर ने 'आमार धर्म' में विस्तृत टीका-टिप्पणी की है।

टैगोर की अपूर्व रचना 'मानसी' एक उत्तम काव्य है। उनकी कविताओं की यह एक सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस प्रकार की छंदोबद्ध रचना में चार कविताएं विशिष्ट रूप से संगृहीत हैं। ये हैं—'मेघूदत', 'अहिल्यार प्रति', 'विद्या', 'शेष उपहार'। इस पुस्तक की चारों कविताओं की तुलना जब हम उनकी अन्य कविताओं से करते हैं तो पाते हैं कि ये तो स्नेहालिंगन की गहराती विशिष्ट प्रकार की पहली तीन प्रबुद्ध रचनाएं हैं। उनके अलावा, उस पुस्तक में अन्य कविताएं एक सूक्ष्म जगत की ओर संकेत करती हैं। 'मेघदूत' के संदर्भ में सर्वाधिक एक भिन्न प्रकार की अनुभूति होती है। अन्य छंदोबद्ध रचनाओं में लिखी गई ढेर सारी कविताओं के बाद आती है। सच्चाई तो यह है कि 'मानसी' की अन्य कविताएं बांगला कविता में नूतन विकास को सुनिश्चित करती हुई आकस्मिक नहीं लगतीं। टैगोर के अनंतर पूर्ववर्ती कवियों जैसे माइकेल मधुसूदन दत्त, हेम, नवीन, बिहारीलाल की काव्यात्मक रचनाओं में केवल परिष्कार की ही बात नहीं दिखाई देती। किंतु विशेष रूप से लिखी तीन कविताएं सबसे भिन्न हैं। इन कविताओं की ऐसी विशेषता है कि जब कोई पाठक बांगला कविताओं के आकाश को देखता है तो उसकी दृष्टि में नूतन तारे तैरते हुए नजर आते हैं। उनकी एक रचना है—'नैवेद्य'। इसमें कुल सौ कविताएं संगृहीत हैं जिनमें 22 से 29 तक 78 सॉनेट हैं। उनके भीतर से एक विशेष प्रकार की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इनके गीतों के साथ-साथ उनमें वर्ण संकरीकरण का रूप भी दिखाई देता है। इस प्रकार टैगोर बांगला कविता में देशीकरण की रीति अपनाते हैं और पुरानी परंपरा से आगे निकल जाते हैं। उनकी 'कल्पना' में 'स्वप्न' और 'भ्रष्ट लग्न' जैसी रचनाओं की तुलना कीट्स के एक निम्नलिखित काव्यांश से करते हैं—

''Behold
The clear religion of heaven fold.
A rose-leaf round thy finger's taperness,
and soothe thy lips : hist when the airy stress.
of music's his impregnates the freewinds,
and with a sympathetic thouch unbinds
aeolian magic from their lucid wombs,
the old songs waken from enclouded tombs;
old ditties sigh above their father's grave;
ghosts of melodious prophesyingsrave
round every spotwhere trod appolo's foot,
bronze clarions awake, and faintly bruit,
where long ago a giant battle was;
and, from the turf, a lullaby doth pass
in every place where infant ordheus slept,
feed we these things! that moment have we slept
Is like a floating spirit's''

कीट्स की उपर्युक्त पंक्तियों से प्रभावित होकर टैगोर ने 'परिशेष' में 'प्रणाम' लिखा। उसी का एक काव्यांश दृष्ट्व्य है–

''फूल फोटावार आगे
फाल्गुने तरुर मर्मे वेदनार ये स्पंदर जागे
आमंत्रण करेछिनु तारे मोर मुग्ध रागिनी ते
उत्कंठाकंपित मूर्छनाय। छिन्न पत्र मोर गीते
फेले गेछे दीर्घश्वास। धरणीर अंतःपुरे
रविरश्मि नामे यवे, तृणे तृणे अंकुरे अंकुरे
ये निःशब्द हुलुध्वनि दूरे दूरे याय विस्तारिया
धूसर यवनि-अंतराले, तारे दिनु उत्सारिया
ए बांशिर रंध्रे रंध्रे, ये विराट गूढ़ अनुभवे
रजनीर अंगुलिते ताम्र माला फिरिछे नीरवे
आलोकवंदनामंत्र जपे-आमार बांशिरे राखि
आपन वक्षेर परे, तारे आनिपेयेछि एकाकी
हृदयकंपने मम, ये वन्दी गोपन गंध खानि
किशोर कोरक माझे स्वप्न स्वर्गे फिरछि संधानि
पूजार नैवेद्यजलि संशयित ताहार वेदना
संग्रह करेछे गाने आमार वांशरि कलस्वना।''

सन् 1939 ई. में 'नवजातक' में लिखते हुए वह देश की अखंडता का गौरव गान करते हैं, जिसकी महानता देश के किसी भाग के खंडित हो जाने से उसका अभावात्मक स्वरूप विकल नहीं होता। अस्सी वर्ष की एक लंबी और जनाकीर्ण अवधि के दौरान उन्होंने जीवन को सुदृढ़ और उसका संपूर्ण रूप देखा। अब वह उससे मुक्त होना चाहते हैं। वह ऋग्वेद के सौंदर्य भरे छंदों का शांति पाठ करते हैं। 14 फरवरी, सन् 1941 ई. को अपनी मृत्यु के छः महीने पहले वह ऋग्वेद के उन्हीं शब्दों को प्रतिध्वनित करते हैं जिससे उन्हें आरोग्य की अनुभूति हुई–

''ऐ द्युलोक मधुमय पृथ्वीर धूलि,
अंतरे नियोछि आमि तूलि
एई महामंत्र खानि
चरितार्थ जीवनेर वाणी।''

और अपनी मृत्यु के एक सप्ताह पहले 30 जुलाई, सन् 1941 ई. की सुबह अपनी अंतिम कविता की पंक्तियों को दुहराते हैं–

''अनायासे ये पेरेछे छलना सहिते
ये पाय तोमार हाते
शांतिर अक्षय अधिकार।''

इसके अतिरिक्त, टैगोर के काव्य में प्रतीकवाद के प्रभाव को स्वीकारना न्यायसंगत है क्योंकि उसी समय फ्रांसीसी प्रतीकवादियों का आंदोलन चल रहा था और उसका उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक लगता है। उन्होंने अपना वैयक्तिक प्रतीक प्रस्तुत कर दिया था और वह भारतीय परंपरा के अनुरूप था। फ्रांसीसी प्रतीकवादी आंदोलन के बहुत पहले वह स्वदेश पहुंच चुके थे। इस संदर्भ में हमें अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि उनकी कविता उत्तर जार्जियन अंग्रेजी कविताओं से मेल खाती थीं और उनकी शैली में एक स्वाभाविकता आ चुकी थी। उनकी काव्य-शैली समकालीन महान कलाकारों को भलीभांति प्रभावित कर चुकी थी। उनकी प्रतिभा जब अपने शीर्ष पर पहुंची, उस समय तक अंग्रेजी के महान कवि और कलाकार ने अपनी लेखनी को विराम नहीं दिए था और रचनाएं उच्चकोटि की हो रही थीं। उस समय महान नाटककार शेक्सपियर और ईट्स की रचना शैली में पर्याप्त अंतर आ चुका था। जैसे-जैसे शैली में आभ्यंतरिकता आती गई, काव्य का अलंकरण संकुचित होता गया। वस्तुतः टैगोर के काव्य में भी कमोबेश वही प्रभाव नजर आने लगा। कालांतर में टैगोर का विश्वास पाश्चात्य काव्य और साहित्य से बिल्कुल विमुख होता दिखाई दिया।

अपने जीवन के अंतिम छः वर्षों के दौरान टैगोर ने कविता के पंद्रह खंडों, तीन नृत्य-नाटकों, कथा-साहित्य की तीन पुस्तकें, भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक गद्य साहित्य का प्रकाशन करवाया। इसके अतिरिक्त, पिछले कार्यों के अनेक संशोधित पुनर्मुद्रित लेखादि, कुछ अप्रकाशित निबंध आदि भी उनकी मृत्युपरांत प्रकाशित करवाया गया था। सन् 1877 ई. और सन् 1879 ई. के बीच के नौ महीनों में उन्होंने 22 कविताएं, 21 निबंध, साहित्यिक आलोचना के छः निबंध, एक लंबी कविता 'भारती' का योगदान किया। आरंभ से अंत तक सृजनात्मक ऊर्जा का इसे एक दीर्घकालिक चमत्कार ही कहा जा सकता है।

साहित्यिक योगदान के अलावा, उन्होंने बंगाल के स्वदेशी आंदोलन में भी सक्रिय भूमिका निभाई। राष्ट्रीय समस्याओं पर भरपूर लेखन-कार्य किया। उन्होंने सामुदायिक विकास कार्यों की अगुआई की। उन्होंने 'साधना' (जीवन से साक्षात्कार) विषय पर सन् 1912 ई. से सन् 1913 ई. तक इंग्लैंड और अमेरिका में भाषण किया। उन्होंने सियालदह में किसानों को सहकारिता के बारे में आवश्यक जानकारी दी और वैज्ञानिक ढंग से खेती करने पर बल दिया। उन्होंने मल्लयुद्ध और तैराकी का भी अच्छा अभ्यास किया था। वह एक यथार्थवादी दार्शनिक थे। वह

टैगोर रियासत के एक कुशल मैनेजर थे। उनमें राष्ट्रवादिता कूट-कूट कर भरी थी और अंतरराष्ट्रीय विचारधारा के सच्चे पोषक थे। वह एक राज्य मर्मज्ञ सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे।

साहित्य के प्रति टैगोर की प्रतिक्रिया उनके जीवन के पिछले चार दशकों के दौरान पश्चिम में जा कर दृष्टिगोचर होने लगी थी। उन्होंने स्वयं उसके बारे में ‘‘The religion of an artist’’ पुस्तक में प्रकाशित करवाया था। उसमें एक अत्यंत रोचक प्रकरण है, जो जर्मनी से एक मिशनरी लेडी की सहायता से जर्मनी भाषा सीखने के बारे में टैगोर के अथक प्रयासों को बताती है। उसने सोचा कि वह तो जर्मन भाषा में लगभग पारंगत हो गए हैं, किंतु एकांत प्रेमी कवि हमारी प्रशंसा को अस्वीकारता है। उन्होंने जर्मन भाषा में थोड़े समय में ही काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लिया। बहरहाल उसमें कार्य करने में उन्हें अपरिमित संतोष मिला।

उन्होंने सन् 1890 ई. में सियालदह से प्रमथ चौधरी को एक पत्र लिखा। उससे पता चलता है कि एस्टेट मैनेजमेंट के नाना पूर्वग्रह के बीच उनका अध्ययन अच्छा चल रहा था। जानने के लिए यह बड़ी दिलचस्प बात है कि उन्होंने अपनी ‘उर्वशी’ के संबंध में गोथे से चर्चा की थी। 1896 ई. में इस कविता के बारे में लिखते हुए उन्होंने बंगाली उपन्यासकार प्रभात कुमार मुखोपाध्याय को बताय कि उनकी ‘उर्वशी’ उन्हीं प्रतीकों का रहस्योद्घाटन करती है जिसे गोथे ने ‘‘The eternal woman: wige weibliche’’ कहा है। उन्होंने गोथे को संदर्भित अपने गद्य-लेखन में जो भी उल्लेख किया है, वह इस लेख के मुख्यांश से बाहर है। किंतु उसके बारे में कुछ लोग इतने प्रभावित हैं कि वे उसके महत्त्व को बताते हुए प्रेम की उमंग में डूब जाते हैं। वही सब ‘छिन्न पत्र’ कविता में वर्णित है। उस चरमाह्लाद के बारे में बताते हैं कि चाहे बात जो भी हो, मन के आनंद में अथवा सुखकारक सामग्री में जो कुछ भी छिपा है, उसे उन्होंने अपने स्मृति-पटल पर प्रिय वस्तु के रूप में एकत्र कर लिया।

अंततः टैगोर ने अपने साहित्य में शेक्सपियर की रचनाओं के ऊपर उच्चकोटि की विद्वतापूर्ण टिप्पणी की थी और उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि स्वरूप ‘‘A book of homage to Shakespeare’’ का योगदान किया। उनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि उन्होंने बारह अथवा तेरह वर्ष की किशोरावस्था में ‘मैक्वेथ’ का बांगला में अनुवाद किया। उनके जीवन में शेक्सपियर जितना महत्त्वपूर्ण था, उससे गोथे भी कहीं कम न था। उसके प्रति उनकी आत्मा का लोक समाज और मन की प्रफुल्लता कम न थीं। टैगोर ने गोथे में शेक्सपियर से भिन्न एक सजातीय आत्मा का पता लगाया। यहां एक अतिरिक्त अंतर्भूत मन और एक इतर समग्र कला का रूप दिखाई दिया। उसके भीतर एक स्नेहालिंगन से परिपूर्ण प्रतिभा का दर्शन हुआ जिसने साहित्य और दर्शन, कला और विज्ञान, विधि और प्रशासन तथा सार्वजनिक कार्य क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया। अपनी प्रतिभा की बदौलत उसने विश्व को प्रकाश का सिद्धांत और प्लांट स्ट्रक्चर का योगदान किया। इस प्रकार दोनों ने ही सार्वलौकिक मानव के रूप में देवायतन की उपासना की जिसके लिए उन्होंने अपनी-अपनी कृतियों में प्रबुद्ध चेतना का कल्याणकारी अनुष्ठान किया। टैगोर की ही तरह गोथे ने भी क्रियाशीलता से परिपूर्ण वैचारिक सौम्यता और अनुभवशीलता का एक दीर्घ जीवन जिया। उन्होंने सभी स्तरों पर एक संवेगात्मक साथ ही साथ बौद्धिक, इंद्रिय विषयक, आध्यात्मिक, वैयक्तिक और सामूहिक जीवन का सुखद अनुभव किया। दोनों के ही पास अनन्य सहिष्णुता एवं गंभीरता से आपूर्ण चित्त-शक्ति थी। इन सब अद्वितीय गुणों की बदौलत उन्होंने अपने युग पर एक दूर व्यापी भविष्यद्रष्टा की छाप छोड़ी। अपनी-अपनी भावी पीढ़ियों के लिए उन्होंने मूल्यों की मनोदशा का उपहार दिया, जो आज भी शाश्वत है, अमर्त्य है। सचमुच पाश्चात्य लेखकों के मध्य शेक्सपियर और गोथे दोनों की ही तुलना महाकवि टैगोर के साथ की जा सकती है। अन्य इतने सीमित हैं कि उनकी रूप-छटा का साहचर्य मिलना मुश्किल है। गोथे ने कहा है कि अकेले ‘‘शिक्षा ही संपूर्ण संस्कृति को बदल सकती है।’’ यह एक प्रकार से अद्भुत अभिनंदन है, जो किसी एक लेखक के प्रति प्रकट किया जा सकता है। भारत में टैगोर ही एकमात्र ऐसे मनीषी, कवि और चिंतक थे जो युगों पर्यंत जन-जन के हृदय और मस्तिष्क में विद्यमान रहेंगे।

कोठी नं. 3/16/3, ए.जी. कॉलेज रोड,
भारत भवन के पीछे, पड़रा, रीवा-486001 (म.प्र.)

हिंदी संस्कृति और समाज

गिरीश्वर मिश्र

प्रोफेसर गिरीश्वर मिश्र दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और मनोविज्ञान विभाग के पूर्व प्रमुख और कला संकाय के पूर्व डीन के रूप में कार्यरत रहे हैं। मनोविज्ञान के साथ-साथ विभिन्न विषयों पर पच्चीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। मनोविज्ञान अकादमी के राष्ट्रीय संयोजक और अध्यक्ष।

भाषा, संस्कृति और समाज आपस में इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं कि बिना एक को समझे दूसरे को समझना अकल्पनीय है। यदि भाषा और संस्कृति को समाज विशेष के संदर्भ में ही समझा जा सकता है तो यह भी उतना ही सच है कि भाषा और संस्कृति को समझने बिना किसी समाज को समझना असंभव है। 'हिंदी' शब्द हिंदुस्तान के अंदर रहने वालों और 'हिंदी भाषा' इन दोनों ही अर्थो में प्रयुक्त होता है। भाषायी इतिहास में हमें हिंदी, हिंदुस्तानी और हिंदवी का संदेश मिलता है। अमीर खुसरो एक तुर्क, जो तेरहवीं शताब्दी में हुए थे और खुद को हिंदी बोलने वाला मानते थे, उनकी बानी कुछ ऐसी थी—

''खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग
तन मेरो मन पीऊ को दोउ भए इक रंग
गोरी सोई सेज पर, मुख पर डारे केस
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुं देस।।''

अमीर खुसरो की एक और प्रसिद्ध रचना जिसमें हिंदी-फारसी दोनों का मिश्रण है—

''जोहल मिसकी मकुन तगाफल,
दुराय नैना बनया बतियां
××× ××× ×××
सखी पिया को जो मैं न देखूं,
तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।''

हिंदी की विकास यात्रा पर नजर डालें तो इसमें कई पड़ाव दिखते हैं। जो वाक् या वाणी वेद की छंदस से शुरू हुई वह (लौकिक) संस्कृत, फिर पालि, अर्ध मागधी, प्राकृत, शौरसेनी प्राकृत आदि से गुजरते हुए अपभ्रंश तक आई और तब हिंदवी/हिंदी का आगमन हुआ। हिंदी कुल बारह सौ साल पुरानी है ऐसा अनुमान किया जाता है। आज की (खड़ी बोली) हिंदी तो मात्र डेढ़-दो सौ वर्ष पुरानी है। यहां पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी समय कई भाषाएं बोली जाती रहती हैं और इनके बीच किसी तरह का कार्य-कारण संबंध सुनिश्चित करना मुश्किल होता है। हिंदी पर अनेक भाषाओं और बोलियों की छाप है। वह संस्कृत, ब्रज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी, बुंदेली, कुमायूंनी, हरियाणवी, दखिनी, मगही, कन्नौजी, छत्तीसगढ़ी आदि से उदारतापूर्वक शब्द ग्रहण करती है। उस पर शास्त्र और लोक दोनों परंपराओं का प्रभाव मिलता है। साथ ही अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के भी शब्द, मुहावरे और लोकोक्तियां भी इसमें शामिल होती रही हैं। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी एक ध्वन्यात्मक भाषा है, जो बोलने और लिखने में एक जैसी रहती है। इसमें एक ध्वनि के लिए एक ही अक्षर निर्धारित है। ध्वनियों में स्वर और व्यंजन दोनों हैं। इसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, अनुकरणात्मक शब्द प्रयुक्त हैं। इस व्यापकता वाले भाषिक प्रयोग से समृद्ध हिंदी मानव मन की एक समर्थ वाचिक अभिव्यक्ति है।

संख्या बल के आधार पर आज हिंदी विश्व की दूसरी प्रमुख भाषा है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से उर्दू-हिंदी की अरबी-फारसी प्रधान शैली ही है। अंतर मात्र लिपि का है इसलिए राजनीतिक दृष्टि से उर्दू अलग भाषा होते हुए भी हिंदी का एक शैलीगत रूप ही है। अतएव उर्दूभाषी शुद्धतः हिंदीभाषी ही हैं। इसी प्रकार मैथिली, अवधी, भोजपुरी और मारवाड़ी आदि हिंदी की ही बोलियां हैं, इसलिए इन बोलियों के बोलने वाले भी हिंदी भाषी ही हैं। विश्व भर में बसे हुए प्रवासी भारतीयों के मध्य हिंदी संपर्क भाषा है और उनकी भारतीय अस्मिता की प्रतीक भी है। इसलिए यदि इन सब का सम्मिलित योग किया जाए तो हिंदी विश्व की दूसरी प्रधान भाषा बन जाती है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिंदी एक आर्य भाषा तो है पर भिन्न प्रकार की। यह बहुक्षेत्रीय है और वस्तुतः अनेक भाषाओं-बोलियों का समुच्चय है, जिसे पं. अ. वारान्निकोव 'भाषा व्यवस्था' कहते हैं। वस्तुतः हिंदी विलक्षण रूप से बहुलता में बसती है। उसकी सर्जनात्मक परंपराएं, सांस्कृतिक दृष्टियां और शैलियां विविध प्रकार की हैं। यही ध्यान में रख कर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की पत्रिका का नाम 'बहुवचन' रखा गया है। भारत में जन्मी, पली और बढ़ी हिंदी-धर्म, जाति और क्षेत्र जैसी बाधाएं लांघती रही। हिंदी में अमीर खुसरो, जायसी, रैदास, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, आलम, रसखान, भारतेंदु, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, कामिल बुल्के जैसे अनेकानेक रचनाकारों का समावेश है, जो भिन्न-भिन्न तरह की पृष्ठभूमि से आते हैं। हम बल्लभाचार्य, रामानुज, विट्ठलदास, रामानंद, केरल के तिरुनाल, महाराष्ट्र के संत

देवराज, तंजौर के साह जी, मछलीपत्तनम के आंदेल पुरुषोत्तम को भी नहीं भुला सकते जिन्होंने हिंदी को अपनाया और काव्य रचना की। ऐसे ही गुजरात के नरसी मेहता, महाराष्ट्र के नामदेव और ज्ञानेश्वर, पंजाब के गुरु नानकदेव, असम के शंकरदेव, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, गुजरात के महर्षि दयानंद और उत्तर-दक्षिण के तमाम सूफी संत भी स्मरणीय हैं, जिन्होंने हिंदी को अपना कर अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इन महान संतों की पदयात्रा और उनकी साखियों, पदों और वाणियों के माध्यम से हिंदी पूरे भारत में विचरण करती रही। अगर अल्लामा इकबाल के शब्द उधार लें तो कह सकते हैं कि 'ये सब हिंदी है'।

समाज की दृष्टि से कहें तो सचमुच हिंदी में राष्ट्र की आत्मा बसती है। एक संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की आज व्यापक उपस्थिति है और इसमें भारतीय सांस्कृतिक चेतना का स्पंदन है, इसका बहुविध प्रमाण मिलता है। हिंदी जीवन की, जनमानस की और राष्ट्रीय अस्मिता की भाषा है। भाषा स्वयं एक सांस्कृतिक प्रक्रिया का ऐसा अभिन्न हिस्सा होती है, जो संस्कृति को रचती भी है और स्वयं संस्कृति द्वारा रची भी जाती है। उदाहरण के लिए तुलसीदास का 'रामचरितमानस' उनके पूर्व चली आ रही भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की देन है और अब स्वयं भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का ऐसा अनिवार्य अंग हो चुका है कि देश-विदेश कहीं भी और किसी भी रूप में जहां भारत है वहां मानस भी है।

हिंदी भारत के एक व्यापक भू-भाग और विशाल जनसमुदाय की भाषा है, जिसमें हरियाणा, हिमाचल, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, उत्तराखंड एवं छत्तीसगढ़ के प्रदेश शामिल हैं। इनके अतिरिक्त अरुणाचल, अंडमान निकोबार, चंडीगढ़, दमन, दीव ने भी हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया है। इन प्रदेशों में आम आदमी की रोजमर्रा की जिंदगी में, शिक्षा, शासन और साहित्य में हिंदी ही व्याप्त है। हिंदी लगभग पचास करोड़ जनों की मातृभाषा, साहित्यिक भाषा और जातीय भाषा है। नागरी लिपि में लिखी जाने वाली अन्य भाषाएं भी हिंदी के निकट हैं। साथ ही, भारत के अन्य क्षेत्रों में संबंध बनाने, संत महात्माओं की यात्रा, आमजनों के तीर्थाटन, व्यापार, भ्रमण, मीडिया, नौकरी, अध्ययन आदि के कारण विभिन्न क्षेत्रों में निरंतर होती आवाजाही के चलते हिंदी व्यक्तियों, समुदायों, संस्थाओं के बीच रिश्ते बनाने में भी सहायक है। इस तरह के संपर्क के फलस्वरूप भारत की सांस्कृतिक बहुलता के बीच एकता की एक अंतरधारा भी सतत बहती दिखती है। हिंदी भारत की इस धारा का प्रतिनिधित्व करती है। वह सही अर्थों में जन-गण-मन की भाषा है।

सामान्यतः किसी भाषा के वर्चस्व की वृद्धि या ह्रास राजनीतिक और व्यापारिक कारणों से घटित होता है। इतिहास साक्षी है कि अक्सर साम्राज्यवादी प्रवृत्तियां भाषाओं के विस्तार में सहायक रही हैं। इनके विपरीत संस्कृत और हिंदी का लक्ष्य प्रायः ज्ञान और मुक्ति ही रहा है, जैसा कि प्रसिद्ध उपनिषद् वाक्य 'ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः' में व्यक्त है। अंग्रेजी प्रभुता की भाषा थी, जो एक साम्राज्य से शक्ति पाती थी और उसके लिए वह स्वाभाविक था कि वह ज्ञान-विज्ञान की आधिकारिक भाषा का रूप लेती है। हिंदी को राजभाषा स्वीकार करने पर भी अंग्रेजी का प्रभुत्व कई कारणों से बरकरार है। प्रशासन में अंग्रेजी का प्रचलन, अंग्रेजी की अंतरराष्ट्रीय छवि, उससे जुड़ा आभिजात्य का भाव और जीविका की अधिक संभावना इसमें प्रमुख हैं। परंतु शासकीय व्यवस्था की उदासीनता के बावजूद शिक्षा, व्यापार, मनोरंजन और संचार के क्षेत्रों में हिंदी की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति है। आज हिंदी भारत और भारतीयता का पर्याय सी बन चुकी है। भारतीय परंपरा और जीवन के सत्य का दर्शन हिंदी के जरिए अधिक संभव है क्योंकि हिंदी लोक से जुड़ी रही है। स्वाधीनता संग्राम में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आज न केवल भारत के एक बड़े भू-भाग में बल्कि फीजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, सिंगापुर, भूटान, गयाना, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैंड आदि अनेक देशों में हिंदीभाषी अच्छी संख्या में विद्यमान हैं।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास में प्रवासी भारतीयों की अविस्मरणीय भूमिका रही है। वे भारत से बाहर भारत की भाषा-संस्कृति को जीवंत किए हुए हैं। आप्रवासी भारतवंशी ज्यादातर बिहार, पूर्वी उत्तरप्रदेश से खेती के लिए शर्तबंदी श्रमिकों के रूप में मॉरीशस (सन् 1834), त्रिनिदाद (सन् 1845), दक्षिण अफ्रीका (सन् 1860), गुयाना (सन् 1870) तथा फीजी (सन् 1879) में गए। ब्रिटिश उपनिवेशों में कुली के रूप में भेजने की शर्तबंदी प्रथा ने उन पर बड़ा अत्याचार किया। सन् 1916 में इसे बंद करने का काननू पास हुआ। इन आप्रवासी भारतीयों की संस्कृति और अस्मिता की पहचान के रूप में भोजपुरी और अवधी के मिश्रित रूप वाली हिंदी ही आधार बनी। वह फीजी में 'फीजी हिंदी', सूरीनाम में 'सरनामी', दक्षिण अफ्रीका में 'नेताली' और उज्बेकिस्तान और कजाकिस्तान में 'पार्या' कहलाई। विदेशी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण फीजी टाइम्स द्वारा सूवा से प्रकाशित शांतिदूत साप्ताहिक पत्र है, जो लगभग पचहत्तर वर्षों से निरंतर प्रकाशित हो रहा है और सारे प्रशांत महाद्वीप का भारतीयों के मध्य लोकप्रिय समाचार पत्र है। इसकी कई हजार प्रतियां प्रति सप्ताह छपती हैं और दीपावली के अवसर पर तो इसका विशेषांक सौ पृष्ठों से भी अधिक का होता है। फीजी के प्रवासी भारतीयों की सृजनात्मक रचनाएं उसी में प्रकाशित होती हैं।

इसी प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि हिंदी का अध्ययन और उसकी रचनात्मकता में विदेशी विद्वानों ने भी गंभीर रुचि दिखाई है। हिंदी का प्रथम इतिहास फ्रांसीसी 'गार्सा द तासी', भारतीय भाषाओं का प्रथम सर्वेक्षण अंग्रेज 'जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन' द्वारा और प्रथम शोध प्रबंध अंग्रेज जे. आर. कारपेंटर ने तुलसीदास

पर, लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया था। प्रथम पाठ्य पुस्तक जान बोथ्विक गिलक्रिस्ट ने तैयार की थी। विदेशियों ने सृजनात्मक साहित्य भी रचा है। ओदोलेन स्मेकेल की काव्य पुस्तकें, कोरिया की यांग शिक, रूस की विक्टोरिया शिलिना, विनांद कलेवर्ट, आर.एस. मैकग्रेगर, बारान्निकोव, चेलीशेव, दीम्शिता का उल्लेखनीय काम है। विदेश में हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हो रहा है। इनमें मॉरीशस का 'बसंत', इंग्लैंड की 'पुरवाई', अमेरिका का 'सौरभ' और 'विश्वविवेक' तथा नार्वे का 'शांतिदूत' प्रमुख हैं। अनेक भाषाओं के द्विभाषी शब्दकोश भी तैयार हुए हैं। आज रूस, चीन, जापान, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, इंग्लैंड, पोलैंड, रोमानिया, बल्गारिया, आस्ट्रेलिया, युगोस्लोविया, फ्रांस, हंगरी, चेक गणराज्य, आदि देशों में हिंदी भाषा का अध्ययन लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हो रहा है।

प्रवासी भारतीयों के लेखन में फीजी के कमलाप्रसाद मिश्र, रामानारायण, जोगिंद्र सिंह कमल, सुब्रमनी, मॉरीशस के सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनत, ब्रजेंद्र भगत मधुकर, सूरीनाम के मुंशी रहमान खां, सूर्य प्रसाद बीरे का नाम उल्लेखनीय है। विदेशों में स्थित भारतीय जैसे सत्येंद्र श्रीवास्तव, ओंकार नाथ श्रीवास्तव, कीर्ति चौधरी, उषा राजे सक्सेना, उषा प्रियंवदा और सुषम वेदी की रचनाएं भी महत्त्वपूर्ण हैं।

आज भारत ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में आगे बढ़ रहा है और एशिया में एक शक्ति के रूप में स्थापित हो रहा है। फिल्म, टेलीविजन और नेट के माध्यम से हिंदी के प्रयोग का तीव्र गति से विस्तार भी हो रहा है। महात्मा गांधी हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा ने 'सक्षम' नामक हिंदी का वर्तनी परीक्षक विकसित किया है तथा अन्य कई योजनाओं पर कार्य चल रहा है जो तकनीकी दृष्टि से हिंदी के कार्य को सुगम बनाने में सहायक होंगे। भारत के प्रति विदेशी जनों की रुचि बढ़ रही है। प्रवासी भारतीय भी विभिन्न देशों में प्रतिष्ठा पा रहे हैं। वे हिंदी को भारतीय अस्मिता का प्रतीक मानते हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कामाख्या से कच्छ तक समझी जाने वाली हिंदी आपसी संपर्क, व्यापार और मनोरंजन की प्रमुख भाषा बन चुकी है। हिंदी के अन्यान्य कवियों और रचनाकारों जैसे सूरदास, तुलसी, जायसी, मीरा, कबीर, घनानंद एवं प्रेमचंद आदि की रचनाओं का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। फिर भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानक शैक्षिक पाठ्यक्रम का अभाव, जनपदीय साहित्य के शोध पर सीमित ध्यान और हिंदी की साहित्यिक रचनाओं का विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद के अभाव की गंभीर चुनौतियां बनी हुई हैं, जिन पर गौर करना जरूरी है।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि कोई भाषा सिर्फ सर्जनात्मक साहित्य, मीडिया और बाजार के ही कारण महत्त्वपूर्ण नहीं होती। उसे ज्ञान-विज्ञान की भाषा भी होना चाहिए, जिस दृष्टि से हिंदी दुर्बल है। साहित्येत्तर ज्ञानात्मक अनुशासनों में वह चिंतन की भाषा नहीं बन सकती है। चिंतन की भाषा बनाने पर ही वह सही अर्थों में मजबूत भाषा होगी। हिंदी आज उपभोग सामग्री खपाने का बड़ा बाजार है पर सिर्फ इससे हिंदी का भला नहीं होगा।

हिंदी भारत के लिए एक महत्त्वपूर्ण खिड़की है जिसे खुला रखना आवश्यक है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अपनी भाषा में शिक्षा मौलिक और स्थायी परिणाम वाली होती है। अंग्रेजी के पिछलग्गू रूप में मौलिक शोध की स्थिति चिंतनीय है। आज उपभोक्तावाद, मुक्त बाजार, नव साम्राज्यवाद और वैश्वीकरण ने बाजार के साथ भोगविलास, भौतिक संपदा की ओर प्रबल आकर्षण पैदा किया है। इससे नए अवसर पैदा हुए हैं, पर भारत में भूख, पिछड़ापन और बेरोजगारी भी बढ़ी है। जनजातियों का विस्थापन हो रहा है। वर्गीय-गैर बराबरी भी मौजूद है। मानवीय संबंधों का बाजारीकरण और संस्कृति का एकीकरण हो रहा है, वहीं भारतीयता के मूल में जो बहुवचनात्मकता कम हो रही है। आज अस्मिता, प्रतिष्ठा और मर्यादा के प्रश्न खड़े हो रहे हैं, सांस्कृतिक गरिमा और राष्ट्रीय चेतना की अवधारणा, शिल्प, संगीत, फिल्म, भाषा और शिक्षा आदि पर भूमंडलीकरण का प्रभाव देखा जा सकता है। देश की स्मृति, परंपरा, मिथक पर भी उसका प्रभाव दिख रहा है, व्यक्ति यंत्रवत होता जा रहा है। वैश्वीकरण, संचार और सूचना क्रांति और बाजार के बढ़ते प्रभुत्व के साथ हिंदी की भाषिक रचना में, शब्द-प्रयोग और वाक्य-विन्यास में बदलाव आया है।

जहां तक मूल्य दृष्टि का प्रश्न है, विश्वबंधुत्व भारतीय संस्कृति का केंद्रीय सरोकार रहा है। वेद की वाणी ''संगछध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम', उपनिषद् की 'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै' या फिर 'वसुधैव कुटुंबकम्' को लें सब में परस्पर संबंध में जीने और उदारता पर बल रहा है। सर्वधर्म समभाव हमारी नीति का प्राण है। मध्यदेश की वासी हिंदी जाति या समुदाय की चर्चा करते हुए हमारा ध्यान सहिष्णुता, राष्ट्रीयता, जन साधारण से एकात्मकता, मानवीय सरोकार, न्याय की पक्षधरता और खुलापन आदि पर जाना चाहिए। यह अवश्य है कि समय के साथ इसमें परिवर्तन भी हुआ है।

स्मरणीय है कि भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दिया था। उनका मानना था कि मातृभाषा के माध्यम से बच्चे के मन और बुद्धि का उपयुक्त विकास होता है। उन्होंने भाषा को राष्ट्रीय एकता हासिल करने का एक जबर्दस्त साधन माना था। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा माध्यम को विदेशी राज से उपजा भयंकर अभिशाप माना था। सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटकर देश का दौरा करने पर उन्हें लगा कि हिंदी ही ऐसी भाषा है जो ज्यादातर लोगों के द्वारा बोली और समझी जाती है। हिंदी जोड़ने का काम करती है। गांधीजी ने हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बनाया। वे सरल हिंदी को चाहते थे। उनके शब्दों में ''हिंदी उस भाषा का नाम है जिसे

हिंदू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं। हिंदुस्तानी और उर्दू में कोई फर्क नहीं है। देवनागरी में लिखी जाने पर वह हिंदी और फारसी लिपि में लिखी जाने पर वह उर्दू हो जाती है।'' (हरिजन सेवक, 15.1.1942)। संसद ने 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया और संविधान ने उसके प्रसार और विकास को संघ का कर्तव्य माना। उसे संपर्क भाषा भी कहा गया परंतु अंग्रेजी की प्रतिष्ठा अभी भी बनी हुई है।

आज संख्या, परिपक्वता, प्रकाशन और सांस्कृतिक योगदान हिंदी को विश्व भाषा का स्थान दिलाने की दिशा में अग्रसर हैं। साहित्य की दृष्टि से हिंदी भाषा सृजनधर्मी, लचीली और संप्रेषणीय हुई है। संचार माध्यमों में हिंदी प्रभावी हो रही है। उसके उपयोग के क्षेत्र बढ़े हैं और अभिव्यक्ति-सामर्थ्य का विस्तार हुआ है। दोहों, छंदों से चल कर मुक्त छंद नई कविता तक हिंदी की यात्रा उल्लेखनीय है। अन्य साहित्य विधाओं में भी हिंदी समृद्ध हुई है। फिल्म, संगीत, नृत्य और अन्य कलाओं की दुनिया में हिंदी की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति है। हिंदी क्षेत्र में हिंदी उच्च शिक्षा की भाषा बन रही है। हिंदी साहित्य आधुनिकता और उसके बाद के विमर्श से भी रू-ब-रू है। आज हिंदी धर्म, साहित्य, अध्यात्म ही नहीं बाजार की ई-भाषा बन रही है। हिंदी में संप्रेषण का दायरा बढ़ रहा है और पास-पड़ोस बदल रहा है, विस्तृत हो रहा है। हिंदी के बहुआयामी स्वरूप और सामर्थ्य के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता भी उसे मिलनी चाहिए।

हिंदी भारत और भारतीय अस्मिता के साथ गहराई से जुड़ी है। वह भारत की सांस्कृतिक विरासत की वाहिका और सामाजिक स्मृति का कोश भी है। चूंकि हम भाषा में ही जीते हैं, इसलिए संस्कृति के विविध पक्ष भाषा से अनिवार्य रूप से अनुविद्ध होते हैं। जीवन-संस्कार, रीति-रिवाज, विचार और मूल्य सभी के रचने में भाषा की केंद्रीय भूमिका होती है। आज भारत में 'हिंग्लिश' जन्म ले रही है और सरल बनाने के नाम पर हिंदी, अंग्रेजी जैसी बनाई जा रही है। दूसरी ओर अत्यंत संस्कृतनिष्ठ हिंदी भी अबूझ होने के कारण प्रयोग से बाहर हो रही है। हिंदी या कोई भी भाषा केवल प्रतीक मात्र नहीं होती है वह यथार्थ को न केवल समझने-समझाने में बल्कि उसे रचने और स्वयं अपनी पहचान बनाने में भी खास भूमिका अदा करती है। हिंदी की संघर्ष यात्रा जारी है और विश्व सम्मेलन जैसे प्रयास इसे सामने लाते हैं। हमें विश्वास है कि भाषा के प्रति गंभीरता का रुख अपनाया जाएगा और हिंदी को, उसे बोलने वाले समाज को समर्थ बनाया जाएगा। इस हेतु व्यापक पहल और समर्पित यत्न अपेक्षित हैं, जो आज सूचना प्रौद्योगिकी और संचार क्रांति के युग में संभव है। हिंदी कवि श्रीधर पाठक के शब्दों में यही कह कर विराम लूंगा—

''मेरे हिय-सर में सदा,
    बिकसहु दुई अरविंद।
हरि-पद-रति-सुरभित सुभग,
    एक हिंदी एक हिंद।।''

कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442 001, महाराष्ट्र

राष्ट्रीय अस्मिता और वर्तमान कविता

आचार्य एस. शेषारत्नम्

वरिष्ठ लेखिका प्रोफेसर सूरपनेनि शेषारत्नम् को अध्यापन का लंबा अनुभव है। दो सौ से अधिक लेख प्रकाशित। बयालिस पुस्तकें प्रकाशित। इनमें आलोचनात्मक अनूदित (तेलुगु हिंदी और हिंदी से तेलुगु) संपादित और पाठ्य पुस्तकें। अनेक संस्थानों से जुड़ी लेखिका ने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई हिंदी सम्मेलनों में सक्रिय हिस्सेदारी की है। कई पुरस्कारों से सम्मानित।

'राष्ट्रीय' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। मुख्यतः देश को एक इकाई मानकर लिखी जाने वाली कविताओं को राष्ट्रीय गीत या कविता कहा जा सकता है। ये कविताएं देश की सभ्यता और संस्कृति को दृष्टि में रख कर लिखी जाती हैं। ये कविताएं जातीय जीवन में विशिष्ट परिवर्तन लाकर देश और जाति को एक ही सूत्र में आबद्ध रखने के लिए प्रेरित करता है। ये कविताएं देश और जाति में एक समानता लाकर साम्यवादी जीवन की महत्ता का उद्‌बोधन देती हैं। सामाजिक विषमताओं को सुधारने के लिए भी सुधारवादी कविताएं लिखी जाती हैं। राष्ट्र की अस्मिता देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर रहती है। 'राष्ट्र' को डॉ. सुधींद्र ने यों परिभाषित किया—''भूमि राष्ट्र कलेवर है, जन इसका प्राण है, और संस्कृति उसका मानस है।'' भूमि, भूमिवासी जन और जन संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, और जन-संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है, संस्कृति है। इन तीनों इकाइयों के संकोच और विस्तार के साथ राष्ट्र और राष्ट्रीयता का स्वरूप भी संकुचित और विस्तृत होता रहता है।

अरस्तू के अनुसार, ''राष्ट्र परिवारों और ग्रामों का समुदाय है।'' अतः राष्ट्र एक निश्चित प्रदेश में स्थित, व्यवस्थित और संगठित समाज है। आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक हितों की समानता रखने वाले मनुष्य-समाज से राष्ट्र का जन्म होता है। राष्ट्र, समाज का ही एक विशिष्ट रूप है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देशवासियों का मोहभंग हुआ था। देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषम परिस्थितियां समाज की विकास की गति को अवरुद्ध करने लगी। इस स्थिति में समाजवादी विचारक डॉ. राममनोहर लोहिया के समतावादी सिद्धांत से प्रेरणा प्राप्त कर लेखकों ने राष्ट्र की अस्मिता को दृष्टि में रखकर कलम चलाई। लोहिया से प्रेरणा प्राप्त कर साहित्यकार ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें ''मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण बंद हो।'' लोहिया की राजनीतिक वैचारिक क्रांति ने साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को काफी प्रभावित किया था। राष्ट्र की वर्तमान दशा को देखकर संवेदनशील साहित्यकारों ने अपने ग्लानि एवं आक्रोश को समय-समय पर अभिव्यक्त कर समाज को जागृत किया। राष्ट्र की अस्मिता को दृष्टि में रखकर संवेदनशील साहित्यकार ने भारतेंदु युग से लेकर आज तक अपनी कलम को चलाते रहे। वर्तमान निराशापूर्ण वातावरण को देखकर साहित्यकारों ने गांधीवादी राष्ट्रीयता जो राष्ट्रीयता का मानवतावादी विस्तार था, उसे उभारने का प्रयास किया। पुनरुद्धार आंदोलन इसी विचार का उपज है, जिस विचार से ओतप्रोत होकर सामयिक कवियों ने प्रतिबद्धता के साथ अपने साहित्य के माध्यम से समाज को सचेत करने की सफल चेष्टा की। नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण साही, श्रीकांत वर्मा, दुष्यंत कुमार, भारतभूषण अग्रवाल, जगदीश गुप्त, धूमिल, कमलेश, देवेंद्र कुमार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, श्रीराम वर्मा आदि ने राष्ट्र का यथार्थ चित्र खींच कर राष्ट्रीय अस्मिता की दृष्टि से समाजवादी विचार को अभिव्यक्ति दी है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में निम्नवर्गीय मनुष्य का दुख-दर्द और बेचैनी का सजीव रूप दिखाई देता है। आजादी के बाद यहां के नागरिकों की दयनीय दशा को उन्होंने यों अभिव्यक्त किया—

''मैं क्या कर रहा था जब मैं मरा।
मुझसे ज्यादा तो तुम जानने लगते हो।
तुमने लिखा मैंने कहा था—स्वाधीनता।
शायद मैंने कहा था बचाओ।''

वैसे ही कवि ने वर्तमान समाज में नारी की दयनीय दशा का चित्र खींचते हुए हमारे समाज और संस्कृति का सजीव रूप हमें दर्शाने की सफल चेष्टा की। उन्होंने हमारे लोकतंत्र में आम आदमी की उपेक्षा सहन नहीं की। संवदेनशील कवि उपेक्षितों, दलितों एवं प्रताड़ितों के दुख-दर्द को समाज के सामने रखकर जन नेताओं की स्वार्थ नीति एवं निर्ममता को स्पष्ट करता है—

''एक औरत, दो बच्चे, एक गोद, एक पैदल
पता पूछती रहती है प्रधानमंत्री का

दस बरस बेदखल हुए उसे पांच अधपागल
तेरी उंगलियों से झलका, डूबा हुआ उजाला
तेरी वे निराश बाहें, तेरे वे उदास कंधे,
तू सहम गई है भय से,
कि तू शांत है हृदय से।''

वैसे ही वास्तविक स्थिति के बदलाव की आंतरिक छटपटाहट को कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने यों अभिव्यक्त किया—

''इंतजार शत्रु है।
उस पर यकीन मत करो, उससे बचो।
जो पाना है फौरन पा लो
जो करना है फौरन करो।
स्थिति
आसानी से बदली जा सकती है।
केवल थोड़ी-सी हरकत, जरूरी है।
तुम्हें हाथ बढ़ाना होगा।
...गिरो/टूटो/बिछड़ो, तोड़ो/फिर उबर लो।''

इतिहास के जंगल में भेड़ियों से लड़ने का एक मात्र अस्त्र साहस और एकता है—

''इतिहास के जंगल में/
हर बार भेड़िया मांद से निकाला जाएगा।
आदमी साहस से एक होकर,
मशाल लिए खड़ा होगा संवेदनशील।''

कवि की आकांक्षा है कि बेहतर स्वस्थ समाज और संस्कृति की स्थापना के लिए समाज के हर एक व्यक्ति के जीवन में गरीबी दूर हो जाए और चेहरे पर मुस्कान हो।

कवि शोषित-पीड़ित-ताड़ित व्यक्तियों की पक्षधरता लेकर समष्टि रूप से क्रांति का आमंत्रण देकर स्वयं उस क्रांति का प्रतिनिधित्व करता है। कवि 'खूंटियों पर टंगे लोग' संग्रह की 'कोट' कविता में अपने अभिमत को यों अभिव्यक्त करता है—

''अब तुम मुक्त हो
अकेले कमरे में मुक्त
किसी की शोभा या रक्षा
बनने से मुक्त
दूसरे के लिए की जाने वाली!
हर यात्रा से मुक्त
...मुझे यह मुक्ति नहीं चाहिए।
अपने लिए आजाद होने से बेहतर है
अपनों के लिए गुलाम बने रहना।
उसकी हर चोटी मेरी हो।
उसका हर घाव पहले मैं झेलूं...
उसका हर संघर्ष मेरा हो।
मैं उसके लिए होऊं।''

सक्सेना की समाजवादी सोच, भारतीय समाज और संस्कृति का सजीव रूप प्रतिबिंबित करती है। भारत का यथार्थ चित्र खींचकर कवि अपनी वेदना को अभिव्यक्त करता है।

इसी क्रम में कवि श्रीकांत ने महानगर के संत्रास एवं मोहभंग को यथार्थ रूप से यों अभिव्यक्त किया है—

''कुछ लोग मूर्तियां बनाकर
बेचेंगे क्रांति की
अथवा षड्यंत्र की।
कुछ और लोग सारे जीवन
कसमें खाएंगे लोकतंत्र की...
तुम जाओ अपने बहिस्त में
मैं जाता हूं अपने जहन्नुम में।''

कवि पश्चिम की आंधी के बीच भी अपनी जड़ों से जुड़ा रहना चाहता है। निम्न कविता में कवि की राष्ट्र की अस्मिता-बोध स्पष्ट है—

''पीली गर्द भरी। पश्चिम में आंधी आती
मंडराती कुछ आशंकाएं
तब हम किसी अन्य घाटी में जाएं
ऐसा मन कहता है
लेकिन फिर यह नदी, पेड़, यह क्षितिज।
और यह शाखा-टहनियां हमें बुलाती।
आह! इन्हें हम कैसे छोड़ें।
माना हम चिड़िया हैं,
लेकिन
जड़ वाली हैं।''

इससे स्पष्ट है कि कवि हमारे समाज और संस्कृति के अनुरूप राष्ट्र से जुड़ा रहना चाहता है। राष्ट्र के प्रति विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की संवेदना वर्तमान संकट स्थिति को प्रतिबिंबित करती है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह 'साथ चलते हुए' की कविताएं इसका जीवंत दस्तावेज हैं। 'कल की लड़ाई के लिए' कविता के माध्यम से कवि अपने अभिमत को यों व्यक्त करता है—

''छितरा गई लिबर्टी की प्रतिमा खंड-खंड
ढाका/वियतनाम में/सारी जवान लड़कियां
बंद
छटपटाती फौजी बैरकों में
कैसे गाऊं पथ्य किनारे
कौन-सा गीत...
दम तोड़ता है मनोबल तड़प-तड़प कर
संविधान के पन्ने हवा में फहराते हैं
जले हुए गांव और रौंदे हुए नगर
अंतर्राष्ट्रीय आचरण संहिता का
मरसिया गाते हैं।
...कुछ नहीं हो सकता
संगीनों के साए में
सिर्फ बलात्कार हो सकता है।''

जनता तानाशाही नृशंसता की शिकार हो रही है। कवि ने आम आदमी की पीड़ा को यथार्थ रूप में दर्शाया है। ये सारी स्थितियां देशीय हैं, जिन्हें प्रकारांतर से व्यक्त किया गया है। दुनिया भर में हो रहे जुल्मों के बहाने। दुनिया भर की तानाशाही व्यवस्थाओं द्वारा ढोए जा रहे जुल्म पर अंगुली रखने वाला व्यक्ति अपने देश के इतिहास और घटनाओं से अलग बेखबर कैसे रह सकता है? उनका और एक काव्य संग्रह, बेहतर दुनिया के लिए—समग्र रूप से भारतीय मिट्टी, पानी, धूप एवं हवा का संग्रह है।

इस विचारधारा के और एक संवेदनशील कवि देवेंद्रकुमार हैं। राष्ट्र की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालकर कवि अपने आक्रोश को यों अभिव्यक्त करता है—

''आपका यह जनतंत्र क्या है?
अंधेरे में दूर तक झिलमिलाती है—एक रोशनी
जो रोशनी से भी अधिक सहजनी है।
जूठ से भी अधिक निकम्मे इस कमजोर सच से
मुझे सख्त नफरत है।''

लोग अंतरराष्ट्रीय आचरण संहिता का मरसिया गाते हैं। देश की वर्तमान स्थिति को देखकर कवि भी तिलमिला उठते हैं। बंगलादेश और वियतनाम का संदर्भ तो बहाना मात्र है। देश में चारों ओर भयावह स्थिति है। देशवासियों के सपने निर्मम व्यवस्था के कारण दम तोड़ रहे हैं। अपनी अस्मिता, अपने आकाश, मिट्‌टी और जातीय स्मृतियों में हर कोई जीना चाहते हैं। लेकिन व्यवस्था व्यक्ति की इनसानियत को छीनकर उसकी आस्था को भग्न कर रही है। संवेदनशील कवि को नृशंस व्यवस्था के बीच में अपने अस्तित्व को टटोलने वाले व्यक्ति की छटपटाहट दिखाई देती है–

''बंदूकों में ढूंढते हैं–
किसान अपनी अस्मिता
स्त्रियां बच्चों की आंखों में टटोलती हैं–
अपना भविष्य
जवानी के दिन उन्हें याद नहीं आते
बच्चे भूल चुके हैं ककहरें।।''

क्रांतिचेता कवि नागार्जुन पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, संप्रदायवाद के विरुद्ध निरंतर संघर्ष करते रहे हैं–

''बापू, निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूं
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र
जब तक निर्मूल नहीं होंगे
हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
फॉसिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी
तब तक मैं इनके खिलाफ
लिखता जाऊंगा।''

समाज के प्रति नागार्जुन के उत्तरदायित्व के संबंध में रामविलास शर्मा का कहना है, ''जब समाजवादी दलों का बिखराव दूर होगा, हिंदी प्रदेश की श्रमिक जनता नई समाज व्यवस्था के निर्माण की ओर बढ़ेगी, अस्तित्ववादी सैलाब सूख चुका होगा, जब मध्यवर्ग और किसानों, मजदूरों में जन्म लेने वाले कवि दृढ़ता से अपना संबंध जनांदोलनों से कायम करेंगे तब उनके लिए सही मार्ग निर्देशक कवि नागार्जुन सिद्ध होंगे। नागार्जुन का सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिबिंब में अप्रतिम योगदान है। पूंजीवादी व्यवस्था और यांत्रिक भौतिकवादी दबावों के बीच से गुजरते हुए भी उनकी संवेदना धूसर नहीं हो पाई।'' वे लोक संस्कृति, देशी, जातीय, स्थितियों के प्रति आस्था रखने वाले कवि हैं।

वैसे ही त्रिलोचन की कविता निम्नवर्गीय मनुष्य का सजीव रूप है। सच्चे अर्थ में वे भारतीय जीवन एवं भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था रखने वाले कवि हैं। कवि हमारी संस्कृति को कामधेनु मानते हैं। जिसे हम जीवनपर्यंत तक दुहते रहते हैं–

''नदी ने कहा था : मुझे बांधो
मनुष्य ने सुना है
तैरकर धारा को पार किया
...नदी ने कहा था : मुझे बांधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बांध लिया
बांधकर नदी को।
मनुष्य दुह रहा है
अब वह
कामधेनु है।''

धूमिल की कविता सामयिक भारत का दर्पण है। चारों ओर फैली हुई विषैली संस्कृति को मार्मिक ढंग से कवि ने यों अभिव्यक्ति दी है–

''सिर्फ एक शोर है
जिसमें कानों के परदे फटे जा रहे हैं।
शासन सुरक्षा रोजगार शिक्षा...
राष्ट्रधर्म देशहित हिंसा-अहिंसा...
शैन्य-शक्ति देशभक्ति आजादी वीसा...
बाद बिरादरी भूख भीख भाषा...
शांति, क्रांति, शीतयुद्ध, एटमबम सीमा...
एकता सीढ़ियां साहित्यिक पीढ़ियां
निराशा...।'''

उक्त कविता में कवि भारत का यथार्थ चित्र खींचकर राष्ट्र-अस्मिता पर प्रश्न चिह्न लगाकर जनता को सजग रहने का संदेश देता है। कवि धूमिल विश्‍वजनीन संस्कृति के मूल जड़ों को पहचान कर युगीन चेतना से उसे जोड़कर राष्ट्रीय अस्मिता को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

वैसे ही लीलाधर जगूड़ी का प्रतीकात्मक ढंग से 'बच्चे' और 'चिड़िया' का चित्रण कर राष्ट्र का नवनिर्माण करने की आकांक्षा को अभिव्यक्त करते हैं। कवि वर्तमान स्थिति को देखकर हताश होकर भविष्य के प्रति आस्थावान होकर आगे की पीढ़ी के बच्चों में राष्ट्रीय अस्मिता की खोज करता है और उसकी चिड़िया मनुष्य की इच्छा का प्रतीक हैं। इस संदर्भ में स्वयं कवि का कहना है कि इसलिए मैं जब कहता हूं कि ''ये वो चिड़िया है, आग में जो इस बार जिंदा जलेगी/तब इस सवाल का कोई मतलब नहीं रह जाता कि आखिर इस जवान चिड़िया का नाम क्या है।''

वर्तमान में देश की स्थिति को देखकर कवि अज्ञेय स्वाधीन देश और राष्ट्र के प्रति अपनी गहरी संवेदना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि व्यवस्था काफी बिगड़ चुकी है, मूल्यों के विघटन की स्थिति है। कवि चाहता है कि राष्ट्र के हित में सामाजिक स्वतंत्रता के द्वारा ही मानवीय मूल्यों की स्थापना संभव है। स्वाधीन देश और राष्ट्र में दिन-ब-दिन मानवीय मूल्यों का ह्रास होना सहज नहीं है। कवि का कहना है कि हम अपनी अस्मिता को खो बैठे हैं। देश और जातीय चेतना जो पहले गहरी थी व्यक्ति के चरित्र में विचलन आने के कारण आज सुप्तावस्था में थी, इसे जगाना पड़ेगा। अतः कवि मानव समाज का प्रमुख इकाई मनुष्य, राष्ट्र के हित में मूल्यों के प्रति सचेत रहकर सामाजिक ढांचे को संवारना चाहता है।

''अच्छी कुंठारहित इकाई
सांचे ढले समाज से
अच्छा, अपना ठाठ फकीरी
मंगनी के सुख-साज से।।''

अज्ञेय का सांस्कृतिक बोध-आधुनिक भारत को एक समृद्ध अतीत की ओर ले जाता है। वैसे ही वैष्णवी संस्कार के कवि नरेश मेहता ने 'समय देवता में' कविता के द्वारा अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से धरती और मनुष्य को

सुखी रखने के लिए देवताओं का (चंद्र और सूर्य) का आह्वान करते हैं। इन्होंने राष्ट्र की अस्मिता को दृष्टि में रखकर ही देवताओं को आमंत्रण दिया है। कवि को मनुष्य के भीतर रही देवता की शक्ति के प्रति अटूट विश्वास है। वे उस देवता की जागृत होने की प्रतीक्षा में है—

''मुझे मनुष्य में विराजे देवता में
सदा विश्वास रहा है
इस देवता के जागृत होने की
प्रतीक्षा में
मैं अनंतकाल तक
प्रतीक्षा कर सकता हूं भीम।''

आजकल के राजनीतिक वातावरण का भयावह रूप कवि श्रीकांत वर्मा की कविताओं में मिलता है। उन्होंने आतंक, अन्याय, शोषण, उदासीनता, अजनबीपन, राजनीति, धर्म, नैतिकता, जनतंत्र, हत्या, लूटपाट, बलात्कार, मोहभंग, घृणा, क्षोभ, आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर मानवता की वकालत की है। 'जलसाघर' में उक्त प्रकार का चित्रण मिलता है। आम आदमी की कराह, विलाप और चीख का चित्रण करने वाले कवि अपने जड़ों से अलग होना नहीं चाहता—

''जिस पृथ्वी से जन्मा
उसे भुला दूं।
यह कैसे संभव है?
पानी की जड़ है पृथ्वी में
बादल तो केवल पल्लव है।
सूखे पेड़ों, पौधों, अंकुओं की अब
मौन पुकार सुनूंगा।
सूखी रहे तेरी अलका मैं यही झरूंगा।।''

कवि में हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा के प्रति आस्था है, इसलिए वह इससे कटकर रहना नहीं चाहता। उसमें शत प्रतिशत देशी और जातीय परंपराओं के प्रति आस्था है।

वैसे ही राष्ट्र की अस्मिता को सुरक्षित रखना चाहने वाले कवियों में राजकमल का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। वे नगर जीवन की यांत्रिकता से घृणा करते हैं। नगर के ढकोसलों, सरकार और संस्थाओं की नृशंसता से उन्हें चिढ़ है। अतः वे एक स्पष्ट राष्ट्र की कल्पना करते हैं—

''मेरे देश और मेरे मनुष्य का
भविष्य निर्धारित करने के लिए
अतीत निर्धारित करने के लिए,
मैं इतिहास पुस्तक की तरह
खुला हुआ पड़ा हूं
लेकिन मेरा देश
मेरा पेट, मेरा ब्लाडर,
मेरी अंतड़िया खुलने से पहले सर्जनों को
यह जान लेना होगा।
हर जगह नहीं जल अथवा रक्त
अथवा मांस अथवा मिट्टी,
केवल हवा, कीड़े, जख्म और
गंदे पनाले हैं, अधिक स्थानों पर
इस देश में।''

कवि मानवता को विनाश के कगार पर पहुंचाने वाले लोगों का विरोध करता है। आज के अणु संस्कृति एवं यांत्रिक जीवन के प्रति भी कवि को घृणा हुई है। भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त करते हुए कवि कहता है—''मुझे जंगल ज्यादा पसंद हैं। कोई भी शहर—बनारस या कोलकाता या सिमुलतला जैसा कोई कस्बा शहर, हम लोगों इस तरह मशीनी औपचारिकताओं और सामाजिक निस्पृहताओं से भर देता है, जिससे छुटकारा पाकर अपना स्वाधीन स्वेच्छात्मक जीवन बिताते रहना जनमत और समूह भावना के इस नकली प्रजातांत्रिक देश में—नागरिक समाज से संभव नहीं है।''

आज की राजनीति ने एक ऐसी विकट स्थिति पैदा की कि हिंदुस्तान के नागरिकों का जीवन स्तर गिर गया है। मूल्यों के विघटन की स्थिति उत्पन्न हुई है। अमीर और गरीब की खाई दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। नेताओं के दोहरे चरित्रों ने समाज के एक खास वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया। परिणामस्वरूप प्रजा को राजनीति के प्रति विश्वास ही नहीं रहा। स्वतंत्र भारत में खादी, टोपी और विचारों का जितना हनन किया जा सकता है उतना हनन हुआ। इस स्थिति से ऊब कर कवि कैलाश वाजपेयी 'घास' से हिंदुस्तान का नया चेहरा बनाना चाहते हैं—

''पहाड़, पेड़, कुछ नहीं
सिर्फ घास जर्रा ही साबुत रहेगा
नभ, समतल, साक, हरा
हम सोचते रहे
ऐसा इस देश का चेहरा बनेगा।''

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने राष्ट्र की उथल-पुथल की स्थिति का चित्र खींचते हुए समस्याओं से उलझती जाने वाली जनता की दयनीय दशा का चित्रण कर देशवासियों को सजग रहने का संदेश दिया है।

''लाख काटे जाइए जंगल हमेशा शेष है
यह क्या गजब का देश है,
यह क्या गजब का देश
प्रश्न जितने बढ़ रहे हैं
घट रहे उतने जवाब हैं।
होश में भी एक पूरा देश बेहोश है।''
—(तीसरा अंधेरा—कैलाश वाजपेयी, पृ. 46)

वैसे ही विजयदेव नारायण साही ने 'इस शताब्दी के बारे में' कविता के माध्यम से आपातकाल के समय लोकतंत्र के नाम पर हुई दमन नीति का विरोध कर राष्ट्र के हित में जनता को उक्त दमन नीति के विरुद्ध लड़ने का संदेश दिया है।

वैसे ही कुमारेंद्र पारसनाथ ने जनतंत्र के नाम पर शोषण प्रवृत्ति को अपनाए हुए नेतागण एवं सांसदों को रेखांकित कर स्वस्थ समाज की ओर इशारा करते हुए उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग की पक्षधरता की है—

''जान पर खेलकर/पुल उड़ाता/
और लाइन उखाड़ता/फिरता था सरकारी
फाईलों, पुलिस स्टेशनों और शराब की
टंकियों में आग जलाता चलता था।''

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कहते हैं—

''अणु-परमाणु मांगते तुमसे शीशदान,
देना होगा!
जलावर्त्त में निर्भय अपना पोत तुम्हें
खेना होगा!
अस्मिता के प्रति सजग रहने का संदेश दिया है।
नियति तुम्हारे लिए चिह्न लेकर विरोम
का जहां मिले!
वहीं तुम्हारे गति का गौरव गरज,
ठंड, संसार, हिले!
बलि के पथ पर बढ़ो ओर बलि की
दिन-रात पुकार करो!
बलि से बलि का,
चिनगारी से जीवन का शृंगार करो!''

जगदीश चतुर्वेदी कहते हैं–

''आज फिर खतरे में है मानवता।
और संहार ही इसका एक मात्र साधन है,
तो, होने दो नरसंहार, होने दो
रोको मत! रोको मत!
यदि बर्बरता खून के नशे में कैद है,
तो युद्ध का इलाज केवल युद्ध है।
रोको मत आततायी पर उठे दोनों हाथ,
होने दो युद्ध।''

श्याम सिंह 'शशि' के शब्दों में–

''युद्ध आज धर्म है, युद्ध आज कर्म है,
सैनिक के जीवन का, मात्र एक मर्म है।
देश की सुरक्षा में, सब कुछ त्याग के।
आओ मीत भाग के, गाओ गीत आगे का।''

विद्यावती मिश्र आह्वान करती हैं–

''एक इंच भूमि शत्रु पाए नहीं,
एक कदम भी आगे बढ़ पाए नहीं,
अपने हाथों में त्रिशूल लेकर खड़ा,
भोले बमभोले शंकर का धाम है।
हिमगिरि टेल रहा ले-लेकर नाम है।
उठो जवानो, देरी का क्या काम है।''

निस्संदेह इस युग के लेखकों ने विशेष रूप से मानवता के पक्षधर बनकर राजनीति एवं यांत्रिक परिवेश को बदल कर नैतिक दायित्व को निभाने का आग्रह राष्ट्रीय अस्मिता को बचाए रखने का बिगुल बजाया है।

इस प्रकार सामयिक युग के कवियों ने समय-समय पर देश में फैले हुए यथार्थ स्थितियों का अंकन कर समाज को सजग रहने का संदेश देते हुए राष्ट्र के हित में परिस्थितियों की आवश्यकता पर बल देते हुए राष्ट्र की अस्मिता को सुरक्षित रखने का संदेश दिया। कुछ लेखक शांति से हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपरा को अक्षुण्ण रखने की आकांक्षा को अभिव्यक्त कर राष्ट्र की अस्मिता को सुरक्षित रखना चाहें तो और कुछ लेखक क्रांति के द्वारा इसे साधना चाहते थे। सभी कवियों ने समतामय समाज की स्थापना के लिए देश की वर्तमान स्थिति के प्रति अपने आक्रोश और दुख को व्यक्त कर समाज को सजग कर राष्ट्र की अस्मिता के प्रति सजग रहने का संदेश दिया है।

4-66-1/4, लॉसंस वे कॉलोनी,
विशाखापट्टणम्-530017

ग्रामीण कथा साहित्य के सारस्वत प्रतिमान : रामवृक्ष बेनीपुरी

सीताराम पांडेय

कवि, कथाकार, समालोचक सीताराम पांडेय अवकाश प्राप्त अध्यापक हैं। पांच पुस्तकें प्रकाशित। फिलहाल स्वतंत्र लेखन।

हिंदी के समृद्ध लेखकीय परिदृश्य में बिहार की धरती पर ऐसे अनेक साहित्य मनीषियों ने जन्म लिया है, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर देशोद्धार तक के कार्यों में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर', गोपाल सिंह 'नेपाली', आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, आरसीप्रसाद सिंह, पं. मोहन महतो 'वियोगी', राजा राधिकारमण सिंह, फणीश्वर नाथ रेणु, बाबा नागार्जुन जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के बीच जवानी, साहस और उमंग की प्रतिमूर्ति, संघर्षशील साहित्यकार रामवृक्ष बेनीपुरी ग्राम्य-लोकजीवन के मसीहा के रूप में स्थापित माने जाते रहेंगे।

बेनीपुरी जी बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार थे। हिंदी गद्य-साहित्य में अपनी भावाभिव्यंजना के लिए उनके द्वारा विविध विधाओं का प्रयोग किया गया, जिसमें उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनवृत्त, यात्रा-वृत्तांत जैसी विधाओं में उनकी मानवीय मूल्यांवेषी प्रतिभा की शाश्वत एवं सार्थक अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। बतौर संपादक उनके द्वारा लिखी गई टिप्पणियां और अग्रलेख न केवल प्रभूत संख्या में प्रकाशित है बल्कि उन्होंने अनेक ग्रंथों का सुसंपादन भी किया। उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित कृतियों की संख्या लगभग सत्तर से भी अधिक हैं। इस प्रकार उनका साहित्य एक विस्तृत भूमि की तरह फैला दिखाई पड़ता है।

23 दिसंबर सन् 1902 ई. में बिहार प्रांत के मुजफ्फरपुर मंडललांतर्गत बेनीपुर ग्राम में उस समय अपने जीवन और जगत के प्रथम प्रकाश का साक्षात्कार किया, जिस समय संपूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता-संग्राम के संक्रमण काल से गुजर रहा था। उनके पिता फूलवंत सिंह जी एक साधारण किसान परिवार के थे। उनकी पत्नी रानी एक ईमानदार साथी की तरह निरंतर इन्हें सतत सहयोग करती रही। बाल्यावस्था में ही बेनीपुरी जी को अपने माता-पिता की छत्र-छाया से वंचित होना पड़ा। उनकी प्रारंभिक शिक्षा बेनीपुर में ही प्रारंभ हुई, परंतु अभिभावक की अनुपस्थिति और अर्थाभाव के कारण, कुछ दिनों के बाद मुजफ्फपुर जिला के अंतर्गत अपने ननिहाल बंशीपचरा चले गए; लेकिन वहां भी उनकी विद्यालीय शिक्षा अधिक दिनों तक नहीं चल सकी।

जब मैट्रिक कक्षा में पढ़ रहे थे, तभी सन् 1920 ई. के आस-पास गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे असहयोग आंदोलन से आंदोलित हो गए, क्योंकि विदेशियों के द्वारा देश में बर्बरतापूर्ण व्यवहार से उनका हृदय विक्षुब्ध हो गया था। अतः उनके हृदय में देश-प्रेम का भाव उमड़ पड़ा और सर्वतोभावेन उस क्रांति में कूद पड़े। जिसके कारण उनके विद्यालीय

शिक्षा का क्रम टूट गया। फिर भी स्वतंत्र रूप से स्वाध्याय करते रहे।

हालांकि 12 फरवरी, सन् 1921 ई. को गोरखपुर में घटित चौरा-चौरी कांड, जिसमें आंदोलनकारियों ने उत्तेजित होकर 21 पुलिसकर्मियों सहित पूरे थाने को जला दिया था। तब प्रतिक्रिया स्वरूप, गांधी जी ने हिंसा की निंदा करते हुए असहयोग आंदोलन को वापस लेने की घोषणा कर दी। उस वक्त भी बेनीपुरी जी ने उनके साथ इस प्रस्ताव का खुलकर समर्थन किया, क्योंकि हिंसा की राजनीति उन्हें भी पसंद नहीं थी।

वे स्वतंत्र्यांदोलन के एक अत्यंत लोकप्रिय ईमानदार समर्पित सेनानी रहे। इस क्रम में उन्हें लगभग नौ बार जेल जाना पड़ा। वे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से प्रतिबद्ध हो, सन् 1957 ई. में बिहार विधान सभा के सदस्य

निर्वाचित हुए। वे जनता के इतने हितैषी थे, कि पार्टी-बैठक में जब कुछ सदस्यों ने प्रस्ताव रखा कि प्रजा सोशलिस्ट से 'प्रजा' शब्द को हटाकर केवल सोशलिस्ट पार्टी ही रखा जाए, तो बेनीपुरी जी ने व्यंग्यात्मक लहजे में विरोध करते हुए कहा था कि 'प्रजा' शब्द को हटाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परंतु उनके साथ 'प्रजा' को भी हटाना होगा, क्योंकि 'प्रजा' के बिना 'राजा' का कोई अस्तित्व नहीं होता।

बेनीपुरी जी का व्यक्तित्व बहुआयामी होने के कारण उन्होंने कई संस्थाओं के प्रतिनिधित्व भी किया। बिहार हिंदी साहित्य-सम्मेलन के संस्थापक बनने के साथ-साथ न केवल सन् 1929 ई. में अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधानमंत्री नियुक्त हुए अपितु कुछ ही काल पश्चात् अध्यक्ष भी बन गए। बेनीपुरी जी जीवन पर्यंत पत्रकारिता में लगे रहे। सिर्फ पंद्रह वर्षों की छोटी उम्र में ही उन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से विशारद की डिग्री प्राप्त कर ली और अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित भी किए गए।

भले ही उनके द्वारा विद्यालीय एवं महाविद्यालीय प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की औपचारिकताएं पूरी नहीं की गई हो, परंतु अपनी प्रखर-प्रतिभा एवं स्वाध्याय के सहारे जीवनोपयोगी सार्थक शाश्वत साहित्य की सर्जना कर उन्होंने यह तो साबित कर ही दिया, कि स्वाध्याय के बदौलत व्यक्ति शैक्षिक डिग्री प्राप्त किए बिना भी जीवन के सभी क्षेत्रों में न केवल विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर, बड़ा विद्वान बन सकता है बल्कि डिग्रीधारियों की अपेक्षा उक्त क्षेत्रों में वह अधिक उपादेयता का प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकता है।

अतः प्रारंभिक परिवेश में महाकवि तुलसीदास प्रणीत 'रामचरितमानस' का निरंतर अध्ययन करने के कारण उनकी प्रतिभा पूर्ण प्रवृत्ति पर क्षिप्र गति से साहित्यिक एवं धार्मिक प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् वे साहित्य सर्जनोन्मुख हो गए। प्रारंभ में काव्य-सृजन भी करते थे, जो तात्कालिक सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती था। कुछ वर्षों के बाद ही हिंदी-साहित्याकाश में ज्योतिर्मय नक्षत्र बनकर, गद्य-साहित्य को अपनी अप्रतीम प्रतिभा-ज्योति से ज्योतित करने लगे। वे मूलतः ग्रामीण संस्कारों के लेखक थे। उनका साहित्य आम जन-जीवन के अत्याधिक समीप होने के कारण काफी लोकप्रिय हैं। उनकी ओजपूर्ण और भावुक भाषा लिखने का अंदाज अलग था। वे शब्द-चित्रकारिता एवं कलात्मक भाषा लिखने के लिए साहित्य जगत में चर्चित रहे।

बेनीपुरी जी के साहित्य-सर्जना के मध्यकाल में तीन लेखक अपनी शैली के लिए प्रसिद्ध माने जाते थें। राजा राधिकारमण सिंह, आचार्य शिवपूजन सहाय और रामवृक्ष बेनीपुरी। राजा साहब अपने भारतीय साहित्य के लिए, शिवपूजन सहाय अलंकृत एवं मुहावरेदार भाषा के लिए और रामवृक्ष बेनीपुरी जी सुशैल्पिक सहजोक्ति तथा शब्द-चित्र-कारिता के लिए मशहूर थे। तभी तो मैथिलीशरण गुप्त, प्यार से इनकी लेखनी को 'जादू की छड़ी' कहते थे। वे एक लेखक होने के साथ-साथ एक कुशल पत्रकार भी थे। उनकी शैली में सर्वत्र जिंदादिली मिलती है। उनकी भाषा शैली के संबंध में 'दिनकर' जी ने लिखा है कि—

''भाव और विचार जब बेनीपुरी जी के टकसाल से होकर गुजरते हैं, तब वे ऐसे ही सजीव हो उठते हैं। वह साहित्य का संगतराश है, वह शब्दों के मुंह में जुबान धर देता है।'' जहां फूलों की ताजगी और शबनम का खुशनुमापन पहले से भी बढ़ जाता है, जहां प्रकृति के सजीवता में असल से भी होड़ लेते हैं, वहीं बेनीपुरी जी की कलम से निःसृत भाषा की करामात देखने को मिलती हैं। उनकी सामयिक विचारधारा, अद्भुत कल्पना और सतेज भाषा की ज्योति में उनका संपूर्ण साहित्य जगमगा उठा है। बेनीपुरी जी अपनी रंगीन कल्पना के लिए बेजोड़ थे। विशेषकर नाटक और निबंध में। कल्पना की चरम सीमा उनके नाट्य-साहित्य 'सीता की मां' में देख सकते हैं। ऐसी कल्पना के बल पर वे सहानुभूति का सृजन करते हैं।

'नई संस्कृति की ओर' शीर्षक निबंध में बेनीपुरी जी ने नई संस्कृति के स्वरूप, उसके निर्माण का निरूपण किया है। स्वतंत्रता के सूर्योदय होने के पश्चात् वर्षों से तथाकथित अमीरों की मुट्ठी में कैद सिसकती भारतीय संस्कृति भी अब मुक्त हो गई है। पुनः उसका संवर्द्धन, संपोषण एवं विकसन का कार्य अत्यावश्यक है। क्योंकि संस्कृति की उपेक्षा कर, केवल अर्थनीति और राजनीति के सहारे देश की उन्नति नहीं हो सकती।

लेखक राष्ट्र के विकास में संस्कृति को सर्वोत्तम सहयोग समझता है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में एक ओर सत्य, प्रेम, अहिंसा, सहिष्णुता एवं सहनशीलता समाहित हैं, तो दूसरी ओर इसके विशाल हृदय में षोडस संस्कार, नारी महत्ता, विश्वबंधुत्व, समन्वय-वाद, उपासना पद्धति, राष्ट्र-प्रेम एवं मानव-कल्याण की भव्य-भावनाएं हिलोरें मारती रहती हैं। अतः लेखक का मानना है कि पुरानी संस्कृति वर्ग विशेष के लिए ही थी, किंतु नई संस्कृति जन-संस्कृति होगी। इसलिए इस निबंध में उन्होंने भारतीय कलाकारों को जन-जीवन के साथ नई संस्कृति को आकलित करने हेतु आमंत्रित किया है। बेनीपुरी संस्कृति के उन्नायकों में से एक थे। उनके अनुसार भौतिक जीवन के साथ-साथ सांस्कृतिक-सौंदर्य की भी अत्यंत आवश्यकता है। अतः लेखक का हृदय कलापूर्ण होने के कारण कला के कमनीय पक्ष को समझता है। अतएव लेखक का संस्कृति, कला एवं सौंदर्य की ओर झुकाव होना स्वाभाविक ही है।

लेखक ने 'गेहूं और गुलाब' का नारा बुलंद किया है। क्योंकि उसको दोनों की

आवश्यकता है। परंतु प्राथमिकता गेहूं को ही दी है। क्योंकि गेहूं भौतिक-पक्ष का प्रतीक है तो गुलाब सांस्कृतिक-सौंदर्य का। लेखक ने इस ललित निबंध में जीवन और सौंदर्य के लिए बड़ा ही सटीक-प्रतीकात्मक उपमान और उपमेय प्रस्तुत कर, अपने सार्थक साहित्य-सौंदर्य का परिचय दिया है। इसके माध्यम से भौतिक जीवन की कमनीय कला का महनीय महत्त्व को भी दर्शाया है। कुल मिलाकर यह भावात्मक शैली में लिखा हुआ एक विचारोत्तेजक निबंध है। इसकी अभिव्यक्ति में ओज है, पर कर्कशता नहीं, प्रतिपाद्य विषय गंभीर है, पर पढ़ने में सरल और सुबोध।

बेनीपुरी जी के द्वारा 'कहीं धूप कहीं छाया' शीर्षक कहानी समाजवाद के सिद्धांत पर लिखी गई प्रगतिवादी कहानी है। तात्कालिक परिवेश में कुछ लोग बिना परिश्रम किए ही मोहनभोग और मलाई खा रहे थे, तो दूसरे हड्डी तोड़ परिश्रम कर भी दाने-दाने के लिए मुंहताज थे और रोटी के एक टुकड़े के लिए लालायित थे। कुछ लोग भोग-विलास के गुलछर्रे उड़ा रहे थे, तो कुछ दुख-दर्द एवं कष्ट से कराह रहे थे। अमीरी और गरीबी की गहरी खाई उस समय समाज में पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। प्रस्तुत कहानी उस समाज के इसी दुरंगी वैषम्य चित्र को स्थापित करने के उद्देश्य से लिखी गई है।

इसका मुख्य कारण था, पूंजीवाद के नींव पर राजतंत्र की स्थापना। जिसके कारण सामाजिक जीवन में भयानक विषमता बढ़ गई थी। उस समय पूंजीवादी सामंतियों द्वारा किसानों एवं मजदूरों का शोषण-दमन किया जा रहा था।

प्रस्तुत कहानी में बाबू साहेब धनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और मखना गरीबों का। मखना सामंतवाद के संघर्ष की समाधि पर कुर्बान होने वाले शहीदों का परिचायक है। अतः इस कहानी में लेखक का अभिप्राय है कि समाज का सुख-दुख, हर्ष-विषाद, धूप-छांव के समान रूप से वितरण के लिए क्रांति हो। तभी समाज और देश की उन्नति संभव है तथा इसका उन्नयन मुमकिन है। दिनकर जी ने भी कहा है कि—

''जब तक मनुज-मनुज का,
सुख-भाग नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा।''

जब तक सामाजिक शक्ति का सांगठनिक समवेत—'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः' के आधार पर नहीं होता, तब तक देश, समाज और संसार की सच्ची प्रगति कल्पना मुमकिन नहीं है। लेखक समाजवादी विचार-धारा के व्याख्याता हैं। अतः उन्होंने इस कहानी को उसी विचारधारा के अंतर्गत लिखा है।

बेनीपुरी जी के संपूर्ण कथा साहित्य में समंवयात्मक दृष्टि, नियंत्रात्मक विचार, मध्यममार्गीय जीवन जीने की उत्प्रेरणा की सशक्त अभिव्यक्ति है। 'सुभान खां' शीर्षक कहानी में लेखक स्वयं कहता है—''ईद-बकरीद को न सुभान दादा हमें भूल सकते थे, न होली-दीवाली को हम उन्हें। होली के दिन नानी अपने हाथों से पूए, खीर और गोस्त परोसकर सुभान दादा को खिलाती और, तब मैं ही अपने हाथों से अबीर लेकर उनकी दाढ़ी में मिलाता।'' आज के सामाजिक धरातल पर सांप्रदायिक तनाव के माहौल में लेखक का यह समंवय समाहित अभिव्यक्ति, न केवल श्लाध्य है, बल्कि स्तुत्य भी माना जाएगा।

नियंणत्रात्मक एवं मध्यम मार्ग का एहसास कराती 'तथागत' से कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—''वीणा के तार को इतना मत ऐंठो कि टूट जाए। इतना मत ढीला करो की आवाज न निकले। बीच का रास्ता मझिम्म निकाय है पतिव्रत्य धर्म पालिता एवं त्याग की प्रतिमूर्ति सुंदरी पत्नी यशोधरा के सुखद-सान्निध्य तथा तमाम भौतिक ऐश्वर्य को छोड़कर आध्यात्मिकता के अन्वेषणार्थ पलायित गौतम, गया के ग्रामीण परिवेश में बरगद-वृक्ष के नीचे महीनों से साधनारत हैं। भूख से ऐंठती उनकी अंतरियां और सुजाता के हृदयावेष्ठित हवि के बीच की स्थिति में जीवन जीने का एक सांस्कृतिक एहसास मध्यम मार्ग है। वर्जनाएं अनुशासन पैदा करती हैं, लेखक वर्जनाओं एवं अनुशासन की नहीं, वह तो स्वशासन की अपेक्षा रखता है। यही मूलभूत धारणा उस जमाने से लेकर लंबे अंतराल तक लगभग आधे एशिया को आंदोलित करके रख दिया था। वस्तुतः यह जीवन-दर्शन की सशक्त अंतिम स्वीकार्य परिणति है मझिम्म निकाय, बीच का रास्ता।''

'आम्रपाली' नाटक में प्रेम और देह के अंतर्द्वन्द्व के बीच 'मधूलिका' आम्रपाली से कहती है—''पुरुष एक हिंसक जानवर है, जो हर खूबसूरती को अपना शिकार समझता है, झपट्टा मारता है, चूमता है, फिर चल देता है, दूसरे शिकार की तलाश में।''

पुरुषों के विषय में सामाजिक धरातल पर यह कठोर सोच, हृदय को झकझोर कर रख देती है। 'नाटक' के माध्यम से सभ्य सामाजिक परिवेश में कुछ ऐसे पुरुषों की भ्रष्ट मानसिकता एवं पतित-चरित्र का पर्दाफाश लेखक के द्वारा न केवल ईमानदारी पूर्वक किया गया है, बल्कि वर्तमान सामाजिक जीवन में निर्दोष नारियों को अनाधिकार हवस के शिकार बनाने वाले उन राक्षसी प्रवृत्ति के पुरुषों की तुलना हिंसक जानवरों के साथ की गई है। जो सामाजिक संस्कृति एवं सभ्यता को अपने घृणित एवं कुत्सित आचरण से बदनाम करना चाहते हैं। अतः भारतीय संस्कृति का सर्वनाश करने वाले वैसे पुरुषों को लेखक के द्वारा स्वयं को सुधारने हेतु सांकेतिक भाषा में संदेश भी दिया गया है। सामाजिक बुराइयों को उजागर कर, लेखक ने अपने साहित्य-धर्म-निर्वाह का श्लाघ्य प्रयास किया है।

भारतीय भूमि पर प्राचीन परंपरा से चली आ रही दान की पृष्ठभूमि में बेनीपुरी जी के द्वारा लिखा गया 'नेत्रदान' एक नाट्य-साहित्य है। जिसमें अपने ही पुत्र के साथ मातृत्व की कठोरतम क्रूरता का मार्मिक एवं कारुणिक संवाद का परिदृश्य है।

लंका पर अशोक का पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा के सहयोग से सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने के पश्चात् उपहारित विदेशी युवती तिष्रक्षिता अपने मध्य यौवन के दहलीज पर खड़ी थी, जबकि अशोक अपनी जवानी के उभर-खाभर को लांघकर, बुढ़ापे के समतल में पदार्पण कर चुके थे। ऐसी स्थिति में उस युवती के यौवन की ज्वार को शांत करने में इनकी संकुचित एवं शिथिल इंद्रियां समर्थ नहीं थी। हां, उस तरुणी के यौवन के स्पर्श एवं घर्षण से बूढ़ा अशोक केवल अपने मन की तृष्णा को शांत कर, आनंद महसूस जरूर करते थे।

तभी तो लेखक ने कहा है—''युवती को बूढ़ा भोग भी नहीं सकता और छोड़ भी नहीं सकता।'' लेखक का यह कथन सामाजिक धरातल पर न केवल सत्य को रूपायित करता है, बल्कि मानवीय विकृतियों के कठोरतम पहलू को उजागर भी करता है। यौवन के ज्वार को बुढ़ापे की विवशता नहीं संभाल सकती? तभी तो विदेशी संस्कृति की संपोषिका तिष्रक्षिता अपने धर्म-पुत्र युवक कुणाल से प्रणय-निवेदन की धृष्टता कर बैठती है। परंतु, कुणाल इस घृणित एवं निष्कृष्टतम निवेदन को भारतीय परंपरा की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अस्वीकार कर देता है। तब तिष्रक्षिता का क्रोध, कुणाल के प्रति पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है और वह दान की ओट में हृदय की खोट को छुपाकर उससे 'नेत्र-दान' मांगती है।

कुछ क्षण के लिए कुणाल इतिहास की पृष्ठभूमि में दधीचि, राजा शिवि और सत्य हरिश्चंद्र को देखता है। जिन्होंने अस्थि-मांस दान कर देश में दान की गरिमा को गिरने से बचाया था। क्योंकि दान इस देश की आध्यात्मिक आत्मा है, भारतीय संस्कृति के प्राण है और भारतीय परंपरा की पहचान है। उन ऐतिहासिक महापुरुषों के द्वारा महादान के महनीय महत्त्व का स्मरण करते हुए कुणाल, अपने आंसू की छलकन से आंखों को पवित्र कर, उसे चमकते चाकू से चख कर उस तिष्रक्षिता रूपी चांडालिन के चरणों पर चढ़ा दिया।

इस प्रकरण के द्वारा लेखक ने विदेशी संस्कृति की भारतीय संस्कृति से तुलनात्मक अंतर को स्पष्ट किया है। तिष्रक्षिता विदेशी संस्कृति की परिचायिका है, तो कुणाल भारतीय संस्कृति का परिचायक। लेखन ने संपूर्ण विश्व की संस्कृति में भारतीय संस्कृति को सर्वोत्तम माना है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में उचित-अनुचित, छोटा-बड़ा, माता-पुत्र, पिता-पुत्री आदि के साथ वैचारिक शर्त्त समाहित है, जिसका प्रतीक कुणाल है और अन्य देशों की संस्कृति विचारशून्य और अवरेण्य है, जिसका प्रतीक तिष्रक्षिता है।

बेनीपुरी जी के 'नेत्र-दान' में सहज, सुंदर भारतीय युवक कुणाल के साथ वह कठोरतम, क्रूरतापूर्ण, निर्दयतम कुकृत्य के कारुणिक एवं मार्मिक दृश्य, न केवल पाठकों की पपनियां गीली करके रख देते है।

बेनीपुरी जी के संपूर्ण साहित्याध्ययन करने से साफ-साफ दृष्टिगोचर होता है कि उनके साहित्य में न केवल उर्दू और प्रांतीय शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है, बल्कि कुछ आंचलिक शब्दों के आ जाने पर भी वह भाषा खड़ी बोली के ही परिष्कृत रूप का अनुगमन करती दिखाई पड़ती है। उनकी शैली में नाटकीय तत्व की प्रचुरता है।

अतः फुदकने वाली शैली में ग्राम्य-साहित्य लिखने वाले, साहित्यकारों में रामवृक्ष बेनीपुरी अकेले दिखाई पड़ते हैं।

रामबाग चौड़ी, पो.-रमना,
मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)

भारतीय कला वैभव का प्रतीक : खजुराहो

राधाकांत भारतीय

वरिष्ठ लेखक राधाकांत भारती पिछले पच्चीस वर्षों से लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर साठ से भी अधिक रूपक, वार्त्ताएं एवं नदियों पर लोकप्रिय वृतचित्र प्रदर्शित तथा प्रसारित। सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन तथा पत्रकारिता में सक्रिय।

भारत के कलात्मक मंदिरों में श्रेष्ठ कहलाने वाले खजुराहो के मंदिर मध्य प्रदेश के छतरपुर इलाके में स्थित हैं। महोबा के चंदेलवंशी राजाओं के शासन-काल में इन मंदिरों का निर्माण हुआ था। दसवीं सदी में सत्तासीन होने वाले ये चंदेलवंशी अपनी वीरता के साथ ही सुशासन तथा कलात्मक निर्माणों के लिए भी प्रसिद्ध रहे हैं। लगभग तीन सौ साल के शासन-काल में इन्होंने देवी-देवताओं के अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण करवाया। उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि खजुराहो समूह के मंदिरों का निर्माण ग्यारहवीं सदी के समय हुआ था। मंदिरों के शिल्प तथा वास्तुकला को देखकर कई इतिहासकार इसे गुजराती स्थापत्य कला का नमूना मानते हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि डॉ. गौरीशंकर ओझा के अनुसार ''खजुराहो के मंदिरों का निर्माण गुजरात के सौराष्ट्र से आए सोमपुरा समुदाय के शिल्पियों द्वारा किया गया है। ये लोग सुप्रसिद्ध मंदिर सोमनाथ के इलाके के मूल निवासी थे। लेकिन सन् 1026ई. में महमूद गजनवी के आक्रमणों से परेशान होकर इस क्षेत्र में भाग आए। इनको यहां राजाश्रय भी मिला और मंदिर निर्माण का मौका भी।'' इतिहासकार के इस कथन की पुष्टि डूंगरपुर के पास देव सोमनाथ मंदिर के देखने से होती है, जिसका निर्माण गुजरात की प्रसिद्ध नागर शैली में किया गया है।

खजूर और करील के कंटीले वृक्षों वाले छतरपुर के इस इलाके में मूलतः छोटे-बड़े अस्सी मंदिर थे, जिनमें अब केवल बाइस उचित स्थिति में विद्यमान हैं। इन मंदिरों के साथ यह भी आश्चर्यजनक तथ्य जुड़ा है कि ये मंदिर किसी एक संप्रदाय के नहीं हैं। इनमें शैव, वैष्णव तथा जैन मंदिरों को एक समान प्रतिष्ठा दी गई है, जो निर्माण कर्ताओं के 'सर्वधर्म समभाव' की श्रेष्ठ भावना का परिचायक है। खजुराहो के कतिपय मंदिरों में दर्शकों को आश्चर्यचकित करने वाली कामकला में रत-नर-नारियों की अनेक प्रतिमाएं मिलती हैं।

मंदिर की दीवारों पर रति-रंग में लिप्त प्रतिमाओं को किस उद्देश्य से उभारा गया है, यह बात अब तक उलझनपूर्ण है। कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि मैथुन रत प्रतिमाओं को मंदिरों की दीवारों पर प्रदर्शित कर वे इंद्र देवता को आकर्षित करके भारी वर्षा और वज्रपात से रक्षा करना चाहते थे। अन्य स्थानों पर इतिहासकारों का मत है कि चंदेल राजवंश तंत्र-साधना में विश्वास रखता था। और ऐसी मैथुन युगल मूर्तियां उसी के प्रभाव स्वरूप निर्मित की गई हैं। एक अधिक स्वीकृत मत के अनुसार भारत के मध्यकालीन समय में बौद्ध धर्म का उत्कर्ष हुआ था। बड़ी संख्या में लोगों ने बुद्धत्व को अपना लिया था, ऐसी स्थिति में हिंदुओं के आचार्यों ने जन समुदाय विशेषकर युवा वर्ग को मंदिरों की ओर आकर्षित करने तथा गृहस्थ जीवन की सीख देने के लिए मंदिरों में मैथुनरत प्रतिमाओं का निर्माण कराया, जिसका बौद्ध धर्म में पूर्णतः निषेध है। मंदिरों में कामक्रीडा रत इन मूर्तियों की स्थिति होने के प्रश्न का सही उत्तर भले ही न मिले, किंतु स्थापत्य तथा शिल्पकला के उदाहरण के रूप में खजुराहो के मंदिर निश्चित रूप से अभूतपूर्व माने जाते हैं। इसी आधार पर यूनेस्को ने इसे विश्व की श्रेष्ठ सांस्कृतिक धरोहर की मान्यता प्रदान की है।

खजुराहो समूह के मंदिरों को शैव, वैष्णव तथा जैन समूह के वर्गो में विभक्त किया जाता हैं। लेकिन मुख्य वर्ग, पश्चिम तथा पूर्वी समूह के रूप में कटिबद्ध किए गए हैं। यहां का प्रमुख शैव मंदिर-कंदरिया महादेव पश्चिमी समूह में है। इसी के साथ वैष्णव देवालय लक्ष्मण मंदिर है। जबकि सबसे विशाल जैन मंदिर पार्श्वनाथ पूर्वी समूह में स्थित है।

आरंभिक काल में निर्मित खजुराहो के मंदिर दानेदार ग्रेनाइट पत्थर के हैं, जबकि पश्चिमी समूह के अधिसंख्यक मंदिरों का निर्माण पीले तथा गुलाबी बलुआ पत्थरों से किया गया है, जिसे निकट के पन्ना की पहाड़ियों से लाया गया था।

पश्चिमी समूह के मंदिरों में कंदरिया महादेव चंदेल शिल्पकला का श्रेष्ठ प्रतीक है। करीब बत्तीस मंदिर इस शिवालय के मध्य में ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठित हैं। मंदिर की छत तथा दीवारों पर अनेक देवी-देवताओं की सुसज्जित और सुंदर प्रतिमाएं हैं। मंदिर के प्रवेश द्वार पर सुडौल तथा नक्काशी वाले स्तंभ हैं। मेहराबयुक्त प्रवेश द्वार के बाद बरामदे तथा

सुंदर प्रकोष्ठ से होकर मंदिर के केंद्र स्थल पर जाया जाता है। कंदरिया महादेव मंदिर के अंदर तथा बाहर की दीवारों पर अनेक आकर्षक प्रतिमाएं हैं, जिन्हें देखकर कोई भी कला पारखी मुग्ध हो जाता है।

चौसठ योगिनी के नाम से प्रसिद्ध मंदिर खजुराहो के सबसे पुराने मंदिरों में से एक है। देवी महाकाली को समर्पित इस जीर्ण मंदिर में चौसठ तोरणों में विभिन्न मुद्राओं में चौसठ प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं, जो शाक्त साधना की प्रतीक हैं।

यहां से थोड़ी दूरी पर अलग से लक्ष्मण मंदिर है, जो तत्कालीन वास्तुकला का उत्तम नमूना है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण चौसठ योगिनी मंदिर के लगभग पचास वर्षो बाद किया गया था। यह मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित है, जिसके प्रवेश द्वार पर ही त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश के दर्शन होते हैं। मंदिर के गर्भगृह में व दीवारों पर दशावतार की प्रतिमाएं अलग-अलग मुद्राओं में बनाई गई हैं। विशेषकर नरसिंह तथा वराह अवतार की मूर्तियां विशेष रूप से आकर्षित करती हैं।

खजुराहो के पश्चिमी समूह के मंदिरों में आगे की ओर चित्रगुप्त मंदिर है। बलुआ पत्थरों से निर्मित यह भव्य मंदिर आदित्य यानी सूर्यदेव को कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। पूरब की दिशा में इसका भव्य प्रवेश द्वार है तथा केंद्र में रथ पर सवार सूर्यदेव की आदमकद सुंदर प्रतिमा है। इसके बाद ब्रह्मदेव को प्रतिष्ठा देने वाला भव्य मंदिर विश्वनाथ है। मंदिर के केंद्र में त्रिमुख ब्रह्मा का मंदिर है। ऊंचे चबूतरे पर बने इस मंदिर के उत्तरी द्वार पर सजीव दिखने वाली सिंह मूर्तियां हैं तथा दक्षिणी द्वार पर हाथियों की सुंदर मूर्तियां पर्यटकों का स्वागत करती हैं।

यहां के मंदिरों के समूह में स्थित भव्य मतंगेश्वर मंदिर की प्रतिष्ठा स्थानीय लोगों में अधिक है और अब भी इसकी पूजा अर्चना की जाती है। मंदिर के गर्भगृह में पत्थर का विशाल शिवलिंग स्थापित है, जिसकी ऊंचाई दस फुट के करीब तथा व्यास 20 फुट से अधिक है। ऐसी मान्यता है कि भारत के विशालतम शिवलिंगों में से एक यह मतंगेश्वर महादेव आज भी जागृत स्थिति में है और यहां भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

दूसरी ओर पूरब समूह के मंदिरों की ओर पहुंचने के लिए खजुराहो गांव को पार करके जाना पड़ता है। इस इलाके में मुख्यतः जैन संप्रदाय के मंदिर हैं, इनमें आदिनाथ, पार्श्वनाथ और शांतिनाथ के मंदिर मुख्य हैं। पत्थर के चबूतरों पर स्थित ये मंदिर उत्तुंग शिखरों से विभूषित हैं। जैन मंदिरों का यह पूरबी समूह एक ऊंचे घेरे के अंदर है। इनमें पार्श्वनाथ मंदिर प्रमुख है, जिसके केंद्र में काले संगमरमर से निर्मित पार्श्वनाथ की नई प्रतिमा सन् 1860 में स्थापित की गई थी। इस

मंदिर की दीवारों तथा परकोठे में यक्ष और अप्सराओं की सुंदर और सुडौल प्रतिमाएं सजी हैं। यहीं पर उन्नत वक्षस्थल से युक्त एक युवती की प्रसिद्ध प्रतिमा है, जो अपने पांव से कांटा निकालने की भावमुद्रा में है। खजुराहो शिल्पकला के प्रतीक स्वरूप इस मूर्ति को काफी लोकप्रियता मिली है। इसके साथ ही नयनों में काजल लगाती एक सुंदर अप्सरा की प्रतिमा है, जिसकी सौम्यता देखकर दर्शकगण भावविभोर हो उठते हैं।

इनसे अलग हटकर खड़ा एक पुराना जैन मंदिर है, जिसके अनेक स्तंभों पर सुंदर नक्काशी की गई है। प्रत्येक खंभे पर जंजीरों के मध्य घंटियां दिखाई गई हैं। इसी कारण लोगों ने इसे घंटायी मंदिर कहकर पुकारना शुरू कर दिया है। इस जैन मंदिर में भगवान महावीर की माता के सोलह दिव्य स्वप्नों का दृश्य प्रदर्शित किया गया है। इनमें यक्ष और अप्सराओं के अलावा, अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों की भित्ति प्रतिमाएं हैं। मंदिर के केंद्र में जैन देवी की प्रतिमा पंख फैलाए गरुड़ पक्षी पर आरूढ़ है।

जैन संप्रदाय के मंदिरों में अपेक्षाकृत बाद में बना मंदिर आदिनाथ का है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंदिर के केंद्र स्थान में जैन संत आदिनाथ की प्रतिमा आधुनिक समय में स्थापित की गई है। मुख्य प्रतिमा के अलावा इस मंदिर में यक्ष और यक्षिणियों की भावमुद्रा में निर्मित अनेक प्रतिमाएं दर्शनीय हैं।

खजुराहो से लगभग पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है—दुलादेव तथा चतुर्भुज मंदिर। इनमें महादेव शिव की प्रतिमा भगवती पार्वती के साथ प्रतिष्ठित है। चतुर्भुज मंदिर चंदेल राजवंश के द्वारा संभवतः खजुराहों का आखिरी निर्माण है। मंदिर में मुख्य प्रतिमा के अलावा अप्सराओं की अनेक नृत्यरत तथा रतिक्रिया में मग्न सजीव दिखने वाली मूर्तियां हैं।

मध्यकालीन भारत में निर्मित खजुराहो के ये मंदिर शिल्पकला के श्रेष्ठ प्रतिमान हैं तथा चंदेल राजवंश की आराधना, कलाप्रियता और गौरव के कालजयी स्तंभ हैं। इस स्थल पर शैव, वैष्णव तथा जैन संप्रदायों को एक साथ उद्भासित करने वाले ये मंदिर अब भी सर्वधर्म समभाव का पावन संदेश दे रहे हैं।

इन मंदिरों में भारतीय तथा विदेशी दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देने वाली अनेक प्रकार की मैथुनरत प्रतिमाएं हैं। आध्यात्मिक भावभूमि के एक ही सील पर दिव्य आराधना तथा नर-नारियों की काम क्रीड़ा का ऐसा प्रदर्शन संसार के अन्य देशों में कहीं भी

उपलब्ध नहीं है। दार्शनिकों तथा तंत्र विद्या के साधकों के अनुसार यहां नारी को दिव्य शक्ति और सृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसे पुरुष सनातन के संयोग से वंश परंपरा चलाई जाती है। दूसरा मत तांत्रिक क्रिया के अनुसार कुंडलिनी जागरण की साधना है, जिसमें कटिस्थल या योनिद्वार से ऊर्ध्वगामी क्रम में मस्तक तक आठ स्तर चक्र मानव शरीर में होते हैं। क्रमशः संभोग से ऊपर उठकर मस्तक तक पहुंचने के साथ ही कुंडलिनी जगाने की प्रक्रिया पूर्ण होती है, तब दिव्य प्रकाश तथा आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्ति की मधुमती भूमिका आरंभ होती है।

उल्लेखनीय है कि खजुराहो के मंदिरों में पूजनीय देवी-देवताओं के साथ शक्तिरूपा तथा सृष्टि वाहिनी नारी को अनेक प्रकार की विभिन्न भावमुद्राओं में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। शिल्पकारों के कला कौशल और निर्माण कार्य की प्रवीणता ने जैसे पत्थरों को सजीव बनाने का चमत्कार किया है। मातृशक्ति का आराध्य रूप, नृत्यरत चंद्रमुखी, शृंगाररत नायिका, सुडौल स्तनों से संतान को दुग्धपान कराती वात्सल्यपूर्ण भावमुद्रा, दर्पण में सौंदर्य निरखती मुग्धा, परनारी-संभोग देख लाजवंती नायिका, स्थूल नितंबिनी मैथुनरत कामिनी, विस्मय मुद्रा में पत्र लिखती नारी के अलावा और जितने रूप संभव हो सकते हैं शिल्पकारों ने सबको प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

जहां तक इसके नाम खजुराहो की बात है, अनुमान है कि इस इलाके में पाए जाने वाले खजूर वृक्ष की बहुतायत से खजुराहो का नाम पड़ा होगा। स्वतंत्रता के बाद खजुराहो की ओर अधिक ध्यान दिया गया। इसे अब एक लोकप्रिय पर्यटन केंद्र के रूप में विकसित किया गया है। सांस्कृतिक वैभव को उजागर करने के लिए यहां पर प्रतिवर्ष खजुराहो समारोह के नाम से सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन किया जाता है।

मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो पहुंचने के लिए दिल्ली से वायुयान सेवा उपलब्ध है। वहां विमानपत्तन है, किंतु रेल स्टेशन नहीं है। रेल स्टेशन छतरपुर से चवालीस किलोमीटर तथा पन्ना से तीस किलोमीटर पक्की सड़क द्वारा खजुराहो पहुंचा जा सकता है। भारत सरकार तथा राज्य सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा खजुराहो को एक सुंदर पर्यटन स्थल के रूप में विकसित किया गया है। सरकारी पर्यटक निवास के अलावा यहां आधुनिक पांच सितारा होटल भी हैं। इनके अलावा ठहरने के तथा घूमने के लिए समुचित सुविधाएं उपलब्ध हैं।

56, नागिन लेक, पीरागढ़ी, नई दिल्ली-110087

कश्मीरी लोकनृत्य के कुछ ऐतिहासिक व सामाजिक आयाम

अवतारकृष्ण राजदान

ग्यारह पुस्तकों के लेखक और कई पुरस्कारों से सम्मानित अवतारकृष्ण राजदान मूलतः कश्मीरी भाषी हैं। इसके अलावा हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी का भी ज्ञान। कश्मीरी संस्कृति से संबंधित सौ से अधिक शोधपरक लेखों के अलावा सौ कहानियां, दस नाटक तथा तीन सौ से अधिक रेडियो वार्ताएं प्रसारित।

ड्राइडन ने कहा था कि ''नृत्य और गायन ही एक ऐसी कला है जिसे मानव को आध्यात्मिक शांति मिलती है और संयम से रहने का सलीका।''

भारत के हर प्रदेश की अपनी नृत्य परंपरा रही है। यह इसीलिए है, क्योंकि नृत्यों पर संबंधित प्रदेश की जलवायु तथा लोगों के रहन-सहन एवं व्यवसाय की अलग-अलग छाप प्रत्यक्ष रूप से पड़ती है। पंजाब का भांगड़ा, असम का बिहू, मध्यप्रदेश का बेसाखो, उड़ीसा का करम या बंगाल का जावा इस बात का प्रमाण है। कश्मीर को छोड़कर, यदि हम जम्मू-कश्मीर की दो इकाइयों, जम्मू तथा लद्दाख के नृत्य को देखें तो यह भी यहां के जलवायु, रहन-सहन एवं व्यवसाय के अनुसार ही प्रदर्शित किया जाता है। जम्मू का भांगड़ा, बैसाखी, तोहड़ी, फुम्मणी, चाल, छजा, ढीको, सोहाडी, जागरन और लद्दाख के जबरु, शोम और दर्द नृत्य प्रसिद्ध हैं। कश्मीर में भी नृत्य का जीवन-इतिहास पुराना है। इतना पुराना, जितना कि इस लीला-स्थली का इतिहास है। यही कारण है कि यहां समय-समय पर कई ऐसी नृत्यांगनाएं हुई हैं, जिनकी यश-कीर्ति की किरणें सारे भारत में फैली हुई थी। किंतु दुर्भाग्य से यहां समय-समय पर कुछ ऐसी राजनीतिक परिस्थितियां उत्पन्न हो गई जिनके परिणामस्वरूप, रंगमंच का दीपक बुझना शुरू हो गया और नृत्य की विभिन्न शैलियां गुमनामी के गर्त में विलीन हो गई किंतु कल्हण के अनुसार, यहां नृत्य-प्रदर्शन करने की शुरुआत मंदिरों और विहारों में हुई है। यहां तब तक कोई भी धार्मिक उत्सव अधूरा माना जाता था, जिसमें नृत्य-प्रदर्शन न हो। इन स्थानों में नृत्य प्रदर्शन पूजा-पाठ के निकट माना जाता था। किंतु यह धर्म की दीवारों से कब बाहर निकल कर, आम आदमी के मनोरंजन का साधन बन गया इसका इतिहास भी पुराना है।

नीलमत पुराण के अनुसार यहां के लोगों को प्रायः साल में चार बार नृत्य करने का सुअवसर प्राप्त होता था। एक, उस समय जब कोई धार्मिक उत्सव हो। दूसरा, उस समय जब कोई सामाजिक उत्सव हो। तीसरा, उस समय जब कृषि-संबंधी त्योहार हो जैसे, बीज बोना या फसल काटना तथा अंतिम उस समय जब वर्ष का सबसे पहला हिमपात हो। कल्हण के अनुसार यहां नृत्य-प्रदर्शन प्रायः मंदिरों में किया जाता था। महाराजा जलूक के राजत्वकाल में एक सौ से अधिक नृत्यांगनाएं ज्येंठेश्वर मंदिर में, स्थाई तौर पर रहकर नृत्य-प्रदर्शन करती थी। इससे साफ लगता है कि उस समय भारत की तरह, कश्मीर में भी नृत्य पवित्रता की सीमा के अंदर किया जाता था, जिसको देवदासी नृत्य कहते हैं। यह केवल स्त्रियों के लिए विशिष्ट था। जापान में इस नृत्य को 'विशा' कहते हैं। बिल्हण ने अपनी काव्यकृति 'विक्रमादेवचरित्रम्' में कश्मीर के नृत्य-प्रदर्शन के विषय में उल्लेख किया है कि कश्मीरी नृत्यांगनाएं अपनी कुशल-नृत्य-कला के कारण प्रसिद्ध थीं। इनकी नृत्य कला की तुलना रंभा, चित्रलेखा तथा उर्वशी जैसी स्वर्गिक अप्सराओं जैसी नृत्य शैली से की जाती थी। यहां के सुप्रसिद्ध संस्कृत लेखक वसुगुप्त ने अपने दार्शनिक सूत्रों में कश्मीरी रंगमंच की अंतरात्मा से, नृत्यांगना की आत्मा से तथा प्रक्षकों की इंद्रियों से तुलना की है।

आजकल कश्मीर में इस तरह के नृत्य प्रदर्शन का प्रचलन नहीं है। यह कश्मीर के सीमांत क्षेत्र हिंदू कुश में प्रसिद्ध रहा है। हां, सामाजिक उत्सवों पर नृत्य करना हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए आम बात है। हिंदुओं में विवाहोत्सव पर, जब दूल्हा बारातियों समेत दुल्हन लाने के लिए ससुराल जाता है, तो पहले वह रंगोली पर चढ़ता है। इसके बाद महिलाएं चक्राकार में इस पर नाचती हैं। इसको कश्मीरी में 'वीगि नचुन' कहते हैं। यह एक पुराना नृत्य माना जाता है। वह इस तरह का नृत्य करते हुए मृत्यु देवता के गीत गाते हैं।

आजकल भी जब यहां पहली बार हिमपात होता है, तो इसको देखकर लोग खुशी से मचल जाते हैं। इसे धन-धान्य का प्रतीक माना जाता है। लोग किसी अहाते में जाकर बर्फ के गोले एक दूसरे पर फेंक कर खुशी का इजहार करते हैं। इसको यहां 'शीन-जंग' कहते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि यही शीन-जंग उस समय के नृत्य का विकृत रूप हो सकता है।

इसी तरह दामोदर गुप्त का कहना है कि यहां नृत्यांगनाएं अपने नृत्य का प्रदर्शन उस समय करती थीं, जब कोई सामाजिक उत्सव

हो। इन तथ्यों से यह साफ लगता है कि यहां नृत्य करने की यह प्राचीन परंपरा रही है और यही कारण है कि चौथी शती से सातवीं शती तक के अंतराल में यहां के प्रत्येक गांव में एक नृत्य-दल स्थाई तौर पर ग्रामवासियों के मनोरंजनार्थ काम करता था। यह वही समय था, जब यहां प्रत्येक संप्रदाय का अपना एक नृत्य दल व वादक दल कायम हो गया था। इसके अतिरिक्त यहां के हर एक मंदिर या देव स्थान के अपने गायक, वादक तथा भगवान की विभिन्न लीलाओं का नृत्य द्वारा प्रदर्शन करने के लिए, नृत्यांगनाएं और सूत्रधार होते थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उन मृण टिकड़ियों से भी मिलता है, जो बीसवीं शती के प्रारंभ में 'हारवन' के स्थान पर, उत्खनन के पश्चात् प्राप्त हुई है। इनका संवत् पुरातत्ववेताओं ने चौथी शती के आस-पास ठहराया है। इन पर नक्काशों ने कुछ ऐसे चित्रों का अंकन किया है, जिससे यहां की तत्कालीन ललित कलाओं के विकास का आभास होता है। इनमें से पहली मृण टिकड़ी पर जो चित्र अंकित है, वह नृत्यांगना का है। इसके नृत्य करने से उसके केश इधर-उधर लहराते दिखाए गए हैं। इसके धेरे में तीन संगीतकार पंक्ति में बैठे दिखाए गए हैं। पहला बांसुरी बजाता है, दूसरा मंझीरा तथा अंतिम हुमक—हुमक कर, ढोल बजाता हुआ दिखाई गया है। यहां नृत्य का मूल भाव रूमानी लगता है, ठीक उसी तरह, जिस तरह आजकल मंच पर कोई नर्तकी अपना नृत्य-प्रदर्शन कई वादक-कलाकारों के बीच करती है। इन मृण टिकड़ियों को देखकर ऐसा लगता है कि उस समय कश्मीर की नृत्य कला खूब पनपी थी तथा यह धर्म के दायरे से निकल कर, लोगों के मनोरंजन का मुख्य साधन बन गई थी। इसके साथ एक और बात सामने आती है, वह यह कि उन दिनों कश्मीर में नृत्य-कला इतनी चर्मोत्कर्ष पर थी कि नक्काश एवं चित्रकार भी उससे प्रेरणा लेकर, चित्र एवं डिजाइन बनाते थे, ठीक उसी तरह, जिस तरह आजकल के कलाकार आस-पास के वातावरण से प्रेरणा लेकर अपनी रचना करते हैं।

मंदिरों और बौद्ध विहारों के अतिरिक्त यहां का नृत्य राजदरबारों की शोभा कब बन गया है, निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। अब तक इस विषय पर कहीं से कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। अलबत्ता राजतरंगिणी में दर्ज है कि एक दिन महाराजा ललितादित्य शिकार खेलने के लिए निकले तो रास्ते में उसने दो सुंदरियों को नृत्य करते देखा। इसको देखकर वह प्रभावित हुए और उनके पास जाकर पूछा कि तुम्हारे इस तरह बदन इठलाने-घुमाने का क्या उद्देश्य है? उत्तर में वे बोली कि हम एक पेशेवर नृत्य मंडली से संबंध रखती हैं। नाच और गान की हमारी प्राचीन परंपरा रही है और हम इसको आगे की पीढ़ियों के लिए जीवित रखना चाहती हैं। यह सुनकर उनके दिल में अहसास हो गया कि उनके शाही दरबार में भी नृत्य मंडलियों का आयोजन होना चाहिए और इस तरह से उन्होंने मन बना लिया कि यहां वही नृत्यांगना रह सकती है, जो अपने पेशे को व्यवसाय के रूप में अपना ले। इंद्रप्रभा इसी काल की नृत्यांगना हुई है, जिसके नृत्य से प्रेक्षक इतने प्रभावित हुए थे कि वे इसको स्वर्गपुरी से इंद्र द्वारा भेजी गई अप्सरा कहते थे। इसके अतिरिक्त यह वह समय रहा है, जब राजदरबार की नृत्य मंडलियों में उच्च जातीय लड़कियों के साथ-साथ, मध्यम और निम्न वर्ग की लड़कियों ने भी भाग लेना शुरू कर दिया था। यहां तक कि कई राजाओं ने इनको अपनी महारानी भी बनाया। उदाहरणस्वरूप उत्पलवंशीय राजा चक्रवर्मन ने तत्कालीन दो नृत्यांगनाओं से शादी की थी जिनका नाम नागलता और हंसा था। प्रतापदित्य-2, एक ऐसी नृत्यांगना के प्रेम में उलझ गए थे, जो एक व्यापारी की पत्नी थी। इसके बाद वह महाराजा की पत्नी बनकर, उनके दरबार में मौजूद अन्य नृत्यांगनाओं के साथ नृत्य प्रदर्शन में लगी। यद्यपि इसके बाद भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं, फिर भी इस बात पर साफ तौर पर पर्दा नहीं उठता है, कि यहां नृत्य किसके दरबार में पहली बार प्रदर्शित किया गया है। यह एक गंभीर विषय है, जिस पर वाद-विवाद करने की गुंजाइश है।

कश्मीर घाटी में इस्लामी शासन-काल में नृत्य प्रदर्शन को जबरदस्त धक्का लगा। कट्टरपंथी मुसलमानों ने 'निजामे मुस्तफा' का अभियान चलाया, जिसके फलस्वरूप, इस कला से संबद्ध कलाकार, अन्य स्थानों की ओर पलायन कर गए और अपनी कला का प्रदर्शन करने में असमर्थ रहे। समय बीतने के साथ परिस्थितियां भी सुधरने लगी और नृत्य को एक बार फिर पनपने का अवसर मिल गया। यह सुल्तान जैन-उल-आब्दीन का समय था। यह उन्हीं की रुचि का कारण है कि नृत्य सभाओं का आयोजन फिर से होने लगा और वह भी ताल व लय के साथ। इसके दरबार में कई नृत्यांगनाएं मौजूद रहती थी, जिनमें तारा, रत्नमाल, दीपमाल और नृपमाल ने, उस समय सारे भारत में प्रसिद्धि पाई थी और इनमें से तारा 46 भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन करना जानती थी। इसके शासन काल में हुई नृत्य एवं रंगमंचीय गतिविधियों पर प्रकाश डालते हुए यहां के प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीवर अपनी जैन राजतरंगिणी में लिखते हैं—''रंगमंच एक सुंदर बाग की तरह होता था। यहां पंक्ति में दीपक जलाए जाते थे। इनके सामने प्रेक्षक मद्यपान में ऐसे मस्त रहते थे जैसे मधुकर रंगारंग फूलों का रस लूटने में मस्त रहता है। रंगमंच पर नृत्यांगनाएं ढोल की ताल पर कभी दायीं, तो कभी बायीं टांग उठाकर, कंधे-कलाइयां नचाकर, कमर और कूल्हे लचकाकर और हाथों को मटका-मटका कर, कभी उठकर, तो कभी बैठकर, नाचती थी। इसी प्रकार का नृत्य प्रदर्शन देखकर प्रेक्षक यहां झूम जाते थे और उनकी खूब वाहवाही होती।

हसनशाह और युसुफशाह 'चक' ने भी यहां नृत्य के विकास में सराहनीय काम किया है किंतु इनके बाद यहां राजनीतिक हलचल के परिणामस्वरूप, रंगमंचीय गतिविधियां ठप्प होकर रह गई। फिर भी, कुछ कलाकार इस भागते हुए समय के दामन को थाम कर, इसकी कुछ शैलियां बचाने में लगे रहें और तब से कश्मीरी-नृत्य का दूसरा युग शुरू हुआ किंतु इससे पहले के कई बार, यहां के

लोक नृत्यों का शीराजा बाहरी हस्तक्षेप के कारण बिखर गया और हम अपनी कलात्मक विरासत से वंचित हो गए। जो कुछ बच गया था, उस पर भारतीय और ईरानी तर्ज के साथ तुर्क, हूण, अफगान, मुगल, सिख और डोगरा युग का भी रंग चढ़ गया। इस प्रकार कथक के रूप में 'बच नगमा', देवदासी के रूप में 'हाफिज नृत्य' और अन्य कई नृत्य सामने आए जिनका प्रदर्शन इस समय बड़े दिनों पर प्रतीकात्मक तौर पर किया जाता है। इनमें से कुछ, समय बीतने के साथ-साथ, गुमनामी के गर्त में विलीन हो गए हैं और कुछ एक ऐसे हैं जिनका प्रदर्शन न सिर्फ कश्मीर में, बल्कि भारत के कोने-कोने में पसंद किया जाता है। इनमें से कुछ एक इस प्रकार हैं—

(1) हाफिज नगमा—यह देवदासी नृत्य है और किसी समय यह आध्यात्मिक आनंद का साधन माना जाता था। इस तरह का नृत्य यहां पठान-काल में आया। यह केवल उन स्त्रियों तक सीमित था जो शुचि और पवित्रता का प्रतीक हुआ करती थी। नृत्य के समय बड़ा चोगा पहनकर, स्थानीय आभूषणों और शृंगार से सज्जित, गाने के अर्थ के साथ, अपने चेहरे, हाथों और अन्य अंगों की चेष्ठाओं से, भावों को प्रकट करती थी। कभी-कभी संगीत की थिरकती तरंगों पर, अपने शरीर को हिला कर, खड़ा हो जाती और फिर ताल पर कुछ कदम झूमकर, वापस अपनी जगह पर आकर गाना आरंभ कर देती। इस तरह हमें इस नृत्य में कत्थक नृत्य के भाव-नृत्य की छाप मिलती है, जिसमें कलाकार संकेतों से गाने के बोल समझाता है। इस नृत्य में बजाए जाने वाले वाद्य-यंत्रों में संतूर, रबाब, साजि-कश्मीर, वसूल या तबला उल्लेखनीय है। दुर्भाग्यवश, यह नृत्य पठान सरदारों और महाराजाओं के कारण अपना आध्यात्मिक परिवेश खोकर, अंत में रुसवा होकर, गलियों में भटकने लगा। इस नृत्य की ऐसी हालत को देखकर सन् 1934 ई. में इस पर प्रतिबंध लगा। इस तरह से यह नृत्य लुप्त हो गया, जबकि समय की मांग है कि इसको विकसित किया जाए। यहां इस बात की ओर ध्यान देना उचित रहेगा कि सन् 1925 ई. में विख्यात हाफिजा या सुंदरी हाफिजा नूरजहां उर्फ नूरसागर ने जिस गीत के बोल गाकर हाफिज-नगमा का प्रदर्शन किया था, वह सूफी कवि ख्वाजा हबीब उल्लाह नवशहरवी के थे, जो कश्मीरी में मंजे हुए कवि माने जाते हैं। गीत के बोल इस तरह हैं—

''चननि पोश रंग यारस डीठनम तन।
हा च नो वनिजेस बोजि आलम।।''

अर्थात् ''मैंने उसके अंगवानी रंग नाजुक शरीर को देख लिया है किंतु तुम इसका वर्णन किसी से नहीं करना अन्यथा भेद खुल जाएगा।'' कश्मीर की इस हाफिजा या सुंदरी की मृत्यु सन् 1960 ई. में हुई थी।

(2) बच नगमा—'बच' कश्मीरी में लड़के को कहते हैं अर्थात् वह नृत्य जो लड़के द्वारा प्रदर्शित किया जाए उसको 'बच नगमा' कहते हैं। इसका नर्तन अफगानिस्तान की तर्ज पर किया जाता है जिससे स्पष्ट लगता है कि वहां यह अफगानों की ही देन हो सकती है। इस नृत्य का अभिप्राय है, किसी तरह से प्रेक्षकों का मनोरंजन करना। यह नृत्य अभी जीवित है और आमतौर पर कश्मीरी शादी-ब्याह में, इसका खूब प्रदर्शन होता है। इस तरह के नृत्य के लिए आजकल भी लड़कों को तैयार किया जाता है। नृत्य करने से पहले इनको ऐसे कपड़े पहनाए जाते हैं, जो किसी हद तक कत्थक के 'अंगरखा' जैसा होता है। इस कपड़े को कश्मीरी में 'पिशवाज' कहते हैं। इसके ऊपर का भाग ब्लाउज जैसा होता है और निचला भाग 'स्कार्ट' की तरह, काफी फैला हुआ होता है। कंधे पर दुपट्टा कुछ इस तरह डाला होता है कि इसका एक भाग कंधे पर, तो दूसरा बाजू पर रहता है, जिसे वह नृत्य-प्रदर्शन के समय, कभी सिर पर, तो कभी हाथों में घुमा सके। पांव में घुंघरू लगाना एक जरूरी बात है। वाद्यों की हल्के धुनों के साथ नृत्य करने पूर्व वंदना प्रस्तुत की जाती है। यह क्रम कुछ मिनट तक रहता है और इसी बीच संगीत की धुन बदलती है और 'बच' या नर्तक पहले विलंबित, फिर मध्य और अंत में द्रुतलय पर घुंघरू पहने पांव, विभिन्न अंदाजों में उठाकर, अपनी कला की निपुणता का परिचय देता है। उस समय यह दर्शकों के लिए प्रशंसा का पात्र बन कर, खूब वाहवाही लूटता है। कभी-कभी वह बैठे-बैठे आम इनसान के दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों की नकल उतार कर अपने नृत्य में यथासंभव प्रदर्शित करता है। उदाहरणस्वरूप औरतों का कंघी करना, सुरमा लगाना, चरखा कातना, आटा गूंथना, रोटी बनाना इत्यादि या मर्दों के लिए पग बांधना, बेड़े की छड़ी के सहारे चलना या सिगरेट पीकर मुंह से धुआं छोड़ना आदि अनुकरण करके, प्रेक्षकों के सामने प्रस्तुत करता है। इस बीच साजनवाज साज बजाते हैं। कश्मीरी शादी ब्याह के मुख्य आकर्षण तो 'बच नगमा' ही हैं और इसका आनंद-रस सभी लूटते हैं। इस नृत्य में बजने वाले वाद्ययंत्र हैं हारमोनियम, सारंगी, रबाब, तुंबकनारी (कश्मीरी ढोलकी) तथा मटका। इसके संगीतकार भी निपुण संपन्न होते हैं। नर्तक संगीत की धुन सुनकर गायन आरंभ करता है और संगीतकार अपनी धुन से इसको दोहराते हैं। यहां हर अंतरे के बाद गाना चलता है और संगीत पर नर्तक, नर्तन के कुछ टुकड़े पेश करता है। नृत्य का यह क्रम घंटों तक चलता रहता है। बीच में अंतराल के समय, चाय के दौर चलते हैं। कभी-कभी गायक भी इनके साथ सुर से सुर मिलाता है। इस नृत्य में अंदाज, गतभाव चक्र, तोड़े, टुकड़े और तत्कार की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस नृत्य की आजकल भी धूम है और इसको बढ़ावा देने की जरूरत है।

(3) रोफ—'रोफ' कश्मीरी नृत्य का सर्वाधिक बहुचर्चित रूप है। रॉफ वस्तुता 'रव'से निकला है। 'रव' एक कश्मीरी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है सूर्य। चूंकि सूर्य सारे विश्व में चक्राकार घूमता है इसलिए इसको घूमने का नृत्य भी कहते हैं। यह नृत्य सारे विश्व में पहुंच गया है और जब कश्मीर की झलकी दिखानी हो, तो रोफ-नृत्य से ही शुरू किया जाता है। पहले यह चक्राकार रूप में प्रदर्शित किया जाता था, किंतु अब इसका रंग-रूप बदल

गया है। इसमें अब लड़कियां और ललनाएं ही भाग लेती हैं। इसमें कोई साज नहीं बजता। हां, इस नृत्य से संबंधित विशेष गान तो हैं, जो नृत्यांगनाएं स्वयं गाकर, इस नृत्य का प्रदर्शन करती हैं। आमतौर पर, यह विवाह या ईद पर ही प्रदर्शित किया जाता है किंतु इस समय इसकी हर एक उत्सव पर धूम होती है। सुंदर कश्मीरी चोगा या 'फिरन' पहने तथा सिर पर कड़ाई-नुमा 'स्कार्फ' लगाए, कानों में बालियां तथा आंखों में सूरमा लगाए, सुंदर कश्मीरी ललनाएं पंक्ति में, दो टोलियों में बंटकर, आमने-सामने हो जाती हैं। प्रत्येक टोली में सात या आठ लड़कियां होती हैं। दोनों टोली की ललनाएं दोनों बाहें फैलाए, अपने दाएं और बाएं, पार्श्व वाली लड़कियों की कमर में हाथ डालती हैं। सबसे पहले किसी एक पंक्ति की लड़कियां या ललनाएं गान शुरू कर देती हैं। दूसरी लड़कियां उसी अंदाज में इसको दोहराती हैं। यह नृत्य करने की शैली का प्रकार है। गायन जब शुरू हो जाता है, तो अगली पंक्ति की ललनाएं इसको इसी अंदाज में दोहराती हैं। फिर लय के अनुसार, एक टोली एक साथ अपना दायां पैर आगे बढ़ाती हैं और बाएं पैर को धीमी गति देकर, जल्दी अपने स्थान पर लाती है। तब दाएं पांव को फिर लहराकर, पीछे लेकर, वापस आगे लाती हैं और बाएं को पहली जैसी गति देती हैं।

'रोफ' एक पुराना नृत्य है किंतु अब यह मुसलमान समुदाय तक ही सीमित रह गया है। इसकी रमणीयता को बढ़ावा देने के लिए, अब इसमें साजों का प्रयोग करने के साथ-साथ, इसका प्रदर्शन मंच पर भी किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अब इसमें लड़के भी भाग लेने लगे हैं किंतु रोफ नृत्य वस्तुतः लड़कियों का ही नाच है। रोफ की मौलिक गति को ध्यान में रखकर, इसमें बहुत हद तक विस्तार किया गया है और आगे भी इसको विस्तार देने की गुंजाइश लगती है।

(4) हिकट—'हिकट' और सौराष्ट्र का गरबा-नृत्य में असमानता होने पर भी समानता है। इस नृत्य का यहां विशेष स्थान है। यहां तक कहा जाएगा कि ये रोफ का अभिन्न अंग बन कर रह गया है। यह मूलतः शादी-ब्याह का नृत्य माना जाता है और विशेषकर मेंहदी लगाने के दिन, दो जवान लड़कियां एक विशेष अंदाज में लोकगीत गाती, एक-दूसरे के हाथ पर हाथ मारती हुई, चक्राकार या गोलाकार में झूम-झूम कर नाचती हैं और वह भी द्रुतगति के साथ। गाना समाप्त होने पर ये एक-दूसरे की ओर मुंह किए, दायां हाथ दाएं हाथ से, और बायां हाथ बाएं हाथ से पकड़कर, पैरों के पंजों को केंद्र बनाकर, तथा खिसका कर, चक्र लगाती हैं और गाना गाती हैं। इनके इस घुमाव में कई लड़कियां गिर जाती हैं। पंजाब में भी लगभग इसी तरह का नर्तन किया जाता है जिसको 'कीकली' कहते हैं। हो सकता है कि यह नृत्य यहां पंजाब से आया हो या यहां के कलाकारों ने इसको पंजाब में प्रचारित किया हो। हिकट को रोफ के अंतिम चरण से जोड़ दिया गया है और इस समय इन दोनों का मंचन किया जाता है।

(5) दमॉल्य—'दमॉल्य' या दुमाली एक कलंदराना नृत्य है, जो अब भी जीवित है। ऐसा लगता है कि सूफियाना संगीत की चौदह मात्राओं की ताल, जिसे धमाल कहते हैं, में यह नृत्य भी शामिल रहा है। कश्मीर में इस नृत्य की अलग परंपरा रही है, एक अलग इतिहास रहा है। कश्मीर में दुअमाली को उछल-कूद कहते हैं। इस नृत्य-प्रणाली की शैली अब लुप्त हो चुकी है, जबकि मैदानी क्षेत्रों में इसका प्रदर्शन, अब भी हो रहा है और हजारों की संख्या में लोग, इसको देखने के लिए आते हैं। फिर भी कश्मीर में इसकी शैली लुप्त हो चुकी है किंतु इसकी आत्मा अमर है। इस समय यह नृत्य-प्रणाली, यहां के 'वातल' या सफाई करने वालों तक ही सीमित रही है। राजतरंगिणी में वर्णित है कि कश्मीर का भंगी वर्ग प्राचीन काल से ही नृत्य, नाटक और संगीत में रुचि लेता था। अपनी इस सुरुचि को जगाने के लिए नृत्य की एक अलग शैली अस्तित्व में आ गई जिसको आजकल 'वातल दमॉल्य' कहते हैं। वातल संस्कृत में सफाई करने वालों को कहते हैं। यह नृत्य शहनाई और नगाढ़ा बजाने से शुरू किया जाता है। वातल समुदाय में इसके नर्तकों को 'नाग कूर' कहते हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूर्वी बंगाल तथा नेफा की सीमाओं पर बसने वाले लोग भी लगभग इसी शैली पर नृत्य करते हैं। यहां इस नृत्य प्रणाली को 'दामेल' कहते हैं। कश्मीर में इस समय कुछ जियारतों पर, इस नृत्य का आयोजन शेख नूरूद्दीन की याद में किया जाता है किंतु यह नृत्य प्रतीकात्मक तौर पर ही किया जाता है, वरना इसका कोई पेशेवर कलाकार यहां मौजूद नहीं है। यहां इस लोक नृत्य को नए सिरे से जीवित करने की आवश्यकता है, ठीक उसी तरह जिस तरह यह मैदानी क्षेत्रों में बड़े दिनों पर हजारों प्रेक्षकों के सामने अखाड़ा लगाकर प्रदर्शित किया जाता है।

(6) 'पॉथर'—'पॉथर' पात्र का विकृत रूप है। पात्र संस्कृत शब्द से निकला है। कल्हण के अनुसार पॉथर करना महाराजा हर्ष के समय से चला आया है। यह एक मुख्य नाटक है और इसके देखने वाले एक साथ, हजारों में होते हैं क्योंकि इनका वर्ण्य-विषय आम जिंदगी से जुड़ा होता है। सबसे बड़ी बात यह कि इसमें हास्य व्यंग्य और नृत्य संगीत का ऐसा संगम है जिसके द्वारा सामाजिक तथा राजनीतिक कुरीतियों को उभारा जाता है। इसका प्रधान पात्र मसखरा होता है, जिसको भारतीय नाटकों में सूत्रधार कहते हैं। मसखरा का वेश कुछ बेढंगा होता है और उसे देखते ही हंसी आती है। पॉथर के कलाकारों को भांड कहते हैं, जो संस्कृत के भाट का विकृत रूप है। पॉथर का मंचन करने से पूर्व मसखरा इसकी पृष्ठभूमि के आधार पर हास्यास्पद अंदाज में, किसी भी दर्शक को अपने व्यंग्य का निशाना बनाता है। यदि कभी मसखरा सीमा का उल्लंघन करने लगता है, तो दूसरा मसखरा उसकी पीठ पर एक जोरदार प्रहार करके उसको एक दायरे की सूत में बिठाता है और चिल्ला-चिल्लाकर उनको कार्यक्रम से अवगत करवाता है, जिसको कश्मीरी में 'क्राय' कहते हैं। इसके बाद संगीतकार शहनाई पर विशेष धुन बजाते हैं और आमतौर पर ये राग होते हैं सलामी,

थुरक, दुबज, नोबत, और साअलगाह। इस बीच जर्क-बर्क वेश-भूषा में सजे भांड या इसके चरित्र नृत्य करते हैं। बदलते संगीत के रागों के बीच नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शन किया जाता है। इससे यह नृत्य इस प्रकार होता है जैसे बड़ा दायरा, छोटा दायरा, सामूहिक नृत्य, व्यक्तिगत नृत्य, धूख, सोअल, रोत्र आदि। इस नृत्य के समापन पर सरदार या जिसको कश्मीरी में 'मागुन' कहते हैं, बीच में आकर, सभी प्रेक्षकों या दर्शकों के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है और आशीर्वाद के लिए भी अन्य साथी इसका अनुसरण करते हैं। इसके बाद समय आता है पॉथर खेलने का, जिसका वर्ण्य विषय आम इनसान के जन-जीवन से संबंधित होना जरूरी है। आमतौर पर इसके द्वारा 'गुंजर पॉथर', 'बुहुर्य पॉथर', 'राज पॉथर', 'गौसॉन्य पॉथर', 'वातल पॉथर' और 'शिकारगाह' खेला जाता है। प्रत्येक पॉथर में विषयानुसार कहीं-कहीं टूटी-फूटी उर्दू, हिंदी, फारसी, पंजाबी, पहाड़ी या डोगरी शब्दों का भी प्रयोग होता है। संगीत के वाद्ययंत्रों में शहनाई और नगाढ़ा विशेष रूप से बजाए जाते हैं। पॉथर जब से यहां खेला गया है। इसकी लोकप्रियता के कारण इसको हर किसी राजा ने बढ़ावा दिया। इसको सीखने के लिए यहां समय-समय पर बाहर से कलाकार आते थे। यहां इसके केंद्र थे अकिनगाम, पलहालन, गुलगांव, अनंतनाग, बड़गांव, आदि।

(7) सिद्धगूर—यह नृत्य भारत में भी है और कश्मीर में भी इसका प्रचलन है। यह वस्तुतः किन्नर नृत्य है। शादी-ब्याह की समाप्ति के बाद किन्नरों का टोला संबंधित घर के सामने खड़ा हो जाता है और दूल्हा या दुल्हन को आशीर्वाद देकर, अपने किन्नर अंदाज में झूम-झूम कर नाचता है, जिसकी अपनी कोई पृथक शैली नहीं होती। इस तरह का नाचना तब तक जारी रहता है जब तक इनको कुछ रुपया, चावल, मसाला व अन्य मिठाइयां न दी जाएं। इस तरह के नृत्य को कश्मीरी में सिद्धगूर कहते हैं। वैसे देखने वाले इस नृत्य का आनंद-रस लूटते हैं और खुशी से मचल जाते हैं। इसको कश्मीरी लोकनृत्य की संज्ञा देना उचित नहीं रहेगा क्योंकि सारे भारत में ऐसे अवसरों पर अपने-अपने अंदाज में किन्नर नृत्य होता रहता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कश्मीरी में यद्यपि लोक नृत्य प्रणाली को विकसित करने के प्रयास हो रहे हैं तथापि यहां समय-समय पर अन्य प्रदेशों के लोक-नृत्यों को भी कश्मीरी रंग प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। सन् 1947 ई. में जब कश्मीर कल्चरल फ्रंट तथा बाद में कल्चरल कांग्रेस की संस्थाएं कार्यरत थीं तो स्वर्गीय धर्मवीर ने भांगड़ा को कश्मीरी में प्रस्तुत करने का प्रयास किया था किंतु बाद में कल्चरल कांग्रेस के टूट जाने पर उसका यह प्रयास अधूरा रह गया।

डी-255, गली-14/15, लोअर शिवनगर,
ऐ-जी ऑफिस के पीछे, जम्मू-180001

कोटा राज्य के राजसी स्मारकों में अंकित पारलौकिक आस्थाएं

गौतम मोनिका

इतिहास की शोधार्थी गौतम मोनिका के लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित।

वेदों में मनुष्य के अंत्येष्टी स्थल पर प्रस्तरखंड स्थापित करने की मान्यता का अनुसरण बौद्ध स्तूपों व चैत्यों में ई.पू. की शताब्दियों में मिलता है। तदंतर विभिन्न भारतीय राजवंशों ने इसका भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग किया। राजपूतों ने भी 7वीं शताब्दी ई. के उपरांत राजस्थान में स्थापित अपने विभिन्न मृतक राजवंशीय सदस्यों के स्मारक निर्मित किए। राजवंशों से पृथक अन्य अभिजात्यवर्गीय लोगों के स्मारक भी बने। इन स्मारक स्थलों को हाड़ा राजवंश के बूंदी व कोटा राज्य के क्षार बाग की संज्ञा से संबोधित किया गया। इन आधार चबूतरों पर विभिन्न स्तंभों पर लघु गुंबद लिए छतरियां निर्मित हैं। कोटा राज्य में स्थापित 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य स्मारकों के उद्यान क्षार बाग की उत्कीर्ण कला उन पारलौकिक आस्थाओं पर गवेषणा है, जिन्हें हिंदू धर्म में जीवन के उपरांत जीवन की संज्ञा प्रदान की गई है। इन आस्थाओं के कोटा राज्य में प्रचलन को स्थानीय इतिहास का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है।

सरोवर के दक्षिण भाग में वट वृक्षों के मध्य ढलान लेते हुए स्थान पर एवं अपेक्षाकृत न्यून तापमान वाले भौगोलिक खंड में क्षार बाग निर्मित है। मुख्य द्वार पर दो गज स्थापित हैं, जो इंद्र के प्रतीक हैं।

स्मारकों में अंकित पारलौकिक आस्थाओं के साक्ष्य–छतरी 1 मुख्य द्वार के अंदर प्रथम छतरी–यह छतरी एक अज्ञात राजपुरुष की है। कीर्ति स्तंभ पर गजारूढ़ राजपुरुष का अंकन है। 12 स्तंभों पर आधारित यह छतरी 12 दिशाओं के विश्व पर आच्छादित होने का प्रतीक हैं। वैदिक अनुश्रुतियों को राजपूतों ने अपनी कला में शास्त्रीय सिद्धांतों पर आश्रय दिया। मुख्य छतरी में स्थापित शिवलिंग के आधार स्तंभ पर उकेरी गई आकृतियां में कमल के पुष्प सृष्टि के जन्म के प्रतीक हैं। इनके ऊपरी भाग में पुष्पमालिका श्रृद्धासुमन के रूप में उकेरी गई हैं। इसी कृति को निचले भाग में भी अनुकृत किया गया है। अतः यह वैदिक धर्म की अवधारणा का परिपालन है। रुद्र को शिवलिंग अथवा लिंग विग्रह के रूप में पूज्य मानना राजपूतों व मराठों की परंपरा रही है किंतु इसे मृतक पिंडों के साथ सृजित करना वह भी आवासीय बस्ती से बाहर यह संहारक देवता के रूप में मान्य परंपरा रही है। यह छतरी जैविक एवं वानस्पतिक दोनों के शास्त्रीय अध्ययन का प्रमाण है। शिवलिंग को जैविक सृष्टि का प्रतीक रूप माना गया है। दूसरी ओर छतरी के स्तंभों पर पुष्प के विभिन्न आंतरिक एवं बाहरी भागों वर्तिकाग्रं वर्तिका एंव अंडाशय का विच्छेदित रूप में अंकन किया गया है। यह जन्म के उपरांत प्राणी के शरीर को सम्मानपूर्वक पुष्प विच्छेदन के रूप में दिखाकर उसके शरीर को विनष्ट होते हुए दर्शाने का प्रतीक है। इसी पुष्प विच्छेदन के साथ जुड़ी हुई गरुड़ की आकृतियां उड़ते हुए अथवा ब्रह्मलोक गमन करते हुए जीव का प्रतीक है।

उल्टे कमल के पुष्पों को सृष्टि के संहारक के रूप में पाषाण में निर्मित किया गया है, जो झाड़फानूस की समता पर है। स्तंभों के बीच में कमल पुष्पों की आकृतियां बिखरी हुई अथवा जड़ी गई प्रतीत होती हैं, जो मृत राजपुरुष को अर्पित किए गए श्रृद्धासुमन हैं। आधार चत्वर पर हाथियों को सूंड फंसाकर द्वंद्व युद्ध करते हुए युगल अंकित कर उस युद्ध की स्मृति को यहां दोहराया गया है जिसमें नायक की वीरगति हुई थी। यहीं गजलक्ष्मी को अंकित करके श्रीयंत्र को भी मूर्त रूप दिया गया है ऐसी 16 आकृतियां पाषाण में निर्मित हैं।

छतरी 2 श्री महाराजाधिराज महाराज श्री रामसिंह जी (प्रथम) (संवत् 1752-1764 वि.) (1695-1707 ई.)–महाराज श्री रामसिंह जी की छतरी में द्वितीय चत्वर की सोपानों के पार्श्व में दक्षिण भाग में स्थापित कीर्ति स्तंभ पर दक्षिण भुजा की ओर सूंड किए हुए गणेश की शुभ आकृति उत्कीर्ण है, इन्हें चंवर डुलाती हुई गणेशिनी अंकित हैं और मोदक हाथ में लिए रिद्धि भी गणेश के समीप बैठी है और वाम भाग के कीर्ति स्तंभ पर रथ पर आसीन वीणापाणि सरस्वती का विशिष्ट अंकन है। रथ के समीप दो हंसों के साथ एक गज का होना किसी विशिष्ट पौराणिक कथा का प्रतीक जान पड़ता है।

तृतीय चत्वर पर दक्षिण भाग की ओर स्थापित कीर्ति स्तंभ पर कोटा चित्रशैली की मंचासीन नायिका तोता उड़ा रही है। यह संबद्ध नरेश रामसिंह (प्रथम) के जीवन की किसी आंतरिक झांकी का प्रदर्शन ज्ञात होता है। उड़ती हुई अप्सराएं अंकित कर दृश्य को अलौकिक बनाकर, विरहणी रानी द्वारा मृत पति को तोते के माध्यम से स्वर्ग में संदेश भेजने की लालसा अंकित की गई है। वाम भाग में एक अन्य कीर्ति स्तंभ पर एक अलस नायिका आनंदातिरेक मुद्रा में आलस्यपूर्ण ढंग से बैठी है। दो समीपवर्ती सखियां, जिनमें से एक के हाथ में एक पुस्तक है, जिस पर दिवगंत नायक की मात्र मुखमुद्रा उत्कीर्ण होने एवं नायिका की प्रणयलीन अभिव्यक्ति

का यह दृश्य संबंधित नरेश के साथ प्रणय प्रसंग की स्मृति में खोई नायिका का आभास करवाता है।

चतुर्थ चत्वर पर प्रतिष्ठित शिवलिंग का निचला भाग चौकोर होने से शिवयंत्र के रूप में निर्मित है। शिवलिंग के ऊपरी भाग में मृत राजा की नारियां अपनी सुस्पष्ट देहयष्टि के कारण सती होने का तत्कालीन परंपरानुसार सम्मान पाने वाली सिद्ध होती हैं, क्योंकि इन्हें तक्षित न करके तराशा गया है। इन 17 नारियों के माध्यम से सती दहन के दृश्य को संजोया गया है। जो परस्पर सटकर खड़ी हुई हैं। पति के शव को अंतिम प्रणाम करने वाली अथवा भावातिरेक को रोकने हेतु हृदय को थामे कुछ नारियां भी सम्मिलित हैं।

छतरी 3 श्री महाराजाधिकराज महाराज श्री माधोसिंह जी (संवत् 1681-1705 वि.) (1624-1648)–तृतीय चत्वर पर मुख्य छतरी प्रतिष्ठित है, जो चार स्तंभों पर आधारित है। इसमें शिवयंत्र है, जिस पर पुष्पाकृतियां उत्कीर्ण की गई हैं। स्तंभों पर पुष्प के आंतरिक एवं बाहरी भागों को विच्छेदित रूप में दर्शाने के साथ ही इन्हें पुष्प पल्लवों से भी श्रृंगारित किया गया है। इन्हीं के समीप रेडक्रास की भांति एक क्रास की आकृति उत्कीर्ण की गई है।

आधार चत्वर की परिक्रमा में हाथियों के परस्पर सूंड मिलाकर द्वंद्व युद्ध का दृश्य पाषाण में निर्मित किया गया है। कहीं-कहीं हाथी गजलक्ष्मी के साथ हैं और गजलक्ष्मी के ही समीप नायिका सादी मुद्रा में आसीन है एवं कहीं पर हाथियों के साथ नायिका सिर पर कलश रखे खड़ी है और एक अन्य नृत्यरत है। ये नायिका इंद्र के दरबार की अप्सराओं की द्योतक हैं। ऐसी 7 आकृतियां पाषाण में निर्मित हैं।

छतरी 4 श्री महाराजाधिराज महाराज श्री अर्जुनसिंह जी (संवत् 1777-1780 वि.) (1720-1723 ई.)– एक चत्वर पर दक्षिण भाग वाले कीर्ति स्तंभ पर विनायक उत्कीर्ण है और वाम भाग की ओर हंसारूढ़ वीणापाणि सरस्वती का सुंदर अंकन है, जिनके दोनों ओर चंवर डुलाती हुई सेविकाएं हैं। तृतीय चत्वर के चारों दिशाओं के पार्श्वों पर विविध खांचों में अश्वारूढ़ एवं गजारूढ़ राजपुरुष युद्ध करते हुए दर्शाकर मृत राजपुरुष की जीवनगाथा को नमन किया गया है। जो कि गेटूर (जयपुर) नामक स्थान पर बने महाराजा सवाई जयसिंह तृतीय की छतरी की समता पर है, जिसमें चत्वर के चारों दिशाओं के पार्श्वों पर विविध खाचों में चित्र उकेरे गए हैं।

सैनिक वेशभूषा में एक अश्वारूढ़ रानी का भी अंकन किया गया है, जो पति की सहधर्मिणी कही जा सकती है। मुख्य छतरी 8 स्तंभों पर आधारित हैं। गुंबद व एक स्तंभ के संधिस्थल पर यहां वंशीवादन करते हुए श्रीकृष्ण निर्मित हैं। शेष 7 स्तंभों के संधिस्थल पर 7 गोपियां विभिन्न मुद्राओं में निर्मित हैं। एक गोपी पैरों में घुंघरू बांधते हुए, एक अन्य मंजीरे बजाते हुए, एक लज्जावश अपने आंचल के कोर को दांतों में दबाए खड़ी है, तो कोई ढोलक बजाते हुए, कोई गोपी नृत्यरत है, एक वीणा बजा रही है और एक रमणी कलश को वक्षस्थल

से लगाए खड़ी है, यह ब्रजग्राम के रासलीला का दृश्य प्रतीत होता है। आधार चत्वर की परिक्रमा में दो गज श्रीयंत्र को स्नान कराते हुए पाषाण में निर्मित हैं। 'श्रीयंत्र' तांत्रिक साधना का प्रतीक है।

छतरी 5 श्री महाराजाधिराज महाराज श्री मुकुंदसिंह जी (संवत्, 1706-1714 विं) (1649-1657)—तृतीय चत्वर पर स्थापित छतरी 8 स्तंभों पर आधारित है। इस छतरी में प्रतिष्ठित शिवलिंग पर दो पंक्तियों में कलाकृतियां दर्शाई गई है। ऊपरी पंक्ति में संबद्ध नरेश की 16 सतियों की आकृतियां तराशी गई हैं। कोई स्त्री अपने पति को अंतिम नमन करते हुए, कोई चंवर डुलाती हुई, एक नारी हाथों में मोदक लिए, कोई सुराही को सीने से लगाए और कोई पुष्पमाला लिए खड़ी हैं। इस दृश्यांकन से इन नारियों की अपने पति को पुनः जीवित देखने की उद्दात लालसा ज्ञात होती है।

इससे नीचे की पंक्ति में एक नारी ढोलक बजाती हुई, एक नारी पैरो में घुंघरू पहनते हुए, इस प्रकार 16 नारियों की आकृतियां तराशी गई हैं, जो इंद्र के दरबार की अप्सराएं प्रतीत होती हैं। एक स्थान पर कीर्ति स्तंभ के निकटस्थ स्तंभ पेटू हैं, जिस पर कमल के पत्र उकेरे गए हैं। जो बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह के देवीकुंड पर स्थित स्मारक की समता पर हैं। जो पश्चातकालीन मुगल पद्धति से विनिर्मित हैं जिसके स्तंभ पेटू हैं, जिन पर कमल के पत्र उकेरे गए हैं।

छतरी 6 श्री महाराजधिराज महाराव श्री उम्मेदसिंह जी (प्रथम) (संवत् 1827-1876 वि.) (1770-1819 ई.)—प्रथम चत्वर पर दक्षिण भाग की ओर से कीर्ति स्तंभ पर श्रीगणेश का अंकन है, जिनके निचले हाथों में क्रमशः पोथी एवं कमल तथा ऊपरी हाथों में मोदक एवं माला है। नीचे के पैनल में पुष्प पल्लवों के मध्य में मोदक हाथ में लिए दो मूषकों की आकर्षक आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

वाम भाग की ओर के कीर्ति स्तंभ पर हंसारूढ़ वीणापाणि सरस्वती का सुंदर अंकन है। समीप ही चंवर डुलाती हुई दो सेविकाएं खड़ी हैं। इनके दक्षिण भाग में खड़ी सेविका हंस को चुग्गा खिलाते हुए एवं वाम भाग में खड़ी सेविका चंवर डुला रही है। द्वितीय चत्वर के दक्षिण भाग के कीर्ति स्तंभ पर सिंहारूढ़ मां पार्वती जिनके ऊपरी हाथों में क्रमशः शिवलिंग एवं कमलासीन विनायक स्थित हैं। इसके वाम भाग के कीर्ति स्तंभ पर नादिया बैल पर आरूढ़ कैलाशपति का सुंदर अंकन किया गया है। विलक्षणता इस तथ्य में हैं कि शिव के दोनों हाथों, गले व शीश इत्यादि सभी अंगों पर सर्प विराजमान है। इसके अतिरिक्त शिव को दाढ़ीयुक्त बनाया गया है। एक उन्नत पीठिका पर स्थापित मुख्य छतरी 16 स्तंभों पर आधारित है। इस छतरी के चारों ओर लघु टोड़ियों पर छज्जे निर्मित हैं, जो रणथंभौर में जैत्रसिंह की स्मृति में बनाई गई छतरी की समता पर है।

प्रत्येक स्तंभ के शीर्ष पर मानवाकृतियां निर्मित हैं। एक स्थान पर एक नारी पैरों में घुंघरू पहनते हुए, एक नारी के हाथों में एक गुड़िया (खिलौना), एक नारी मंजीरे बजाती हुई, एक वीणा बजाते हुई, एक अन्य सिर पर आंचल डालते हुए, एक नारी हाथ में कमंडल लिए खड़ी है, तो कोई चंवर डुलाती हुई, एक स्थान पर कृष्ण वंशीवादन करते हुए, एक स्थान पर नारी एक हाथ से पैर से कांटा निकालती हुई, एक नारी कंधे पर पुरुषाकृति का खिलौना लिए खड़ी है एवं उसके पैरों के समीप दो नारियां, एक अन्य सितार बजाती हुई तो एक नारी नृत्यरत है, जिसके समीप एक नर ढोल बजा रहा है। यह ब्रजधाम का दृश्य प्रतीत होता है। मुख्य छतरी में षड्दलकमल या शिवयंत्र प्रतिष्ठित है।

छतरी 7 श्री महाराजाधिराज महाराव श्री भीमसिंह जी (प्रथम) (संवत् 1764-1777 वि.) (1707-1720 ई.)—एक चत्वर के दक्षिण भाग वाले कीर्ति स्तंभ पर निचले हाथों में क्रमशः परशु एवं कमल पुष्प लिए तथा ऊपरी हाथों में क्रमशः माला एवं मोदक लिए श्रीगणेश का सुंदर अंकन है। रिद्धि एवं सिद्धि इन्हें चंवर डुला रही हैं। श्री गणेश के शीश के समीप दो अप्सराएं हाथ में थाली व दीप लिए इनकी आरती कर रही हैं। वाम भाग वाले कीर्ति स्तंभ पर मयूरासीन वीणापाणि सरस्वती उत्कीर्ण है, जिनके शीश के समीप दो अप्सराएं हाथ में थाली व दीप लिए आरती कर रही हैं।

एक अन्य चत्वर के दक्षिण भाग वाले कीर्ति स्तंभ पर अंकित चित्र में मंचासीन श्रीराम धनुष कमान लिए खड़े हैं, चंवर डुलाते लक्ष्मण का अंकन है, चरणों में नमन करते वीर हनुमान हैं तथा एक अन्य मंच पर सीता जी जिनके सिर पर कलश रखा है एवं इसी कलश को श्रीराम छू रहे हैं, सीता जी के चरणों पर एक नारी झुकी हुई है, एक अन्य चंवर डुला रही है। संपूर्ण क्षार बाग में यह एकमात्र राम कथांकन है जो कृष्णभक्त कोटा राज्य में एक विलक्षणता दर्शाता है, क्योंकि राजस्थान में उत्कीर्ण कला में भगवान श्रीराम को कम स्थान प्राप्त हुआ है। यद्यपि विष्णु के अन्य अवतार भगवान श्रीकृष्ण को मूर्तिकला एवं चित्रकला में सर्वाधिक स्थान दिया गया है। अस्तु यह दृश्यांकन संबद्ध नरेश की रामभक्ति का प्रमाण है। इसके नीचे एक पैनल में पंख वाले हाथी ऐरावत के प्रतीक ज्ञात होते हैं, जो शची को स्नान करवा रहे हैं। यह दृश्य इंद्राणी के सौंदर्य का प्रदर्शन ज्ञात होता है। वाम ओर के कीर्ति स्तंभ पर मंचासीन श्रीकृष्ण का अंकन है, जो मुरली बजा रहे हैं, दो अप्सराएं इनके शीश के समीप पुष्पमाला लिए उत्कीर्ण हैं। दो सेविकाएं चंवर डुला रही हैं। दो अन्य चंवर डुलाती व मोदक हाथ में लिए मंच के समीप खड़ी हैं। यह दृश्य शास्त्रोक्त नहीं है क्योंकि जब बाल कृष्ण ने मथुरा में प्रवेश कर लिया था अथवा उन्हें त्रिलोकीनाथ माना जाने लगा था, तब से उन्होनें कभी भी वंशीवादन नहीं किया। अस्तु इसमें सूरदास के बाल कृष्ण अथवा वल्लभाचार्य के बाल कृष्ण को अलौकिकता प्रदान करने की चेष्टा की गई है।

एक उन्नत पीठिका पर 12 स्तंभों पर आधारित छतरी स्थापित है। इसके मध्य में शिवयंत्र प्रतिष्ठित है। जिस पर महाराव भीमसिंह जी (प्रथम) के चरणचिह्न इस रूप में उत्कीर्ण किए गए हैं कि उन्हें पौराणिक महाराजा विक्रमादित्य के समान विशिष्ट गुणों वाला देवपुरुष सिद्ध किया गया है। ज्ञातव्य है कि महाराव भीमसिंह ने ही कोटा राज्य को कृष्णभक्त राज्य के रूप में परिवर्तित किया था एवं स्वयं गोकुल में दीर्घकालीन निवास भी किया था। इन्होंने कोटा दुर्ग में श्रीकृष्ण की 6 इंच ऊंची बृजनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। इन चरण चिह्नों में वामचरण में कनिष्का के शीर्ष भाग पर सूर्यदेव, अनामिका के शीर्ष भाग पर अर्द्धचंद्र एवं अंगूठे के शीर्ष भाग पर शंख है, एड़ी पर चक्र अंकित है, इसी के समीप एक मत्स्य आकृति है। दक्षिण चरण में अंगूठे पर परशु एवं एड़ी पर पुष्प अंकित है, जो कि आंध्र प्रदेश के कृष्ण जिले में घंटशाला में हाल ही में की गई खुदाई में प्राप्त इक्षवाकु (2 शती ई. से 4 शती ई.) काल की एक चूने से बनी छतरी की समता पर है, जिसमें भगवान बुद्ध के अलंकृत चरण हैं।

छतरी 8 श्री महाराजाधिराज महाराव श्री अजीतसिंह जी (संवत् 1813-1815 वि.) (1756-1758)—चत्वर के दक्षिण भाग के कीर्ति स्तंभ पर श्री गणेश निचले हाथों में क्रमशः परशु एवं कमल पुष्प तथा ऊपरी हाथों में सर्प एवं मोदक लिए उत्कीर्ण हैं। विनायक के गले में सर्प है, जो एक विलक्षणता से ओत प्रोत दृश्यांकन है। एक उन्नत पीठिका पर 20 स्तंभों पर आधारित मुख्य छतरी निर्मित है। छतरी के मध्य में अष्टभुजीय शिवयंत्र प्रतिष्ठित है।

छतरी 9 श्री महाराजाधिराज महाराज श्री जगतसिंह जी (संवत् 1714-1740 वि.) (1657-1683 ई)—इसके तृतीय चत्वर पर दक्षिण भाग के कीर्ति स्तंभ पर मंचासीन रानी का सुंदर अंकन है। वृक्ष की छांव में बैठी रानी के समीप एक सेविका चंवर डुला रही है और एक मदिरा का प्याला लिए खड़ी है। रानी एकांत में समीप ही बैठी वीणा एवं ढोलक बजाती हुई नारियों से श्रवण लाभ कर रही हैं। यहां रानी के अंतरंग कक्ष की झांकी अंकित की गई है, जो उसके वैधव्य से पूर्व के जीवन की एक स्मृति ज्ञात होती है। वाम भाग की ओर के कीर्ति स्तंभ पर एक बगलबंदी नामक स्थानीय वेशभूषा धारण किए हुए पुरुष नृत्य करता हुआ और एक अन्य पुरुष इसी प्रकार ग्रामीण वेशभूषा में शहनाई बजाते हुए तथा अन्य एक आनंदित होकर ढोलक बजाते हुए अंकित किया गया है। यह किसी लोक-उत्सव की झांकी प्रतीत होती है, जो ग्रामीण संस्कृति का अभिन्न अंग है।

छतरी 10 श्री महाराजाधिराज महाराव श्री शत्रुशाल जी (प्रथम) (संवत् 1815-1821 वि.) (1758-1764 ई.)—मुख्य छतरी 24 स्तंभों पर आधारित है। मुख्य गुंबज के चारों ओर प्रभाविकता उत्पन्न करने के लिए लघु गुंबजों का निर्माण किया गया है, जो रणथंभौर में जैत्रसिंह की स्मृति में बनी छतरी की समता पर है।

छतरी के मध्य में अष्टभुजीय शिवयंत्र प्रतिष्ठित है। स्तंभों के गुंबद के संधिस्थल पर खड़ी हुई मुद्रा में श्रीकृष्ण एवं उनकी गोपियां हैं तथा उनके नीचे की ओर सरस्वती बैठी हुई हैं। श्री गणेश, वीर हनुमान का इस छतरी में अंकन महाभारत युद्ध में अर्जुन के रथध्वज के शीर्ष पर हनुमान के विराजमान होने का स्मरण करवाता है।

महाराव शत्रुशाल जी (प्रथम) की समाधि के लिए जनप्रवाद प्रचलित है कि वर्तमान तक महाराव अहुत जी के रूप में किसी उपासक के शरीर में उपस्थित हो जाते हैं। इसी आस्था पर इनकी छतरी पर इनकी नित्य पूजा अर्चना की जाती है। यही नहीं शिवयंत्र पर घट से जल की बूंदे भी यहां टपकती रहती हैं। यह स्मारक हिंदू मंदिर सा प्रतीत होता है।

फर्गुसन स्मारकों के निर्माण की तीव्र गति का कारण मुसलमानों द्वारा दी गई प्रेरणा बताते है। हॉवार्ड कार्टर के अनुसार इन स्मारकों का उद्देश्य मृतकों की स्मृति को स्थाई करके रखना भी था। अधिकांश छतरियों में सौंदर्य एवं आध्यात्मिकता, गांभीर्य विद्यमान है जो दर्शकों में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करते हैं।

प्लॉट नं. 11, सुदामा नगर, अपोजिट ग्लास फैक्ट्री, मानसिंहपुरा, टोंक रोड, जयपुर-302018

लोकरुचि की परिष्कृति में भिखारी ठाकुर का अवदान

धनंजय सिंह

अध्यापन एवं शोध से संबद्ध धनंजय सिंह वर्तमान में जूनियर फेलो के रूप में नेहरू ममोरियल म्यूजियम एंड लाइब्रेरी से संबद्ध। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के अलावा कई पुस्तकों का प्रकाशन।

साहित्यकार के बड़े दायित्वों में से एक दायित्व रुचि में परिष्कार करना भी रहा है। यह काम वह तभी कर पाएगा, जब वह साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं समझेगा बल्कि जीवन की समस्याओं पर विचार करेगा, जनमानस की विकृतियों को उभारेगा, उनकी आलोचना करेगा एवं उनका निराकरण करना भी चाहेगा। प्रेमचंद ने साहित्य उसे ही माना—''जिसमें जीवन की आलोचना होती है, जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्णरूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयां और अनुभूतियां व्यक्त की गई हो।''[1] आगे और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—''साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह इसमें वफादारी, सच्चाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता और ममता के भावों की सृष्टि करता है, जहां ये भाव हैं, वहीं दृढ़ता है और जीवन है, जहां इनका अभाव है—वहीं फूट-विरोध, स्वार्थपरता है, द्वेष-शत्रुता और मृत्यु है। यह विलगाव-विरोध प्रकृति विरुद्ध जीवन का लक्षण है। जैसे रोग प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार का चिह्न है, जहां प्रकृति में अनुकूलता और साम्य है, वहां संकीर्णता और स्वार्थ का अस्तित्व कैसे संभव होगा, जब हमारी आत्मा प्रकृति के मुक्त वायुमंडल में पालित-पोषित होती है, तो नीचता-दुष्टता के कीड़े अपने-आप हवा और रोशनी से भर जाते हैं। प्रकृति से अलग होकर अपने को सीमित कर लेने से ही यह सारी मानसिक और भावगत बीमारियां पैदा होती हैं। साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है। दूसरे शब्दों में, उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है।''[2] जिसकी वजह से मनुष्य के अज्ञान, मोह, कुसंस्कार एवं परमुखापेक्षिता का नाश होता है। मगर इन सबको विनष्ट करने की शक्ति अपनी रचना में साहित्यकार कहां से लाता है। इसके उत्तरस्वरूप कहा जा सकता है कि प्रकृति निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत साहित्यकार के सौंदर्यबोध में इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो कुछ असुंदर है, अभद्र है, मनुष्य से रहित है, वह उसके लिए असह्य हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता, दिव्यता और भव्यता का बाना बांधे रहता है। इसी क्रम में साहित्यकार की अभिव्यक्ति के संदर्भ में एक प्रश्न यह उठता है कि उसका रचना कौशल इसी में है कि वह जिस मनोवृत्ति या दृष्टिकोण से किसी बात को देखे पाठक या दर्शक भी उसमें उससे सहमत हो जाए। यही उसकी सफलता होगी।

अच्छी सीख और उसकी प्रस्तुति के पूर्व वातावरण तैयार करने के संदर्भ में आचार्य

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही है—''संसार में अच्छी बात कहने वालों की कमी नहीं है, परंतु मनुष्य के सामाजिक संगठन में ही कहीं कुछ ऐसा बड़ा दोष रह गया है, जो मनुष्य को अच्छी बात सुनने और समझने से रोक रहा है। इसलिए बड़ी समस्या यह नहीं है कि अच्छी बात कैसे कही जाए, बल्कि यह है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार किया जाए।''[3] यह बहुत ही जटिल सवाल है। लेकिन इस संबंध में कहना न होगा कि भोजपुरी के शेक्सपीयर भिखारी ठाकुर ने अपनी नाट्य रचनाओं की प्रस्तुति के माध्यम से उक्त प्रश्न का उत्तर न दिया हो। अर्थात् भिखारी ठाकुर अपने समय के समाज में व्याप्त असुंदर, अभद्र और अमानवीय पहलुओं में अपने नाट्य-प्रदर्शनों से भारी उलटफेर कर रहे थे। एक ओर वे अपने जीवन परिस्थितियों से संघर्ष कर रहे थे तो दूसरी ओर कला के असुंदर, अभद्र पहलुओं पर चोट कर रहे थे और तीसरी ओर अपने समाज की विकृतियों

पर तीक्ष्ण शक्ति से वार कर रहे थे। कलकत्ता में हुए भिखारी के नाट्य-प्रदर्शनों के असर को स्मरण करते हुए श्री डी.एन.राय ने लिखा है—''गीत कवित्त के आलोचक लोग कहते हैं कि कवि-कलाकार का काम केवल मोहित या हिपनोटाइज करने का नहीं है बल्कि श्रोता पाठक को इनसान बनाने अर्थात् ह्यूमनेटाइज करने का होता है। दर्शक लोग उनका नाच स्वांग देखकर ह्यूमनेटाइज कितना होता था और आदमीयता कितना सीखता था? यह तो कहना मुश्किल है लेकिन वे सभी को अपने रंग में ढाल लेते थे और अपने प्रति अनुरक्त बना लेते थे। साधारण लोगों से एकात्म होने के लिए वे बड़ी नम्रता से अपना परिचय देते थे—

नाम भिखारी, काम भिखारी,
रूप भिखारी मोर,
ठाठ पलानी मकान भिखारी,
चहुं दिसि भइल सोर।''[4]

भिखारी का यही बाना दर्शक समुदाय को उनकी अच्छी बातें सुनने के लिए मजबूर कर देता था। यह ऐसा बाना था जो जनसमाज में व्याप्त विकृतियों से उत्पन्न मानसिक कुरुचियों को परिष्कृत करने की क्षमता रखता था।

डॉ. उषा वर्मा ने भिखारी ठाकुर के गीतों के संदर्भ में अपने अध्ययन में लिखा है—''गीत पत्थर को पानी बना सकता है, इस्पाती मन को हिला सकता है। भिखारी गीत के इस लक्षण से परिचित थे। भिखारी अपने बिदेसिया को लेकर जब लोक रंगमंच पर उतरे, तब उस समय कुछ आंचलिक लोकनाट्य-रामलीला, यात्रा, नेटुआ, जोगीड़ा, तमाशा, नौटंकी के अलावा पारसी थियेटर कंपनी भी थी। ये नाटकों और तमाशों में गीत रखते थे। लेकिन उन गीतों का मूल नाट्यकथा से कोई मतलब नहीं था। कहा जा सकता है कि वे गीत एक तरह के पैबंद थे, नाटक से अलग अपना रंग व मिजाज लिए हुए। भिखारी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने गीतों को पैबंद-परिपाटी से अलग किया। उस समय लोकनाट्यों में गीतों का इस्तेमाल मात्र मनोरंजन तक ही सीमित था। भिखारी ने गीतों को मात्र मनोरंजन के दायरे से मुक्त किया। लेकिन उनका मुक्ति का तरीका लाजवाब था। उन्होंने गीतों को इतना मनोरंजक एवं दिलकश बनाया कि लोग उसमें लटपटा गए और जीवनोपयोगी एवं समाजोपयोगी उपदेशों को खुशी-खुशी हजम कर जाते थे। तब भिखारी की पंक्तियां बात-बात पर कोट की जाती थी। गांव के लोगों के लिए वे व्यास, कालिदास, कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, रसखान थे।''[5] कहने की जरूरत नहीं है कि जीवनोपयोगी एवं समाजोपयोगी उपदेशों को मनोरंजन के इस कलात्मक साधन द्वारा हजम करवा लेना भिखारी के रचना कौशल की ताकत थी।

भिखारी ठाकुर जिन लोगों को अपनी रचना में जगह देते हैं, उन्हीं की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में अपनी रचनाओं की प्रस्तुति भी करते हैं। भिखारी एक ओर यदि उन लोगों की सोच व रुचियों में विकृति या भटकाव देख रहे थे तो दूसरी ओर उनकी सांस्कृतिक रूपों में भी असुंदर, फुहड़पन को देख रहे थे, जो समाजोपयोगी न होकर मात्र मनोरंजन का सस्ता साधन भर थीं। भिखारी उनसे बहुत असंतुष्ट थे। कला की दुनिया में उन्होंने जब पहले-पहल कदम रखा, तब उक्त स्थिति उनके सामने थी। इस संबंध में भिखारी अपने परम मित्र रामानंद सिंह से अपनी असंतुष्टि जाहिर करते थे। भिखारी अपने निम्नवर्गीय भोजपुरी समाज के निम्न सांस्कृतिक रूपों में ऊंचे सांस्कृतिक मूल्य भरना चाहते थे ताकि उस समाज की मानसिक सोच में परिवर्तन हो सके। दूसरे शब्दों में, वे पहले कला को सुधारते हैं, फिर उस कला के पाठक या दर्शक की मानसिक रुचि को। जाहिर है, कला जब सुंदर, सुसंस्कृत होगी तो दर्शक को अपने अनुकूल बनाएगी ही, उसकी रुचि में परिष्कृति लाएगी।

भिखारी ठाकुर अपने समकालीन दौर में देख रहे थे कि गांव से शहर गया हुआ व्यक्ति किस तरह अपने घर परिवार को भूलकर ताश-जुआखोरी आदि बुराइयों के इर्द-गिर्द मंडराता फिरता है और यह भी देख रहे थे कि किस तरह भोजपुरी प्रदेश से ही शहरों में जाकर प्रदर्शन मंडलियों का अश्लील मनोरंजन उन मजदूरों के मनोविकारों को और बढ़ावा दे रहा है।

इसी कारण प्रवासी मजदूर उक्त परिस्थितियों का दास बनने के लिए अभिशप्त होता जा रहा था। यानि सामाजिक-आर्थिक स्थितियों एवं मूल्यों के उत्थान-पतन से संस्कृति का क्या रिश्ता होता है? भिखारी ठाकुर उस सच से वाकिफ थे। इसीलिए वे उस संस्कृति के निर्मित पर जोर देते थे, जो सामाजिक विकृतियों का खात्मा करे।

अपने 'बिदेसिया' नाटक के माध्यम से वे उन लोगों को गांव की याद दिलाकर उन कुकर्मो से मुक्ति का स्मरण दिलाते हैं और उन्हें अपने मूल कर्त्तव्य करने के लिए प्रेरित करते हैं—अइलऽ कलकतवा न खतवा भेजइत ताबर हो तोर।''[9] ''छोडि द अधरम मिजाज क के नरम, तूं मनवां में करि लेहु सरम बिदेसिया... आवतानी घर देखी चलि-जाई सान सेखी, डूबी मरि घुठी भर पानी में बिदेसिया।''10 आगि लगावहु एह नोकरी में, बजर परहु जुआसार।''[11] ऐसी नौकरी में आग लग जाए, जुआसार पर बज्र गिर जाए। इस अधर्म के रास्ते को छोड़कर अपने घर लौटना चाहिए।

इस कर्त्तव्यमूलक प्रेरणा को भिखारी आध्यात्मिक संदर्भों से जोड़ देते हैं और रचना को भक्तिमय वातावरण में रंगते हैं। नागेंद्र प्रसाद सिंह लिखते हैं—''भिखारी ठाकुर मानते थे कि धर्म को दरकिनार करके समाज का विकास करना अभी संभव नहीं है और समाज के विकास के लिए धर्म छोड़कर कुछ नहीं हो सकता।''[12] धर्म का सार तत्व अध्यात्म होता है। अध्यात्म की भूमिका

मजदूर समुदाय के लिए मानसिक संबल देने के साथ सामाजिक विकास में भी होती है।

भिखारी अपने प्रथम एवं सबसे लोकप्रिय नाटक 'बिदेसिया' में सूत्रधारीय वक्तव्य देते हैं—''एह तमासा में चार आदमी के पाट बा-बिदेसी एक, प्यारी सुंदरी दू, बटोही तीन, रखेलिन चार।

अथवा बिदेसी ब्रह्म, बटोही धरम, प्यारी सुंदर जीव, रखेलिन माया। ब्रह्म जीव दूनो जाना एही देह में बाड़न बाकी भेंट ना होखे। कारन! माया। एकरा के काटेवाला बटोही धरम।

आत्मा से परमात्मा काहे कुरुख हो गइलन? देना के झंझट से चाहे बिरोध का झंझट से। जइसे स्त्री के पति छोड़ के परदेस चल जालन, झूठ-झंझट से, आत्मा से परमात्मा कुरोख हो जालन। बीच में कारन-रखेलिन स्त्री। झंझट से छोड़ा के मिलाप करा देबे खातिर बटोही-उपदेश। एक चारों में संवाद होखे के चाहीं। कइसन? प्यारी सुंदरी के राधिकाजी लेखा, बिदेसी के श्रीकृष्णचंद्रजी लेखा, रखेलिन के कुबरी लेखा, बटोही के ऊधोजी लेखा।''[13] कहने का तात्पर्य यह है कि 'बिदेसी' कृष्ण, 'प्यारी सुंदरी' राधिका, कुबरी और 'बटोही' उद्धव के प्रतीक हैं। और भी गहराई में उतरने पर बिदेसी-कृष्ण (ब्रह्म), प्यारी सुंदरी-राधिका (जीव), कुबरी (माया) और बटोही-उद्धव (धर्म) हैं। बटोही बिदेसी को प्यारी सुंदरी से मिला देता है। यह नाटक का प्रतीकात्मक अंत है।

धर्म हमें कर्म पंथ पर चलकर लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है, मगर हम तो माया जाल में इस कदर उलझे रहते हैं कि हमें लक्ष्य तक पहुंचने का होश ही नहीं रहता। मगर सच्चा धर्म वही है, जो ब्रह्म और जीव का मिलन करा दे। यह वक्तव्य एक ओर दर्शकों में गंभीरता से नाट्य-रचना को देखने की समझ पैदा करता था तो दूसरी ओर उनकी जीवन की सामाजिक-समस्याओं की कहानी उन्हें अपनी लगती थी। इसलिए भिखारी रचना में समस्या निदान के लिए जो समाधान निकालते हैं, दर्शक उसमें एक ओर अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य देखने लगता था तो दूसरी ओर पतनोन्मुख भविष्य से बचने के लिए उन्हें सही मार्ग भी दिख जाता था। 'बेटी-वियोग' नाट्य-रचना के प्रदर्शन में भोजपुरी समाज ऐसा ही देखता था। ''रोपेया गिनाई लिहल, पगहा धराई दिहल। चेरिया के छेरिया बनवल हो बाबूजी'' ''दादा लेखा खोजल ऽ दुलहवा हो बाबूजी।'' ''कफ से भरल बा नड़ी, रात दिन होखे ला झड़ी/हीलिया काछत दिनवा बीतेला हो बाबूजी।''

श्री उमापति पांडेय ने बड़ी सटीक लिखा है—''इस बेबसी पर मानवता कराह उठती, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ती कि अपनी दर्द भरी आहत आवाज को होठों से बाहर निकाल सके। यह बेमेल विवाह, सामाजिक अत्याचार, यह जघन्य प्रचलन भिखारी ठाकुर के अंतर्मन को चोट पर चोट देने लगा और उन्होंने यह इंकलाबी नाटक लिखा—'बेटी-बेचवा'। जब यह मंच पर आया तो इसने समाज के शोषित वर्ग में अभूतपूर्व क्रांति की नई लहर पैदा कर दी, आंखों से चिंगारी फूट निकली और जिसने भी इसे एक बार देखा, वह इस कुप्रथा के कुचक्र में नहीं फंसने-फंसाने का संकल्प-सा निश्चय कर बैठा।''[14] भिखारी ठाकुर की 'बेटी-वियोग' नाट्य रचना की प्रभावशीलता मात्र रुचि के परिष्कार तक सीमित न होकर क्रांतिकारी परिवर्तन की दस्तावेज साबित हुई।

भिखारी ठाकुर न केवल अपनी नाट्य रचनाओं में नैतिकता, मर्यादा, सुधार, परिवर्तन इत्यादि मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षरत थे वरन् अपने समकालीन कला के असुंदर, अश्लील पक्षों और कलाकारों के अमर्यादित व्यवहारों को भी संस्कृत-परिष्कृत करने के लिए बीड़ा उठाए हुए थे। संस्कृति या संस्कृतिकारों में दुर्गुणों की उपस्थिति यों ही नहीं थी, बल्कि इसके लिए ठोस परिस्थितियां जिम्मेदार थीं। बिदेसिया नाट्य-शैली में नाट्य-रचना करने वाले नाटककार श्री हृषीकेश सुलभ लिखते हैं—''बिहार के गांवों की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना को सामंतों ने हमेशा अपने गिरफ्त में रखा, अतः वहां की सांस्कृतिक चेतना का सहज और वैज्ञानिक विकास नहीं हो सका। जीवन-सापेक्ष कला रूपों की नींव जब कभी पड़ी, सामंतों-भूपतियों ने इन कलारूपों को अपनी ऐय्याशी का साधन बनाया और विकृत किया।''[15]

कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि जिस क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक स्थिति रुग्णावस्था में होगी, तो वहां के सांस्कृतिक रूप विकृतियों से कैसे बच पाएंगे? लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं होगा कि रचनाकार स्वस्थ समाज की परिकल्पना नहीं करेगा, वह संस्कृति और संस्कृतिकारों में स्वास्थ्य, नैतिकता, मर्यादा, शालीनता, शिष्टता इत्यादि ऊंचे आदर्शों को नहीं भरेगा और उन मूल्यों के लिए संघर्ष नहीं करेगा। भिखारी ठाकुर का संघर्ष इन्हीं मूल्यों के लिए है।

नाटककार श्री सुलभ लिखते हैं—''लोगों को शोषित होते जाने की बेबसी और पीढ़ी-दर-पीढ़ी के शोषण से पैदा हुए संस्कार को उन्होंने अपनी रचनाओं के प्रौढ़ कथ्य, लोकोक्तियों से भरी भाषा और सशक्त नाट्य रूपों के माध्यम से जनसाधारण के बीच संप्रेषित किया। विसंगतियों से भरे समाज के वर्तमान स्वरूप का उन्होंने भरपूर उपहास उड़ाया और भविष्य की चिंता की अभिव्यक्ति दी।''[16] उस समय के गांव की स्थितियां आज की अपेक्षा और अधिक त्रासद थीं।

भिखारी ठाकुर की प्रस्तुतियों में जब जनता ने अपने जीवन की धड़कन सुनी, संवेदना और चेतना के संतुलित स्पर्श को महसूस किया, तो सामंतों-भूपतियों के कान खड़े हो गए और इन शोषक शक्तियों ने इस नाट्य-परंपरा को भ्रष्ट करना शुरू किया। इसके कलाकार इनके

खेतों में काम करने वाले बंधुआ मजदूर होते और इनके यहां मांगलिक अवसरों पर तथा पर्व-त्योहारों पर इनकी रुचि के अनुसार उन्हें प्रदर्शन करना पड़ता था। इस तरह अधिकांश नाट्यदलों पर सामंतों-भूमिपतियों का ही कब्जा था। इन लोगों ने अपनी विकृत रुचियों के अनुरूप इस शैली के नाट्य-रूपों, गीत-संगीत और कथाओं को भ्रष्ट किया। आज भी बिदेसिया या लौंडा नाच के कलाकार भूमिपतियों के बंधुआ मजदूर की तरह रहते हैं और अमानुषिक यातनाओं के शिकार बनते हैं। इनकी आय का अधिकांश हिस्सा इन्हीं शोषक शक्तियों के हाथ लगता है। भिखारी ठाकुर इन स्थितियों से बड़े क्षुब्ध थे।

यह सत्य है कि भिखारी ने भी साड़ी-ब्लाउज, टिकुली, गहनों आदि साज-सज्जा के साथ पुरुष नर्तकों को मंच पर उतारा, मगर मंच की मर्यादा का सदा ही ख्याल रखा और मंडली की गरिमा, शिष्टता व शालीनता के प्रतिकूल कुछ भी नहीं होने दिया। इस संबंध में भगवती प्रसाद द्विवेदी ने बिलकुल ठीक लिखा है कि– ''उनके मंच का एक अनुशासन था और जब भी कोई कलाकार उस अनुशासन को तोड़ने की जुर्रत करता था, उसे तत्काल नृत्यमंडली ने निकाल बाहर कर दिया जाता था। रुपये के लोभ में जब भी कोई नर्तक मंच से नीचे उतर जाता, भिखारी उसे अपनी नजरों से ही उतार देते थे। भटके हुए कलाकार को संबोधित कर वह कहते–

''बेटा होके पेन्हलऽ सारी।
दाम कमाके भइलऽ भारी।
खीसी भगब टूरी गिरोह।
एकर तनिको नइखे मोह।
तोहरे खातिर बानी कहत।
भइल बहुत दिन जवरे रहत।
चाहे खीस में देबऽ गारी।
कहेले असल बात भिखारी।
अबले तनिक न सुधराय चाल।
बाल बढ़ाके भइलऽ भाल।।''

यानि सिर्फ बाल बढ़ा लेने और स्त्रियों का पहनावा पहन लेने से कोई नर्तक नहीं हो जाता, तब तक उसे नृत्य की साधना और कला में महारत न हासिल हो जाए। भौतिक सुख की चकाचौंध से बाहर निकल कर वह कला व ज्ञान की साधना करने की सलाह देते और इस बात की तनिक परवाह नहीं करते कि कलाकारों के तितर-बितर होने से उनका दल टूट-बिखर जाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भिखारी ठाकुर चाहे जीवन क्षेत्र हो या फिर संस्कृति क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्र में संघर्षशील भूमिका निभाते हैं। साहित्यिक अर्थ में उनके नाट्य-प्रदर्शनों का जन समाज पर गहरा असर होता था। इसलिए उनके नाटकों को देखने के लिए अपार भीड़ जुटती थी और सन् 1947 में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन को भी कहना पड़ा–''हमनी के बोली में केतना जोर हवे, केतना ते जाब, ई अपने सब भिखारी ठाकुर के नाटक में देखीं ले। लोग के काहे नीमन लागेला भिखारी ठाकुर के नाटक? काहे दस-दस पनरह-पनरह हजार के भीड़ होला ई नाटक देखे खातिर! मालूम होता कि एही नाटक में पब्लिक के रस आवेला। जवन चीज में रस आवे, उन्हें कविताई... भिखारी ठाकुर अपनी के एगो अनगढ़ हीरा हवें।''[17]

हालांकि यह कथन समाज की मुख्यधारा के चंद लोगों द्वारा भिखारी पर की जाने वाली उल्टी-सीधी टिप्पणियों के उत्तर स्वरूप आया था। क्योंकि राहुल जी देख रहे थे कि जिस कलाकार के नाटक को देखने के लिए दस-पंद्रह हजार की संख्या में जनता आती है, उसके नाटकों को देखते हुए जनता आनंद विभोर हो जाती है, उसके कहने मात्र से पुलिस नियंत्रण से बेकाबू होने वाली वही जनता एकदम शांत हो जाती है और उसके नाटक तत्कालीन समाज में बेटी बेचने जैसी क्रूर प्रथाओं को बंद करवाने में सफल हो जाते हैं, तो वह कलाकार किस दृष्टि से समाज को बिगाड़ने वाला था?

उल्लेखनीय है कि समाज को सही दिशा देने वाला कलाकार सबसे पहले हमारी विकृत मानसिकता पर चोट करता है, जिसका माध्यम कला होती है। क्योंकि वह जानता है कि मानसिकता का संस्कृति से गहरा रिश्ता होता है। यानि स्वस्थ मनोरंजन के जरिये ही मानसिक विकारों को दूर किया जा सकता है। स्वस्थ संस्कृति के अभाव में स्वस्थ समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती। इसके लिए कलाकार अपनी परंपरा से अर्जित मूल्यों और वर्तमान की नई परिस्थितियों से उत्पन्न नए मूल्यों को विवेक सम्मत स्वीकृति देता है और उन्हें सांस्कृतिक रूपों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है।

भिखारी ठाकुर अपने नाट्य साहित्य में उन्हीं मूल्यों के लिए रचनात्मक संघर्ष करते हैं और भोजपुरी प्रवासी या ग्रामीण जनसमाज को बदलने से पूर्व जनरुचि को बदलते हैं। मगर यह काम इतना आसान नहीं होता है। इस संबंध में भगवतीप्रसाद द्विवेदी का अंदाजा सही लगता है–''इसके लिए भिखारी को कितनी मेहनत-मशक्कत करनी पड़ी होगी, कितने विरोधियों से लोहा लेना पड़ा होगा, कितने गांवों-गलियों की धूल फांकनी पड़ी होगी, इसका अंदाजा वही लगा सकता है, जिसे शुरुआती दौर की संघर्षशीलता का अहसास हो।

अपने नाटक में 'एक में अनेक' अथवा मनोरंजन की सभी जरूरतों की सोद्देश्य पूर्ति करने वाले भिखारी अपने विलक्षण, किंतु विश्वसनीय प्रस्तुतियों की वजह से जनमानस पर छा पाए। जिसे दर्शक निरक्षर-गंवार समझ रहे थे, वह तो उसके मन, घर, परिवार और समाज की सच्चाइयों का अद्भुत चितेरा निकला।''[18]

इस अद्‌भुत चितेरा ने कुंभकर्णी नींद में सोई जनता की नब्ज को टटोलकर गीत, संगीत और नृत्य को अपने नाट्य-साहित्य में पिरोया। गीतों में तमाम लोकप्रिय लोकधुनें—विरहा-सोरठी, जंतसारी, लोरिकायन, आल्हा-ऊदल, पूर्वी, कुंवर-विजइ, पचरा, चौबोला, झूमर के साथ ही दोहे, चौपाई, कवित्त आदि छंदों को दूध में पानी की तरह मिलाकर एकाकार कर दिया। बातों ही बातों में तथ्य की तह में ले जाने के लिए जहां उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण पात्र 'सूत्रधार' का सूत्रपात किया, वहीं हास्य-व्यंग्य की फुलझड़ियां छोड़ने की गरज से विदूषक के रूप में 'लबार' को सृजित किया। इस तरह भिखारी ठाकुर ने भोजपुरी समाज के मनोभावों और उस संस्कृति की धुनों से सामाजिक चेतना पैदा की। उसे धर्म अध्यात्म की चासनी में लपेट कर उन्होंने स्वस्थ मनोरंजन की ऐसी जादुई पुड़िया दर्शकों को थमाई कि वे सभी 'वाह-वाह' कर उठे और उनका रोम-रोम पुलकित, रोमांचित व झंकृत हो उठा।

संदर्भ-

1. प्रेमचंद-साहित्य का उद्‌देश्य, पृ. 13
2. वही, पृ. 17
3. हजारीप्रसाद ग्रंथावली, खंड-10, पृ. 24
4. लोक कलाकार भिखारी ठाकुर : इयादन का खोद से, माधव मुद्रणालय, छपरा, बिहार, 2004, पृ. 8
5. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, 1987, पटना, पृ. 34
6. सूत्रधार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 65
7. वही, पृ. 62
8. वही, पृ. 60
9. भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2005, पृ. 40
10. वही, पृ. 46
11. वही, पृ. 40
12. भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, 1987, पटना, पृ. 14
13. भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2005, पृ. 24
14. बिदेसिया, अंक-2, 1987, रांची, पृ. 13
15. तीन रंग नाटक, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2005, पृ. 72
16. वही, पृ. 72
17. स्मारिका, फ्लैप से, भिखारी ठाकुर सामाजिक शोध संस्थान, 2005, आरा (बिहार)
18. भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेंदु, पृ. 71

आर-109/1, रमेश पार्क,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

रचनाकारों से अनुरोध

- ❑ **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- ❑ **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- ❑ **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- ❑ **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- ❑ **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्‌धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- ❑ **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- ❑ **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- ❑ **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- ❑ **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- ❑ **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- ❑ **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgas.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

यात्रा उज्जैन की

अल्पना अग्रवाल

अल्पना अग्रवाल के पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर लेख प्रकाशित।

मुझे हाल ही में उज्जैन की यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ, बिना किसी पूर्व नियोजित योजना के अचानक ही। हुआ यों कि मेरी चार सहेलियां उज्जैन ज्योतिर्लिंग की यात्रा पर जा रही थीं, जाने वाले दिन उनमें से एक को किसी कारणवश रुकना पड़ा, जिससे मेरे जाने का संयोग बना। मैं बिना सोचे-समझे एकदम तैयार हो गई जाने के लिए। क्योंकि एक प्राचीन पवित्र नगरी को देखने का सौभाग्य जो प्राप्त हो रहा था। कृष्ण व बलराम के गुरुकुल सांदीपनी का आश्रम, विक्रमादित्य के राज्य की राजधानी एवं कालिदास की नगरी के नाम से भी जाना जाने वाला अत्यंत प्राचीन शहर उज्जैन, सोचने भर से ही रोमांचक अनुभूति होने लगी थी।

उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है, जो एक स्वयंभू, भव्य और दक्षिणमुखी ज्योतिर्लिंग है, जिसकी वजह से महाकालेश्वर महादेव की महत्ता अत्यंत पुण्यदायी समझी जाती है। इस मंदिर में वैसे तो दिनभर में पांच आरती होती हैं लेकिन प्रातःकाल चार बजे की भस्म आरती काफी प्रसिद्ध है। इसमें ज्योतिर्लिंग को स्नान करवाने के पश्चात् भस्म चढ़ाई जाती है। यह भस्म प्राचीन काल में तो प्रतिदिन श्मशान घाट से लाई जाती थी, जो किसी ताजे मुर्दे की होती थी एवं गर्म भी होती थी। लेकिन वर्तमान समय में प्रतिदिन यह भस्म गाय के उपलों से तैयार की जाती है और गर्म-गर्म ही ज्योतिर्लिंग पर चढ़ाई जाती है।

भस्म चढ़ाते-चढ़ाते पुजारियों एवं भक्तों द्वारा आरती गाई जाती है, इसीलिए इसका नाम भस्मारती पड़ा। इस आरती के दौरान एक बड़ी ही विचित्र बात देखने को मिली। भस्मारती शुरू होने से पहले ही एक पुजारी ने आकर घोषणा की कि भवन में उपस्थित सभी स्त्रियां अपने घूंघट निकाल कर, आंखें

बंद कर, नीचे मुंह करके बैठ जाएं, मतलब कि स्त्रियों को भस्मारती का यह भव्य नजारा देखने की अनुमति नहीं है। इसलिए सभी स्त्रियों ने वैसा ही अनुसरण किया। थोड़े समय तक तो हमने भी वैसा ही किया, लेकिन तभी लगा कि अगर भस्मारती नहीं देखी तो आने का मकसद ही पूरा नहीं होगा और यह भी लगा कि ऐसा क्या है जो स्त्रियों के लिए वर्जित है और अगर यह स्त्रियों के लिए वर्जित है तो स्त्रियों को अंदर आने की भी अनुमति नहीं होनी चाहिए। खैर... चोरी छिपे घूंघट की आड़ से ही एक आंख खोल कर भस्मारती का नजारा देखा। वास्तव में वह तो भव्य नजारा था और पूरा का पूरा गर्भगृह धुंध की एक चादर की भांति भस्ममय हो गया था। अद्भुत नजारा... लेकिन... स्त्रियों के लिए वर्जित। इसके पीछे शायद एक ही वजह हो सकती है कि प्राचीन समय में श्मशान की भस्म के साथ-साथ शायद भूत प्रेत मंदिर तक आ जाते होंगे और वे स्त्रियों पर आसक्त होकर उनको बाद में सताते होंगे। शायद ऐसा कोई किस्सा हुआ होगा, तभी तो ऐसी पाबंदी लगाई गई है। लेकिन पूछने पर भी इसका कोई प्रमाण नहीं मिला।

महाकालेश्वर के दर्शन के पश्चात् उज्जैन के अन्य मंदिर भी देखे। जिसमें हरसिद्धि शक्तिपीठ (जहां पर सती पार्वती की कोहनी गिरी थी), चिंतामण गणेश मंदिर, गढ़कालिका मंदिर और श्री काल-भैरव मंदिर आदि शामिल हैं। गढ़कालिका महाकवि कालिदास की कुलदेवी थीं। ऐसी मान्यता है कि जब से कालिदास ने इस देवी की पूजा करनी आरंभ की थी तभी से उनकी प्रतिभा ने विकसित होकर काव्यों की रचना करना प्रारंभ कर दिया था। इसीलिए उनके काव्य में उज्जैन नगर का बहुत ही सुंदर वर्णन भी देखने को मिलता है।

श्री काल-भैरव मंदिर के बारे में भी बड़ी विचित्र बात सुनने को मिली। काल भैरव के मंदिर में मदिरा का प्रसाद चढ़ाया जाता है। भक्तगण बाहर से ही छोटी-छोटी शीशियों में मदिरा लेकर आते हैं और यह मदिरा मूर्ति के मुंह द्वारा मूर्ति को पिलाई जाती है। आश्चर्य की बात कि मूर्ति सारी की सारी मदिरा पी जाती है। एक बार फिर अद्भुत नजारा.... एक बार तो लगा कि मूर्ति अंदर से खोखली है, सारी मदिरा उसी में चली गई है। लेकिन बाद में मालूम हुआ कि वैज्ञानिकों ने भी इसकी बात की पुष्टि के लिए मूर्ति के नीचे दूर-दूर तक खोदकर देखा कहीं भी किसी भी तरह का एल्कॉहल तत्व नहीं मिला। कहां चली जाती है इतनी मदिरा? अद्भुत... विज्ञान माने या ना माने, लेकिन इन मंदिरों में ऐसा चमत्कार, ऐसी शक्ति तो है जो भारत को अन्य दूसरे देशों से अलग करती है। काल भैरव मंदिर को तांत्रिक विद्या का भी बड़ा केंद्र माना जाता है। बड़े-बड़े तांत्रिक यहां तांत्रिक विद्या का अभ्यास करने आते हैं।

उज्जैन में एक और ऐतिहासिक स्थल है— महर्षि सांदीपनी का आश्रम, जहां कृष्ण और बलराम यज्ञोपवीत संस्कार के लिए भेजे गए थे और उन्होंने चौंसठ दिनों में चौंसठ

विद्याएं सीखी थीं और इसी आश्रम में कृष्ण-सुदामा से मिले थे और वहीं से उनकी मित्रता सर्वविदित है। इस आश्रम में कृष्ण की शिक्षा लेते हुए बैठी हुई मूर्ति देखने को मिलती है, जो कहीं और देखने को नहीं मिलती।

उज्जैन में राजा भर्तृहरि की गुफा है, जहां राजा भर्तृहरि ने राजपाट छोड़कर कई वर्षों तक तपस्या की थी और अपने छोटे भाई विक्रमादित्य को राज्य सौंप दिया था। उज्जैन में प्रवाहित होने वाली पवित्र क्षिप्रा नदी भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उज्जैन के सभी दर्शनीय स्थल देखने के पश्चात् ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग देखने का कार्यक्रम बना जो उज्जैन से लगभग 350 किलोमीटर दूर है। ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग मंदिर नर्मदा के उस पार विंध्याचल पर्वत पर स्थित है। विंध्याचल पर्वत की परिक्रमा का भी बड़ा महत्त्व है। श्रद्धालुगण पैदल भी परिक्रमा करते हैं और यह परिक्रमा नाव द्वारा भी की जाती है। गर्मी होने के कारण हमने एक पूरी नौका ली और परिक्रमा की। परिक्रमा के मध्य में ही एक स्थान पर कावेरी नदी की धारा भी आकर मिलती है, जिसे संगम कहा जाता है। यहां पर स्नान करने का भी महत्त्व है इसलिए हम सबने वहां स्नान भी किया। नर्मदा पर लक्ष्मण झूले की तरह दो पुल बने हुए हैं, जिनमें एक तरफ तो बिल्कुल ही लक्ष्मण झूले की तरह लोहे के तारों का बना हुआ है लेकिन दूसरी तरफ वाला पुल बिना किसी टेक या स्तंभों के सीमेंट का बना हुआ है। नर्मदा में नौका विहार का हम लोगों ने बहुत ही आनंद लिया। नौका विहार करते समय नर्मदा बांध भी देखा। नौका विहार के पश्चात् ऊपर मंदिर चढ़ने के लिए काफी सीढ़ियां भी चढ़नी पड़ी। गरमी के कारण चढ़ने में काफी परेशानी भी हुई लेकिन धार्मिक उत्साह होने के कारण ऊपर चढ़ पाए। वहां ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग पर जल चढ़ाने के बाद नीचे उतर कर फिर से नाव में बैठकर नर्मदा के इस तरफ आए जहां एक और ज्योतिर्लिंग मंदिर है, जो ममलेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से जाना जाता है लेकिन कुछ लोग ओंकारेश्वर और ममलेश्वर को एक ही ज्योतिर्लिंग मानते हैं। ममलेश्वर ज्योतिर्लिंग मंदिर प्राचीन वास्तुकला का एक बड़ा ही सुंदर नमूना है, जो 10वीं सदी में बनाया गया था। मंदिर की दीवारों पर शिव-पार्वती की बड़ी ही कलात्मक मूर्तियां हैं। लेकिन इस मंदिर में कोई पंडित पुजारी नहीं, बस इक्का दुक्का श्रद्धालुगण ही नजर आए। जितनी भीड़ ओंकारेश्वर में थी उसके विपरीत ममलेश्वर में कोई भी नहीं, एक और अद्‌भुत नजारा... इसका शायद एक ही कारण समझ में आता है कि कुछ लोग ममलेश्वर को ज्योतिर्लिंग की गिनती में नहीं मानते। कुल मिलाकर उज्जैन के तीन ज्योतिर्लिंगों की यात्रा का पुण्य तो मिला ही, साथ ही नर्मदा और क्षिप्रा नदी के प्राकृतिक सौंदर्य से भी तृप्ति हुई।

159, डॉयन्स टाउनशिप, श्रीलिंगंपल्ली,
हैदराबाद-500019 (तेलंगाना स्टेट)

दान—एक विहंगम दृष्टि

डॉ. कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'

वरिष्ठ गीतकार डॉ. कृपाशंकर शर्मा 'अचूक' की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। गीत, गजल, दोहे, कविताएं, बाल कहानियां और समीक्षा में विशेष रुचि। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित तथा कई पुरस्कारों से सम्मानित। काव्य लेखन के साथ-साथ संपादन कार्य में भी सहयोग।

गौरव की प्राप्ति दान से होती है, वित्त के संचय से नहीं, निरंतर वर्षा आदि का दान करने से बादलों की स्थिति ऊपर होती है और जल का संग्रह करने वाले सागरों की स्थिति सर्वदा निम्न होती है, जिस प्रकार उपार्जित की गई धन-संपदा का त्याग ही उसकी रक्षा है, ठीक उसी प्रकार तालाब आदि में भरे हुए जल का प्रवाह ही उसका यथार्थ लक्षण तथा रक्षण भासित होता है। दान से संसार के समस्त प्राणी वश में हो जाते हैं, यहां तक कि दान करने से बैर भी शांत हो जाता। दान द्वारा पराया बंधु भी अपना हो जाता अर्थात् दान सभी प्रकार के व्यसनों को दूर करता है, उदाहरणार्थ—महादानी कर्ण ने अपनी त्वचा का दान करके यश प्राप्त किया, शिवि ने अपने शरीर का मांस दान दे दिया तथा महर्षि दधीचि ने अस्थियों का महादान कर दिया। महात्माओं के लिए कुछ भी अदेय नहीं है।

भिक्षा का पात्र हाथ में लिए हुए भिक्षुक लोग दरवाजे-दरवाजे घूमते हुए लोगों को यही सिखाते हैं कि दान नहीं देने का यही फल होता है। यदि पहले दान दिया होता तो आज हमें घर-घर भटकने की तथा भिक्षा मांगने की जरूरत नहीं पड़ती, अतः अब जिसे भिक्षा नहीं मांगनी हो उसे दान अवश्य देना चाहिए।

संत कहते हैं कि—जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय तथा देवतार्चन नहीं होता, मनुष्यों का वह दिन व्यर्थ ही जाता है, जिस प्रकार वेदाध्ययन, इंद्रियों का संयम और सर्वस्व का परित्याग उत्तम है, वैसे ही इस संसार में दान का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। सफल जीवन क्या है? जीवन सफल उसी का है जो मनुष्य जीवन प्राप्त कर अपना कल्याण कर ले। भौतिक दृष्टि से तो जीवन में सांसारिक सुख और समृद्धि की प्राप्ति को ही अपना कल्याण मानते हैं, परंतु वास्तविकता कुछ और ही है अर्थात् भगवत्-प्राप्ति, धर्मशास्त्र के उद्भावक राजर्षि मनु ने अपने उद्बोधन में चार साधन बताए हैं—

''तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।''

सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलयुग में एक मात्र दान ही मनुष्य का कल्याण करने में सहायक होगा, गोस्वामी तुलसीदास जी भी कुछ इस तरह समझाते हैं—

''प्रगट चारि पद धर्म के कलिमहुं एक प्रधान।
जेन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्यान।।''

धर्म के प्रमुख रूप से चार पद (पैर) कहे गए उनमें से कलि काल में मात्र दान ही एक कल्याण का मार्ग है अन्य नहीं।

एक प्रसंगांर्तगत कहा गया है—देवता मनुष्य तथा असुर अपनी उन्नति अवरुद्ध देखकर वे सब पितामह प्रजापति ब्रह्मा जी के सन्निकट गए और सबने अपने दुःख निर्वाणार्थ विनती की। इस पर ब्रह्मा जी ने तीनों को मात्र एक अक्षर का उपदेश दिया—'द' से इंद्रियों का दमन करो का उपदेश दे देवताओं को कृत कृत्य किया और वे प्रणाम करके वहां से प्रस्थान कर गए। असुर निज स्वभाव से हिंसा वृत्ति वाले होते हैं, अतः प्रजापति ने इन्हें भी

'द' से जीव पर दया करने का उपदेश दिया, तत्पश्चात् सभी असुर ब्रह्मा जी की आज्ञा शिरोधार्य कर वहां से चले गए। अब मनुष्य कर्मयोगी होने के कारण सदैव लोभवश कर्म करने तथा धनोपार्जन में ही लगा रहता है, अतः इसे भी 'द' के द्वारा इसके कल्याणार्थ 'दान' करने का उपदेश दिया तदोपरांत मनुष्य गण भी प्रणाम करके चले गए। उक्त प्रसंगांर्तगर्त यह पूर्ण स्पष्ट होता है कि मनुष्य को अपने अभ्युदय के लिए 'दान' अवश्य रूप से करना चाहिए। दान श्रद्धापूर्वक किया गया ही श्रेयस्कर होता है यह सोचकर दान देना उचित है कि—भगवान ने मुझे इसीलिए बनाया है कि मैं हर्षित होकर दान दिया करूं। शास्त्रों में दान के लिए स्थान, काल तथा पात्र का विस्तृत विचार किया गया है—

''दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम।।''
—(गीता—16/20)

श्रीमद्भगवद्गीतानुसार कहा गया है कि—

स्थान—दान किसी शुभ स्थान पर किया जाए जैसे—गंगातट, हरिद्वार, प्रयाग, पुष्कर, मंदिर, गौशाला तथा एकांत स्थल इत्यादि।

काल—शुभ समयानुसार वैसे तो 'दान' मन में उत्साह होने पर तत्क्षण करना ही अति उत्तम है। शास्त्रों के अनुसार—अमावस्या में दान का फल सौ गुना, संक्रांतियों में इससे भी सौ गुना होता है। कुछ ऐसे दान भी हैं जिनके लिए समय अथवा मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती यथा—मृत्यु के समय का 'दान' वैतरणी धेनु तथा मोक्ष धेनु तत्पश्चात् मृत्यु के बाद पितृ दान और शय्या दान आदि दान भी समय पर करना होता है। अन्न दान तथा जल दान की कोई समय सीमा नहीं होती।

पात्र—सत्पात्र को दिया गया दान ही सफल और सात्विक दान कहलाता है (जो धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी, संयमी, ध्यानी और जितेंद्रिय ही दान के लिए सत्य पात्र हैं।)

दान के लक्षण—सात्विक, राजस और तामस।

सात्त्विक—दान पात्र को ध्यान में रखते हुए प्रत्युपकार न करने वाले व्यक्ति को निःस्वार्थ भाव से जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक दान कहलाता है।

राजस—जो दान मान, बढ़ाई, प्रतिष्ठा आदि को ध्यान में रखकर किया जाता उसे यहां राजस दान बताया गया है।

तामस—जो दान बिना श्रद्धा, असत्कारपूर्वक अथवा तिरस्कार सहित कुपात्र, मद्य, मांस अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन करने वाले दुश्चरित्र को दिया जाता है, उसे तामस दान कहा गया है।

दान धर्म के चार अनुभाग— 1. नित्य दान, 2. नैमित्तिक दान, 3. काम्य दान और 4. विमल दान

नित्य दान—प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर्त्तव्य बुद्धि से नित्य कुछ न कुछ दान करना चाहिए।

नैमित्तिक दान—जाने अनजाने में किए गए पापों के शमन हेतु-तीर्थ आदि पवित्र स्थानों में अमावस्या, पूर्णिमा, चंद्र ग्रहण, सूर्यग्रहण आदि पुण्य काल में किसी सत्पात्र को प्राप्त होने पर जो दान किया जाता है, उसे नैमित्तिक दान कहते हैं।

काम्य दान—जो दान किसी कामना की पूर्ति के लिए यथा—ऐश्वर्य, धन, धान्य, संतान आदि हेतु किया दान काम्य दान है।

विमल दान—भगवान के प्रति प्रीति प्राप्त निष्काम भाव से बिना किसी लौकिक स्वार्थ के ब्रह्म ज्ञानी को दिया जाने वाला दान विमल दान कहा जाता है।

उपर्युक्त विवेचनानुसार यहां यह भी उल्लेखित करना परमावश्यक होगा कि दान दाता भी सच्चरित्र, सात्त्विक, विचारवान हो। गीता भी कहती है कि—यज्ञ, दान तथा तप मनीषियों को पवित्र करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि मनीषी कौन हैं? जिसका मन निर्मल हो, जो मन, वाणी, कर्म से एक रूप हो और जो लोभ रहित हो वही मनीषी है। अतः दान का पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए भी दान दाता को इस प्रकार का होना नितांत आवश्यक है।

दान भी दया पर पूर्ण आश्रित है। दान भी दया का एक अभिन्न है किंतु दान और दया में कुछ अंतर भी निहित है यथा—दया कहीं भी, किसी पर, कभी भी, कैसे भी की जा सकती है। इसमें देश, काल, विधि अपेक्षित नहीं है। स्थाई रूप से स्वार्थ रहित होकर दूसरों के दुःख को न देख पाना ही दया है। दया के लिए सभी स्थान, व्यक्ति समय उपयुक्त हैं किंतु दान के लिए ऐसा संभव नहीं है।

देवी भागवत् में यह पूर्ण रूप से निरूपित किया गया है कि अन्याय से उपार्जित धन का दान करना व्यर्थ है। इससे न तो इहलोक में ही कीर्ति मिलती है, अपितु परलोक में भी कोई पारमार्थिक फल की ही प्राप्ति नहीं होती है। दान की महत्त्वपूर्ण तथा मार्मिक बात से भी हम सभी अछूते नहीं रहें, इसे भी हृदयंगम करें—दान की महत्ता में बड़ा ही रहस्य छिपा है। वास्तव में प्रत्येक सत्कर्म ही दान कहलाता है। यदि हम अपने भाई को अपनी मुस्कराहट से आनंदित करते हैं, तो ऐसा करना भी एक दान ही है। यदि हम अपने संगी-साथी अथवा किसी अन्य व्यक्ति को सत्कर्म की प्रेरणा देते हैं, तो यह भी दान का एक अंग है। भूले-भटके मुसाफिर को सही रास्ते पर पहुंचाना भी दान है। भूखे को अन्न, प्यासे को जल देना भी दान की श्रेणी में आता है। सब कुछ ही प्रभु का है, मेरा कुछ भी नहीं है, ऐसे भाव के साथ किया गया दान—दान को सात्विक बनाता है। अतः उन्हीं की विशेष कृपा से यह पुण्य-पुनीत कार्य पूरा हुआ है। मेरा धन्य, धान्य तथा पौरुष सफल हुआ यही भावना सदैव दान में होनी चाहिए। दान— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

38-ए, विजय नगर, करतारपुरा, जयपुर–302006

मेघाडंबर में कौंधती विद्‌युल्लता : सुभद्राकुमारी चौहान

डॉ. दादूराम शर्मा

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. दादूराम शर्मा की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कहानी और निबंध विधा में लेखन। सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

जब भारत की स्वाधीनता का नीलांबर पराधीनता के मेघाडंबर से आवृत था और चारों ओर घुप अंधेरा छा गया था, तब भारतीय नारीत्व की प्रतिनिधि सुभद्रा उस तमतोम को विदीर्ण करती विद्‌युल्लता-सी कौंध उठी थी। वीर वेष में सज्जित एक कांत की नव परिणीता क्षत्राणी पूछ रही थी—''वीरों का वंसत कैसा? उन्हें अपने निजी राग-रंग के लिए, आमोद-प्रमोद के लिए अवकाश कहां है? उनका जीवन अपना कहां? वह तो वंदिनी भारत माता का है। उनकी भुजाएं परिभ्रमण के लिए नहीं शस्त्र धारण करने के लिए होती हैं, आततायियों के उच्छेद और आर्तो (दीन-दुखियों, दबे-कुचले दलितों) के त्राण के लिए होती हैं, जननी जन्म भूमि की मुक्ति के लिए होती है।''[1] अतः सुभद्रा ने कोकिला की मधुर तान के स्थान पर मारू बाजे पर होते कठोर युद्धगान को चुना, राग-रंग के स्थान पर रण का विधान स्वीकारा, शृंगार को छोड़ कर वीर रस का वरण किया, सिसृक्षा के उस काम को, जो संसार का-सृष्टि का 'आदि' (प्रारंभ) है, उसे 'अंत' रे रण रूपी मरण के वरण से जोड़ दिया।[2] अद्‌भुत था उस वीर दंपत्ति के जीवन का वह प्रथम वसंत! विवाह के पूर्व ही स्वतंत्रता संग्राम के लिए सन्नद्ध हो चुके सेनानी पति लक्ष्मण सिंह चौहान के प्रयाण-पथ की वे अवरोध नहीं बनीं, अपितु सशक्त उत्प्रेरक सहयात्री बन गईं—''वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी और उन्होंने बसाई भी वहीं।''[3] झांसी की रानी के लिए उनके द्वारा लिखी गई यह पंक्ति—''चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव को मिली भवानी थी।'' जैसे उन्हीं पर चरितार्थ होती थी। अपराजेय था उस क्षत्राणी का व्यक्तित्व, जो कष्ट-कंटकों में भी खिलकर सर्वत्र अपना धवल हास और सौरभ बिखेर रहा था—

''मैंने हंसना सीखा है,
मैं नहीं जानती रोना।
बरसा करता पल-पल र
मेरे जीवन में सोना।।''

महादेवी के शब्दों में—''उन्होंने हंसते-हंसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालाएं मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्प-शय्या के सुख का अनुभव करती थी।''[4] अपनी सुख-सुविधाओं की बेड़ी से स्वाधीन भारत माता को पुनः जकड़ देने वाले आज के तथाकथित जननायकों में ऐसी उदात्तता का कहीं लेशमात्र भी दिखाई देता है क्या?

वे अपने छंदों में वह बिजली भर देना चाहती थीं, जो एक बारगी तंद्रिल राष्ट्र को झटका देकर जगा दे, उसके मार्ग को आलोकित कर दे और आततायी विदेशी सत्ता पर वज्रपात कर दे, किंतु अफसोस कि वे महाकवि चंदबरदाई और भूषण की तरह स्वतंत्र नहीं थीं।[5] तथापि अपनी बंधी कलम से भी उन्होंने कमाल कर दिखाया और अपने जन्म-मरण को रौंदकर यश शरीर से अमर हो गई।

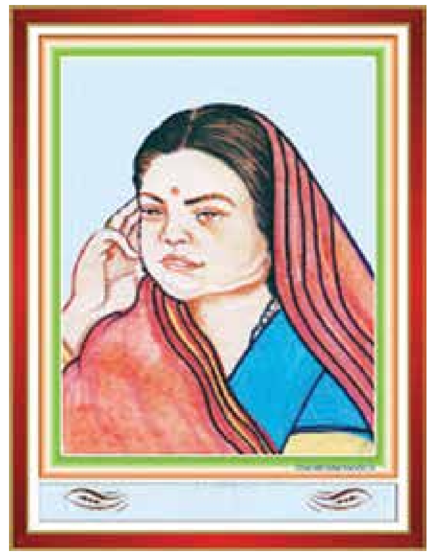

साधारण थी उनकी आकृति, उनका बाह्य व्यक्तित्व—कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियां, बड़ी और भाव-स्नात आंखें, छोटी सुडौल नासिका, हंसी को जमा कर गड़े हुए-से होंठ और दृढ़तासूचक ठुड्डी—सब कुछ मिला कर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का पता देते थे।[6] किंतु इस साधारणता में एक अजेय वीरबाला का, सामाजिक रूढ़ियों का उच्छेद करने वाली एक विद्रोहिणी का, श्रोताओं के तन-मन में बिजली भर देने वाली छंदमयी साक्षात कविता का, पति की शक्ति स्वरूपिणी पत्नी का और सबसे बढ़ कर उस ममतामयी मां का असाधारण विराट व्यक्तित्व छिपा था, जिसके विशाल अंक में चर-अचर सभी के लिए समान स्थान होता है।

सुभद्रा ने न तो कभी दुःख को ओढ़ा, न अभाव को स्वीकारा। उनके निर्मल-धवल हास की उद्‌दाम धारा में दुःखों के, विषाद के,

अभावों के कल्मष स्वयंमेव धुलकर बह जाते थे। हम साधारण लोग जरा-सी असफलता से टूट जाते हैं, जरा-सी हार से बिखर जाते हैं, किंतु असफलता के घनों को स्वर्णसूत्र (भावी सफलता की आशारूपी बिजली की कौंध) से वलयित कर लेने किंवा असफलता को भी सफलता में बदल देने की क्षमता तो सुभद्रा जैसे असाधारण व्यक्तित्व में ही संभव होती है—

''उत्साह उमंग निरंतर रहते मेरे जीवन में।
उल्लास विजय का हंसता मेरे मतवाले मन में।।
आशा आलोकित करती मेरे जीवन के प्रतिक्षण।
हैं स्वर्ण-सूत्र से वलयित मेरी असफलता के घन।।''

शिव ने जैसे कराल कालकूट का पान करके विश्व को अमृत प्रदान किया था, वैसे ही कवि भी दुनिया के विष को पीकर उसे काव्यामृत में परिणत करके जगत के लिए प्रस्तुत कर देता है। महादेवी के शब्दों में—''मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक के, रसाल से लेकर आज तक के सब मधुर-तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से मधु बनाकर लौटाती है, बहुत कुछ वैसा ही आदान-प्रदान सुभद्रा जी का था।''[8] सचमुच आशा का सतत प्रज्ज्वलित प्रदीप जिसके जीवन पथ को प्रकाशित कर रहा हो, जिसकी असफलता के मेघ को अदम्य आशा की, अभंग उत्साह की, तीव्र क्रियाशीलता की विद्युल्लता ज्योतित कर रही हो, वही अपराजेय योद्धा, वही अदम्य अक्षुण्ण जिजीविषा जन-जन में जगाने वाला जनकवि ही तो सच्चा लोकनायक होता है और सुभद्रा निश्चय ही इस गौरव की अधिकारिणी हैं। आठवीं कक्षा उत्तीर्ण होते ही विवाह हो जाने के कारण वे नियमित शिक्षा से वंचित रहीं, तो क्या, किंतु जीवन की, जगत की खुली किताब से उन्होंने जो कुछ पढ़ा-सीखा उसे अपनी विलक्षण प्रतिभा के प्रकाश से जगमगा दिया।

विद्रोहिणी बाला सुभद्रा—पग-पग पर सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करने वाली[9] उस वीरबाला का विद्रोही स्वर स्वातंत्र्योत्तर काल में भी बराबर मुखर रहा—

''देश की जिस स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अंगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी, तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया।[10] सचमुच भारत माता के अनगिनत सपूतों ने आत्म बलिदान करके विदेशी हाथों से सत्ता इसलिए नहीं छीनी थी कि वह मुट्ठी भर स्वदेशी सत्तालोलुपों के हाथों में चली जाए और आम जनता उनके स्थान पर इनके शोषण और उत्पीड़न की शिकार होती रहे।

नर्मदा में संपन्न होने वाले दरिद्रनारायण बापू के 'अस्थि विसर्जन' कार्यक्रम में वे हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ सात मील पैदल चल कर पहुंची थीं, किंतु अस्थि विसर्जन के उपरांत आयोजित सभा में जब उन पैदल आने वाली गरीब महिलाओं को मोटर कार में आने वाली संपन्न महिलाओं ने प्रवेश नहीं करने दिया तो उनका क्षात्रतेज भड़क उठा और उन्हें सभा में सम्मिलित करवाकर ही शांत हुआ।

नारी मुक्ति की प्रबल पक्षधर—नारी को समाज में समुचित स्थान और बराबरी का दर्जा दिलवाने के लिए वे आजीवन संघर्षरत रहीं। बेटे-बेटी में भेद-भाव पर उन्होंने तीखे प्रहार किए हैं। 'मुन्ना का प्यार' कविता में एक बालिका अपनी मां से कितने सीधे सरल किंतु बेधड़क शब्दों में पूछ रही है—''मां, मुन्ना को तुम हम सबसे क्यों ज्यादा करती हो प्यार?'' यह सिर्फ सुभद्रा का या उस समय की बालिका का सहज सवाल नहीं, बल्कि आज भी अनेक जन्मीं, जन्म ले रहीं और अजन्मी कन्याओं का अनुत्तरित सवाल है।[11] उनकी 'पतंग' कविता बालिका की कितनी भोली-सी चाह को रेखांकित कर रही है—

''हम भी पतंग उड़ाएंगे।
जो तुम अम्मा देर करोगी,
पतंग न हम ले पाएंगे!
सब लड़के ले लेंगे मां,
हम यों ही रह जाएंगे!''

यह उस जमाने की बालिका की चाह है, जो जरा सी बड़ी होते ही घर की चारदीवारी में कैद कर दी जाती थी। मां के साथ गृह कार्य में जोत दी जाती थी। पुस्तक पकड़ने वाले हाथ कंडे थापते थे। पाठ्य पुस्तकों के गीतों की लय में झूमने योग्य सिर बोझा ढोते, जल की गगरी उठाते थे और परिवार में प्यार भरे स्पर्श की जगह अक्सर चांटे पड़ते थे। खुले आसमान के नीचे बच्चों की तरह उन्मुक्त क्रीड़ा करना और पतंग उड़ाना तो सचमुच उनके लिए कल्पनातीत था। आज वह हवाई जहाज उड़ा रही है, फिर भी सामाजिक भेद-भाव की कारा से क्या वह पूर्णतः मुक्त हो पाई है?''

पुत्र प्रायः कुपुत्र हो जाते हैं, किंतु पुत्री के कुपुत्री होने के उदाहरण समाज में विरल ही मिलते हैं। कितना सहज निश्छल प्रेम होता है, पुत्री का जनक-जननी के प्रति, जिसमें सिर्फ प्रदान होता है, आदान या प्रतिदान की चाह नहीं। पुत्री के घर पर आते ही निराशा का अंधकार छंट जाता है और प्रत्यूष-सी ताजगी और प्रफुल्लता भर देती है वह माता-पिता के मुरझाए मनों में—

''दीप शिखा है अंधकार की,
घनी घटा की उजयाली।
ऊषा है यह कमल-भृंग की,
है पतझड़ की हरियाली।
सुधाधार यह नीरस दिल की
मस्ती मगन तपस्वी की।
जीवन ज्योति नष्ट नयनों की,
सच्ची लगन मनस्वी की।।''

उसकी बाल-क्रीड़ा में तो उन्हें अपने हंसते खिलखिलाते स्वच्छंद उन्मुक्त बचपन की सुखद अनुभूति होने लगती है—

''बीते हुए बालपन की यह
क्रीड़पूर्ण वाटिका है।
वही मचलना वही किलकना
हंसती हुई नाटिका है।।
कृष्ण चंद्र की क्रीड़ाओं को
अपने आंगन में देखो।

कौसल्या के मातृ-मोद को
अपने ही मन में लेखो।।''

'क्रीड़ा पूर्ण वाटिका' और 'हंसती हुई नाटिका' के चाक्षुष बिंब को उकेरकर तो सीधे-सरल थोड़े-से शब्दों में सुभद्रा ने सब कुछ प्रत्यक्ष खड़ा कर दिया है और न केवल बाल गोपाल का साक्षात्कार करवाया है, अपितु अमूर्त मातृमोद को भी मूर्तिमान कर दिया है।

पुत्र जहां माता-पिता की थोड़ी-सी चूक पर भी बिफर पड़ता है, जरा-सी विफलता पर निराशा का शिकार हो जाता है, खेल-खेल में या अपने मिथ्या पौरुष की परितुष्टि अथवा प्रदर्शन के लिए बचपन से लेकर जवानी तक प्राणियों पर अत्याचार करता रहता है, वहां पुत्री का औदात्य देखिए—

''प्रभु ईसा की क्षमाशीलता
नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीव-दया जिनवर गौतम की
आओ देखो उसके पास।।''

अपने व्यक्तिगत अथवा समूहगत राग-द्वेष, प्रतिशोध या अहंकार से प्रेरित पुरुष की शूरता ने जहां क्रूरता का पर्याय बनकर रक्त से इतिहास के पृष्ठ रंगे हैं, चीत्कारों और हाहाकारों से वातावरण को भरा है, वहां वीरबालाओं ने कभी अपनी सहजात ममता नहीं त्यागी, उत्पीड़न का नंगा नाच नहीं किया, क्योंकि सृजन ही उसकी मूल प्रवृत्ति है, स्नेह उसका स्वभाव है, इसलिए उसका ध्वंस भी नवसृजन का सूत्रपात करने वाला हुआ है। लोक कल्याण का आधार बना है। दुर्गा ने आततायियों के उन्मूलन के लिए ही शस्त्र उठाए थे, ताकि लोक मुक्तातंक होकर जी सकें।[12]

उनकी कहानियों की नारी भी सहज ममतामयी है, दृढ़ चरित्र वाली है, पारिवारिक उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध मुखर ही नहीं, सक्रिय भी है। वे अपने प्राकृतिक जीवन में और साहित्य में भी सर्वत्र सामाजिक न्यायाधीश की भूमिका का निर्वाह करती रहीं।

उदारशया सुभद्रा—अपने से दो कक्षा पीछे पढ़ने वाली महादेवी को उन्होंने काव्यसृजन की प्रेरणा और प्रोत्साहन ही नहीं दिया, कवयित्री होने का प्रमाण-पत्र भी दे डाला था, जो गणित जैसे नीरस विषय की उत्तर पुस्तिका में खाली जगह पाकर सरस काव्य पंक्तियां उकेर रही थीं—''अच्छा तो लिखती हो भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है?''

जहां लोग दूसरों की लकीर छोटी करके अपनी लकीर को बड़ी मान लेने के मिथ्या अहं की परितुष्टि में लगे रहते हैं, दूसरों की बुराइयों को बढ़ा-चढ़ा कर और चटखारे ले-लेकर सुनाते हैं, वहां सुभद्रा में दूसरों के दोषों के प्रति सहिष्णुता और क्षमाशीलता थी और गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने की सदाशयता भी, जो उनके संत हृदय की परिचायक थी। कितने होते हैं ऐसे लोग जो—
''परगुण परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निज हृदि विकसंतः संति संतः कियंतः?''

अपने बच्चों को शिष्टाचार सिखाने के लिए हमारी तरह वे कभी अशिष्ट नहीं हुई, उनके सहज स्वतंत्र विकास में अनावश्यक बाधा नहीं बनीं, कभी उन पर अपनी इच्छाएं नहीं थोपीं और न मान्यताएं लादीं। उन्होंने कहकर नहीं, करके अपनी संतानों को संस्कार दिए थे।

अश्रांत पथिक सुभद्रा—सफलता के श्रांत भवन में टिकना उन्हें पसंद नहीं था, वे तो उस पथ की अश्रांत अनथक पथिका थीं, जो कभी किसी मंजिल पर खत्म नहीं होता, अपितु उत्तरोत्तर उन्नति के शिखरों की ओर बढ़ता ही जाता है—और ऊपर, और ऊपर, और ऊपर...।

मन, वचन और कर्म में एकरूपता—उन्होंने जैसा सोचा, वैसा ही लिखा और जैसा लिखा वैसा ही जिया भी। किंतु हम दोहरी जिंदगी जीते हैं, हमारे सिद्धांत कुछ और होते हैं और व्यावहारिक जीवन कुछ और। बड़ी बात करना बड़ी बात नहीं है, बड़ा जीवन जीना ही बड़ी बात है। उन्होंने दोनों किया। वे काव्यसर्जक ही नहीं कविताजीवी कवयित्री भी थीं। उन्होंने कविताएं रचीं ही नहीं, कविताओं को—कहानियों को जिया भी। उनके सृजन और जीवन परस्पर अनुस्यूत हैं—गुंथे हुए हैं, अभिन्न हैं, वागर्थ की तरह। इसे उनकी पूर्वोद्धृत काव्य-पंक्तियां और महादेवी की टिप्पणियां स्वयंमेव रेखांकित और प्रमाणित कर रही हैं।

मरण को भी चिरजीवन के रूप में वरण करने वाली महनीया मानवी—महादेवी से उन्होंने कहा था—''मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूं, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियां गाती रहें और कोलाहल होता रहे।[13] सचमुच साहित्य वाटिका की इस चिर वासंती लता ने अपनी चाह के अनुरूप वसंत पंचमी के दिन ही पुष्पाभरणा धरणी की गोद में चिर विश्रांति पाई। परंतु सुभद्रा ने धरती को छोड़ा ही कहां हैं? उन्होंने तो मरण का वरण चिरजीवन के रूप में किया है। रससिद्ध कवियों के कालजयी कीर्ति कलेवर को कलवित कर पाने की शक्ति है भी क्या कराल काल में? यदि आजादी का बिगुल बजाने वाली झांसी की रानी की गौरवगाथा बुंदेलों हरबोलों के मुंह से आज भी गीत बनकर फूट रही है तो इस अमर गीत की सर्जक सुभद्रा की वाणी भी कोटि-कोटि कंठों से फूटकर अनंतकाल तक हिंदी साहित्य के गगन में गूंजती रहेंगी—

''धन्यास्ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरा-मरणजं भयम्।।''

जिस तरह रीतिकालीन कवि रसलीन के एक दोहे—''अमिय हलाहल मद भरे स्वेत श्याम रतनार। जियत मरत झुकि-झुकि परत जिहि चितवत एक बार।।'' (क्योंकि उनके समग्र साहित्य से प्रायः हिंदी जगत अनभिज्ञ है) और चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की एक कहानी 'उसने कहा था' ने उन्हें अमर करके प्रसिद्धि के उत्तुंग शिखर पर स्थापित कर दिया है, उसी तरह सुभद्रा भी 'झांसी की रानी' की रचना

करके काव्य जगत में अमर और प्रसिद्धि हो गईं।

लक्ष्मीबाई के वीरोचित अवसान पर लिखी गई उनकी ये पंक्तियां कितनी मार्मिक हैं—

''रानी गई सिधार चिता
अब उसकी दिव्य सवारी थी।
मिला तेज से तेज, तेज की
वह सच्ची अधिकारी थी।
अभी उम्र कुल तेइस की थी,
मनुज नहीं अवतारी थी।।
हमको जीवित करने आई
बन स्वतंत्रता नारी थी।
दिखा गई पथ सिखा गई
हमको जो सीख सिखानी थी।।
बुंदेले हरबोलों के मुंह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो
झांसी वाली रानी थी।।''

अंग्रेजों की दासता में जकड़ा और जकड़ता जा रहा देश मुर्दो का-सा जीवन ही तो जी रहा था। हमें पुनर्जीवन देने के लिए लक्ष्मीबाई के रूप में स्वतंत्रता ही जैसे साक्षात् प्रकट हो गई थी। उसने जो हमें जाते-जाते सिखला दिया कि स्वतंत्रता आत्माहुति देकर ही प्राप्ति की जा सकती है और सुभद्राकुमारी चौहान ने हमें सिखलाया कि उसकी रक्षा, उसका पल्लवन, प्रस्फुटन, फलन और राष्ट्र का उत्तरोत्तर उन्नयन भी हमसे बलिदान चाहता है—हमारे स्वार्थों का बलिदान, हमारे आपसी मतभेदों और राग-द्वेषों का बलिदान, अपनी अहंता, ममता, क्षुद्रता का उत्सर्जन-विसर्जन करे। सत्ता और केवल सत्ता के लिए संघर्ष, सत्ता-सुख की लालसा और मात्र अपनी ही भौतिक उन्नति की चेष्टा हमें अधिक समय तक स्वतंत्र नहीं रहने देगी। उसे बचाए और बनाए रखने के लिए हमें अपनी वैयक्तिक कारा से मुक्त होकर औरों के लिए जीना सीखना होगा, 'सर्वजन सुखाय और सर्वजन हिताय' के राजमार्ग पर चलना होगा। स्वार्थपरता का पाशविक उद्वर्त्म (ऊभट-पथ से भटकन) हमारे लिए वरेण्य नहीं।

''जाओ रानी याद करेंगे
हम कृतज्ञ भारतवासी।
तेरा यह बलिदान जगाएगा
स्वतंत्रता अविनाशी।।''

सुभद्रा की चाह के अनुरूप उनके जन्मशती वर्ष 2004 में मध्य प्रदेश के सिवनी जिला मुख्यालय से नागपुर की ओर 15 कि.मी. दूर राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक-7 पर स्थित कलबोड़ी ग्राम के आम्रकुंज में स्थानीय तरुण नेता मोहन चंदेल के प्रयास से एक पक्की समाधि बनाई गई है। यहीं पर उनका 15 फरवरी, 1948 को वसंत पंचमी के दिन कार दुर्घटना में आकस्मिक निधन हो गया था। यहां 15 फरवरी, 2004 को भव्य सांस्कृतिक साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित हुआ था। स्थानीय छात्र-छात्राओं और जबलपुर की त्रिवेणी संस्था की बहनों ने सुभद्रा के अमर गीतों की प्रस्तुति देकर समां बांध दिया था और विद्वान वक्ताओं ने उनके साहित्य से परिचय करवाया था। तब से इसी तिथि पर यहां प्रतिवर्ष कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं। उनकी स्मृति में एक विशाल पुस्तकालय वहां बन रहा है।

संदर्भ—

1. गलबांहे हो या हों कृपाण,
   चल चितवन हो या धनुष-बाण,
   हो रस विलास या दलित-त्राण,
   अब यही समस्या है दुरंत!
   वीरों का कैसा हो बसंत?
2. भर रही कोकिला इधर तान,
   मारू बाजे पर उधर गान,
   है रंग और रण का विधान,
   मिलने आए हैं आदि-अंत!
   वीरों का कैसा हो बसंत?
3. 'पथ के साथी', सुभद्रा कुमारी चौहान (संस्मरण), पृ. 39
4. वही, पृष्ठ 39
5. भूषण अथवा कवि चंद नहीं,
   बिजली भर दे वह छंद नहीं,
   है कलम बंधी स्वच्छंद नहीं!
   फिर हमें बताए कौन हंत!
   वीरों का कैसा हो बसंत?
6. 'पथ के साथी', पृ. 38
7. सुभद्रा के शब्दों में—''समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बांधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहत हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए, वरना ये व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुंचाने लगते हैं। बंधन कितने ही अच्छे उद्‌देश्य से क्यों न नियत किए गए हों, हैं तो बंधन ही और जहां बंधन हैं, वहां असंतोष है, क्रांति है।'' 'पथ के साथी', पृ. 41-42 में उद्‌धृत।
8. 'पथ के साथी', पृ. 41
9. बेटी के कन्यादान के विरोध में उठा उनका सशक्त स्वर इसका प्रमाण है—''मैं कन्यादान नहीं करूंगी। क्या मनुष्य मनुष्य का दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी मेरी नहीं रह जाएगी?'' 'पथ के साथी', पृ. 43 में उद्‌धृत।
10. वही, पृ. 43
11. 'गगनांचल' (भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की त्रैमासिक पत्रिका) जुलाई-सितंबर, 2005 में प्रकाशित डॉ. मंजू राय के आलेख 'मिटे अंधेर-अंधेरा', पृ. 57 से।
12. नारी अपने सृजन की बाधाएं दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए रुद्र बनती है। मातृशक्ति का दिव्य उद्‌धारक रूप होने के कारण ही भीमाकृति चंडी वत्सला अंबा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है। 'पथ के साथी', पृ. 4-41
13. वही, पृ. 45 से।

महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी,
जिला-सिवनी-480661 (म.प्र.)

विश्व शांति एवं मानव-श्रेय के सनातन स्रोत

डॉ. श्याम बाला राय

डॉ. श्याम बाला राय कविता, कहानी, अनुवाद और पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में सक्रिय हैं। कई पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका की अब तक सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

भारतीय व्यक्ति मनुष्यों को ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखता है। उसकी सदैव कामना रहती है कि किसी से शत्रुता न हो। वह अपने आराध्य से प्रार्थना करता है कि –''सभी सुखी हों, रोगरहित हों, सबका भला हो तथा कोई दुखी न हो। स्त्री-पुरुष, धन-हीन, धनवान, राजा-रंक, शिक्षित-अशिक्षित सभी मनुष्यों के सुख-कल्याण की (वर्ग, जाति तथा देश भेद बिना किए ही) कामना करना इस देश की अपनी विशेषता आरंभ से आज तक है। शाश्वत सुख एवं शांति की प्राप्ति के लिए इतिहास के तथा सभ्यता के आरंभ से ही भारतीय ऋषियों, महात्माओं, सत्पुरुषों के प्रयास भी लोक-विश्रुत हैं। समस्त वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य पदे-पदे इसी पुनीत भावना से घोषणा करते हैं–

''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षा महे, माविद्विषावहे।''
''सर्वे भवंतु सुखिनः
सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।''

इनमें स्पष्ट निर्देश हैं कि मानव एकता कब और कैसे प्राप्त हो सकती है। अवश्य ही, जब तक मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थों में रस लेता रहेगा और उन्हीं में चिपका रहेगा, तब तक पारस्परिक भय एवं अविश्वास उस पर हावी रहेंगे। जब वह उन्हें छोड़कर अथवा इनसे अपना पिंड छुड़ाकर एक उदात्त लक्ष्य की अन्वेषणा में निकलेगा, तब वही होगी उसकी मिलन-भूमि और मानव एकता का स्वप्न तभी साकार हो सकेगा।

मनुष्य को जिस आत्मीयता, उदारता एवं ममता से एक भारतीय देखता है, उसका एक उदाहरण है–

''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग ना पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।''

वह राज्य, स्वर्ग, मोक्ष तक नहीं चाहता, दुःखी प्राणियों को दुःख से बचाना चाहता है। इस प्रकार की निःस्पृहता ने इस देश के जनमानस को अत्युच्च स्तर पर ला दिया था। संकुचित स्वार्थ को भारतीय जन-जीवन में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। महाभारतकार की मान्यता थी–

''परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्''। परोपकार से पुण्य होता है तथा दूसरों को दुःख देने से पाप होता है। एक कपोत अपनी पत्नी को पिंजड़े में बंद करने वाले व्याध की क्षुधा शांति के लिए अपने शरीर को ही आग में जलाकर अहितकारी को भी अर्पित कर स्वर्ग प्राप्त करता है। इस देश के काव्य में इस प्रकार की उदात्त कल्पना थी। इसलिए कर्ण ने कवच कुंडल के साथ ही अपनी त्वचा, राजा शिवि ने शरणागत की रक्षा के लिए अपना मांस, जीमूतवाहन ने अपना जीवन और दधीचि ने लोकहित के लिए अपनी हड्डियों तक को प्रदान कर दिया था।

मनुष्य को उपनिषद् का सर्वभूतैक्यवाद का समर्थक 'ब्रह्मवाद' विरासत में प्राप्त है, जिसमें एक आत्मा को समस्त जीवों में व्याप्त मानकर सबको समान माना गया है। यदि विश्व का सचेतन प्राणी इस दुर्लभ ज्ञान-राशि का श्रद्धा से चिंतन कर अपने जीवन में तदनुकूल आचरण करे तो जगत के संघर्षों का स्वतः समापन हो जाएगा। वैज्ञानिक प्रगति की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसकी भी अनेक प्राप्तियां आध्यात्मिक उपलब्धियों के समान ही लोकहितकारी हैं। यह मणिकांचन योग इसी वर्तमान युग के मानव को प्राप्त है। फिर भी इस युग का मनुष्य सर्वाधिक बर्बर, लोभी, असहिष्णु, असंस्कृत, स्वार्थरत, संघर्षरत, रक्तपिपासु है, इसीलिए अत्यंत क्षुब्ध, अशांत एवं दुःखी है। ऋग्वेद काल से आज तक के कई सहस्र वर्षों की काल सीमा को पार कर भी हम नन्हें शिशु से अबोध हो रहे हैं। यद्यपि आज से पांच सहस्र वर्ष पूर्व ही भगवान् श्रीकृष्ण ने बता दिया था–''जो पुरुष सभी कामनाओं को छोड़कर निःस्पृह, निरहंकार तथा निर्मल हो जाता है, उसी को शांति मिलती है।'' कामकामी शांति नहीं पाता है। विषयों के चिंतन से उनमें आसक्ति होती है। काम, क्रोध, मोह, स्मृति, विभ्रम, बुद्धिनाश से विषयी का विनाश हो जाता है। इच्छाएं भोग से बढ़ती हैं–आग में घी डालने से भला कहीं आग बुझती है? इंद्रिय मन पर जो नियंत्रण नहीं रखता उसकी बुद्धि, भावना, परिष्कृत नहीं होती, उसे शांति नहीं मिलती। अशांत को सुख नहीं प्राप्त होता।

गीता का विश्व की सभी प्रधान भाषाओं में भाषांतर हो चुका है, फिर भी विश्व अशांत

है, दुःखी है। कारण स्पष्ट है, आज का जगत् इंद्रिय सुखों का लोलुप होकर अंधा, निर्लज्ज हो गया है। उसने अपने अंतर की ज्योति को निस्तेज कर दिया है। अर्थ की पिपासा शांति के लिए पृथ्वी के सभी दुर्लभ गिरिगह्वरों को सुगम बनाया जा रहा है। नदी-समुद्र का संतरण तो साधारण कार्य हो गया है। आकाश के तारे समेटे जा रहे हैं। आशा के शतशः पाशों में बद्ध आज का मानव मोह के कशाघातों से दुःसह पीड़ा पा रहा है फिर भी उसकी चेतना उद्‌बुद्ध नहीं हो रही है।

एक अद्‌भुत सभ्यता विकास पा रही है, जिसमें पारिवारिक जीवन के अंत का बीज बोया जा रहा है। कामाचार, कामभोग को प्रश्रय मिल रहा है। कठोपनिषद् के नचिकेता ने 'तवैव वहा तव नृत्य गीते' कहकर जिस प्रेय मार्ग को छोड़कर श्रेय का अवलंबन करना उचित बताया था, उसी प्रेय मार्ग पर आज का जगत बड़ी तीव्रगति से जाने का यत्न कर रहा है। जैसा पहले बताया गया है, हम विज्ञान के लाभों को अस्वीकार नहीं कर सकते। उनसे काल एवं देश की दूरियां कम हो गई हैं। एक मनुष्य को दूसरे के समीप आने का सुयोग मिला है। जाति, संप्रदाय, धर्मो की बालू की भित्तियां समाज की जलधारा के समक्ष क्रमशः धराशायी होती जा रही हैं। मानवता विशुद्ध रूप में विकास पा रही है। भौतिक प्राप्तियों को आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए उपयोगी बनाया गया तो मानव-समाज सुख-शांति का अनुभव करेगा। उसके कल्याण के पथ प्रशस्त हो जाएंगे। आर्थिक संघर्षो के मूल ही त्याग एवं संतोष के समक्ष नतमस्तक हो जाएंगे। देश, धर्म के नाम पर जो छोटे घेरे बन रहे हैं, अनावश्यक हो जाएंगे। तत्त्वबोध या परमार्थ ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य सारे जगत को अपने में, अपने को जगत-मात्र में व्याप्त देखने लगेगा। अपने-पराए की तुच्छ भावना स्वयं विलीन हो जाएगी। युद्धजनित भय, अनावश्यक सुरक्षा व्यय से लोक जीवन को त्राण मिल जाएगा। विश्वास, सहानुभूति, सहयोग का मार्ग एक देश को दूसरे के समीप लाकर विश्वबंधुत्व की भावना के विस्तार में उल्लेखनीय योगदान देगा। धरणी, समुद्र, गगन, सूर्य, चंद्र की भांति 'मनुष्यता मात्र सम्मानित होगी। भेद अलगाव को निंद्य माना जाएगा। आवश्यकता है, हम मानव श्रेय के सनातन स्रोत से परिचय प्राप्त कर उसे स्वीकार कर लें।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य का विनाश करने के पश्चात् दूसरे शत्रु नगण्य हो जाते हैं। इन षड्‌रिपुओं में 'एकैकमप्यनर्थाय' हैं। इनका त्याग कर आत्म श्रेय संपादन किया जा सकता है। मोहग्रस्त काम भोग का उपासक कभी सुख नहीं पा सकता। उसका चित्त सदा भ्रम में पड़ा रहता है। उसे अहंकार घेरे रहता है। ऐसे लोग दर्प में चूर होकर एक-दूसरे की निंदा करते हैं। कर्तव्याकर्तव्य का इन्हें ज्ञान नहीं रहता। इनकी दृष्टि में यह जगत असत्य, आश्रयरहित ईश्वरविहीन मात्र काम भोग के लिए है। इस प्रकार के मनुष्य क्रूर, मंदबुद्धि जगत के विनाशक होते हैं।

दंभ, मान, मद से युक्त अतृप्त लोग अज्ञान से अनेक मिथ्या सिद्धांतों का प्रचार करते हैं। विषयी मनुष्य सदा अनेक चिंताओं से घिरे रहते हैं। अन्यायपूर्वक धन एकत्र कर नितनवीन योजनाएं बनाते हैं। धन, प्रतिष्ठा प्राप्त कर गर्व करते तथा और अधिक पाने को लालायित रहते हैं। उन प्रवृत्तियों के लोग केवल एक देश में ही नहीं सर्वत्र दुःख पाते हैं। उन्हें कभी शांति नहीं मिलती। इनके द्वारा आत्म एवं परहित संभव नहीं होते। इनमें पृथकता की भावना रहती है। इस प्रकार के लोग विश्वबंधुता की बात भी सोचना उचित नहीं मानते।

मानव-समाज का श्रेय उदात्त मानवीय प्रवृत्तियों के पालन से ही किया जा सकता है। भय का अभाव, अंतःकरण की शुद्धता, अंतस्तत्वान्वेषण, सात्विक लोकोपकार, इंद्रियों का दमन, आत्मतत्वचिंतन, सतशास्त्रों का अनुशीलन, स्वकर्तव्यता पालन के लिए कष्ट सहन तथा सरलता के मार्ग पर चलने से मनुष्य अनेक विडंबनाओं से बच जाता है। जो मनुष्य मन, वाणी तथा कर्म से किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता, तथ्य एवं प्रिय बोलता है, अपकारी पर भी क्रोध नहीं करता, कार्य करता है किंतु कर्तृत्वाभिमान नहीं रखता, सभी प्राणियों पर दया करता है, आसक्ति कहीं नहीं रखता, कोमल स्वभाव का होता है, लोक-शास्त्र के विरुद्ध आचरण, लज्जा का अनुभव करता है, वह मनुष्य अपना, अपने समाज तथा देश के साथ ही विश्व का बहुत बड़ा शुभेच्छु माना जाता है। उसमें तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरी-भीतरी पवित्रता, अद्रोह जैसे शुभगुण स्वतः आ जाते हैं।

सात्विक, राजस तथा तामस गुणों के कारण भिन्न संस्कार एवं वातावरण के सभी मनुष्यों को सहसा एक धरातल पर लाकर सोचने के लिए अथवा कार्य करने के लिए विवश तो नहीं किया जा सकता और न सामाजिक, धार्मिक सुविधाएं ही सहसा सभी को सुलभ हो सकती हैं। अतः संघर्षो के द्वार भी, सदा के लिए बंद नहीं हो सकते। फिर भी संघर्ष है। यह भी विचार एकांगी ही है। आवास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा एवं विकास के साधन तो निर्विवाद सभी को समान रूप में प्रदान किए जाएं। आर्थिक विषमता को शीघ्र समाप्त कर देना चाहिए अन्यथा विश्व-शांति की चर्चा मात्र को कुछ लोग कपट कहें तो उचित ही है।

धन के अभाव से मनुष्य समाज में अनेक दोष आ जाते हैं। इन बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल होने के साथ ही व्यक्ति के आभ्यंतर का पुनीत होना मानव समाज के श्रेय का मूल कारण है। एक ही पुनीतात्मा उदात्त महामानव समस्त जगत को शीतल सुखद कल्याण के ज्योतिर्मय पथ से निरापद, समुन्नत एवं प्रेय श्रेय साधन संपन्न बना सकता है।

201, कृष्णा, 63, विजय ब्लॉक,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

लोकगीतों की प्रासंगिकता

डॉ. राजन यादव

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. राजन यादव ने तीन पुस्तकों के लेखन सहित पंद्रह पुस्तकों में संपादन सहयोग किया है। कई शैक्षिक व साहित्यिक संस्थाओं से संबद्ध।

गीत भावों की रसात्मक एकात्मानुभूति की अभिव्यक्ति है और ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार है। ग्रामगीत में छंद नहीं अलंकार नहीं, उसमें है केवल रस, जिसका संबंध हृदय से है। इन गीतों में लोक हृदय का इतिहास व्याप्त है, जिसमें प्रेम का आकर्षण है, श्रद्धा है तथा करुणा की कोमलता है। ग्रामगीत में मनुष्य के हृदय का शुद्ध प्रतिबिंब है। इसमें आदर्श के स्थान पर यथार्थ है और कल्पना के स्थान पर स्वाभाविकता है। ग्रामीण जीवन मृत्यु-पर्यंत गीतमय है।[1] कोई भी साहित्य जीवित नहीं रह सकता, जिसका संबंध जन साधारण से न हो। इन गीतों में ग्राम जीवन का सारा दर्शन बंधा-छिपा है, जिसके माध्यम से परत दर परत उजागर होता चला जा रहा है। इसलिए इन गीतों को ग्राम जीवन का दस्तावेज कह सकते हैं, जिनमें ग्राम सलिला प्रवाहित है। इन गीतों में लोक अर्थात् सारे समाज का सुंदर चित्र उपस्थित होता है। संस्कार गीतों के माध्यम से हमारे समाज में प्रचलित सभी सोलह संस्कार-विवाहादि सहित अनेक गीत हमारे हृदय को अभिभूत कर देते हैं। इन लोकगीतों में यहां की संस्कृति सुरक्षित है। भारतीयता हमारे गांव के रहने वालों में है, जो शहरों के क्षणभंगुर आभूषणों से अपने स्वाभाविक रूप को छिपा नहीं चुके हैं, जिनमें युगों से वेदना सहन करने की शक्ति है, जो सुख-दुख में, हर्ष-विषाद में जगत स्रष्टा को भूलते नहीं हैं, जो वर्षा के आगमन से प्रसन्न होते हैं, जो खेतों, में जाड़े-गर्मी में प्रकृति देवी के निकट अपना समय बिताते हैं। इन गीतों में हम मनुष्य जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते हैं। कन्या के ससुराल चले जाने पर माता के करुण स्वर सुनते हैं। विभिन्न रस्मों को पार करते हुए विवाह उस मार्मिक क्षण में आ पहुंचता है, जहां धीरज भी अधीर होने लगता है और स्त्रियां करुणा से आप्लावित ये विदाई गीत गाने लगती हैं—

''तुम्हर बोली ओ नइ आवय
बर तरी कुआं कुआं म डारे डोर, टुट गय
डोर टुट गय ओ बेटी जनम दिन
के संग छुट गय
अइसे गवा डारे ओ बन गाले
करसी के पानी दर-दर होय बेटी मोर
बेटी मोर दुलौरिन धर-धर रोय गलियन मं
बेटा तो होते घर रहिते बेटी मोर
बेटी मोर दुलौरिन बिन देखे गली
मं सजन जोरे।''

लोक साहित्य हमारी संस्कृति एवं वाङ्मय की मुख्यधारा का साहित्य है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम 'लोक' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' में मिलता है—

''नाभ्यां आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिदशः श्रोत्रात्तथा
लोकान् अकल्पयन्।[2]

इस 'लोक' का समानार्थी 'जनपद'-जनता, अभिजन, ग्रामीण ग्राम्य और जनमानस हेतु प्रयुक्त हो सकता है। यह 'लोक' शब्द लोकसाहित्य, लोकभाषा, लोकमत, लोकधर्म, लोकगाथा, लोकविश्वास, लोकवार्ता, लोक संस्कार, लोककला, लोकनाट्य, लोकोक्ति आदि विविध पक्षों से संपृक्त है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी मानते थे—'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है।[3]

सारे संसार में जहां कहीं भी आज का साहित्य नहीं पहुंचा है, सभ्यता नहीं पहुंची है, विज्ञान नहीं पहुंचा है जहां रोटी भी नसीब नहीं और तन ढकने के सलीके भी, वहां लोककला, लोकनृत्य, लोकवार्ताएं, लोकगाथाएं यानी जीवन को गतिशील एवं चैतन्य रखने के लिए एक समूची लोक परंपरा का सत्य रचा बसा है। लोक संस्कृति का प्रमुख अंग मौखिक साहित्य है। यह मौखिक परंपरा साहित्य का वह रूप है, जिसे गांव अथवा नगरों में लोक मानस अबाध रूप में अनायास रचता आया है। इसमें लोक लोकमानस के जीवन का प्रतिबिंब रहता है। लोकसाहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण, समृद्ध एवं सशक्त अभिव्यक्ति लोकगीत है। लोकगीतों में भावना अकेले नहीं आती। उसमें प्रकृति के उपकरणों के बीच हृदय की अनुभूतियां तरंगित होकर बहती हैं। आदमी के चारों ओर की दुनिया की सच्ची धड़कन लोकगीतों में रहती है। सनातन भावनाओं का संरक्षण

लोकगीतों में होता है। लोकगीतों की आत्मा लोकसंगीत है। लोकगीत का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। बहुत से विद्वानों का मत है कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोकसंगीत से हुई है। लोकजीवन का सुंदर प्रतिबिंब लोकगीत और लोकसंगीत में दिखाई पड़ता है। इसमें लोकजीवन का सीधा-सादा चित्र उपलब्ध होता है। लोकगीत सरल, सुंदर, अनुभूतिमय तथा संगीतमय होते हैं। कदाचित ही कोई ऐसा लोकगीत हो जो संगीत से अनुप्राणित न हुआ हो।[4]

स्वरों में तंमयता होने पर लय की उत्पत्ति होती है। लय संगीत और नृत्य दोनों का आवश्यक अंग है। इसी लय के आधार पर लोकगीतों का निर्माण हुआ है। लोकगीतों के दो अनिवार्य सहकारी नृत्य और वाद्य है और ये जीवन की आंतरिक अनुभूतियों के व्यंजक हुआ करते हैं। इनकी अभिव्यक्ति समाज में सर्वतोभाव से समाई हुई रहती है। लोकगीतों के सिरजनहार रहे न रहे किंतु सिरजन विद्यमान रहता है। शास्त्रीय काव्य में कवि रेव प्रजाति कहा गया है। लोकगीतों के सिरजनहार द्वितीय ब्रह्म हैं, किंतु वे निराकार ब्रह्म की तरह होते हैं और ये ही गीतकार परंपरा से प्राप्त इन गीतों में कुछ अपना भी जोड़कर निरगुन ब्रह्म सगुन भए जैसे को चरितार्थ कर जाते हैं। समूहवादी चेतना लोक जीवन की ताकत है। उससे ही वह ऊर्जा प्राप्त करता है। प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए विकास के पायदानों पर निरंतर चढ़ने का काम लोक-जीवन की सामूहिक शक्ति से ही संभव हो सका है। ऐसी स्थिति में लोकलाओं को सामूहिकता से अलग करके नहीं देखा जा सकता। चाहे वह नृत्य की कला-करमा, सुआ, डंडा या रावत नाच हो या संगीत की कला-ददरिया, जस पचरा या अन्य लोकगीत हो। गीतों के समवेत स्वर अथवा नृत्यों के समवेत लय-ताल से समूचा गांव और गांव समूची धरती अनुरंजित होने लगती है।[5]

लोकगीत प्रायः समवेत स्वर में गाए जाते हैं। लोकगायक व गायिकाएं इच्छानुसार और आवश्यकतानुसार अक्षर, शब्द, मात्रा व वाक्य आदि को घटा-बढ़ाकर गाते हैं। लोकगीतों में शास्त्रीय गीतों का महीन और जटिल प्रतिरूप चाहे न हो, किंतु उनमें जन साधारण को बरबस विभोर कर देने वाली स्वाभाविकता शास्त्रीय गीतों के पंडितों तक के हृदय को मोह लेती है। लोकसाहित्य के निर्माण में समाज एक विशाल पृष्ठभूमि का कार्य करता है। समाज के प्रांगण में प्रफुल्लित-विकसित संपूर्ण मानवी भावनाएं, विश्वास और मान्यताएं, परंपराएं और रीतियां लोकसाहित्य की प्रेरक परिस्थितियां हैं और भारतीय समाज की रचना धर्म के मूलभूत तत्व पर आधारित है। संस्कार गीत, ऋतु एवं व्रतगीत, धार्मिक गीत, नृत्यगीत, जातिगीत, मनोरंजनात्मक गीत, बालगीत, गाथात्मक एवं स्वतंत्र गीत आदि में लोक जीवन की धड़कन सुनी जा सकती है। छत्तीसगढ़ी में लोकगीतों और लोकगाथाओं की दीर्घ श्रृंखला है। ढोलामारु, भरथरी, पंडवानी, पंथी, लोरिकचंदा, देवारगीत, बसदेवा गीत तथा कायाखंडी भजनों में लोक जीवन का सुंदरतम प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।

इन लोकगाथाओं भजनों ने लोकगीतों को विशेष पहचान और ऊंचाई दी है। लोकपर्वों, उत्सवों, अनुष्ठानों व ऋतु विशेष में गाये जाने वाले गीतों में जसगीत, सुआ गीत, भोजली गीत, बिहाव गीत, देवारी गीत, करमा गीत, ददरिया फाग और सोहर गीत भी अपनी विशेष पहचान बनाए हुए हैं। लोक में जब भी कोई मांगलिक कार्य संपन्न होता है, तो लोकगीतों की लाली बिखर ही जाती है। इन गीतों की पंक्तियां वेद की भांति कही उल्लास से तो कहीं भक्तिभाव से गाई जाती हैं। ईश विनय के साथ पितरों तक की वंदना छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में श्रद्धा भाव से की गई है। गउरा, गनपति, बूढ़ी माई, लंगुरा देव, श्रीराम-सीता, लक्ष्मण, हनुमान, पांडव और श्रीकृष्ण, प्रसिद्ध लोकवीर आल्हा-उदल, कंठी ठेठवार, लोरिकचंदा, दसमत कैना, ढोलामारू आदि के प्रसंगों को गाकर गायक लोकगायकी की मौखिक परंपरा को गतिशील करते हैं, जिसमें भक्ति, प्रेम और लोक विश्वास झलकता है। जैसे—

''कइसे के सुमिरवं मैं गौरी गणपति ल के
कइसे सुमिरवं भगवान हो
हाथे जोड़ के सुमिरवं गौरी गनपति ल के
बिनती करवं भगवान हो।
कलस धरे चिनिहवं सीआ ओ जनुकिया के
मुकुट धरे भगवान हो।''

मूर्ति प्रतिष्ठापन हो या कोई मांगलिक कार्य, लोकभजनों की मस्ती में लोक को झूमते हुए आज भी देखा जा सकता है—रामधुन, कीर्तन, नवधा, रामसप्ताह आदि के अवसर पर भक्तिभाव में डूबा यह भजन जन मानस को रस विभोर कर देता है—

''ठाकुर भले बिराजो हो
उडिसा जगन्नाथपुरी में भले बिराजो
काहे छोड़े मथुरा नगरी काहे छोड़े कासी
झारखंड में आय बिराजे वृंदावन के बासी।''

लोकगीतों में स्थान विशेष, वहां की वस्तुएं, गीत और वाद्ययंत्रों की विशेषता तथा लोकधुनों की मोहकता की जानकारी भी मिलती है। नायक-नायिका के मधुर संलाप में उदात्त प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति की एक बानगी पारंपरिक देवारकर्मा की इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

''घुच के बजादे मांदरवाला रे,
चुरुवा के ठेंस लग जाही
मोर मांदर नवागढ़ के मैं अवं सुरुजगढ़िया
नाचा देखे आजा टूरी नाच घात बढ़िया
ले चलिहौं तोला टूरी रईपुर के देस...
मांदर के धुन मां बैरी छोड़ेंव काम काज रे
आहूं बैरी तोर संग मा ले चल अपन राज रे
ले चलिहौं तोला टूरी रईपूर के देस...''

व्रत, उत्सव, अनुष्ठान, मेले आदि के अवसर पर लोकगीतों की लाली बिखर ही जाती है। मेले के अवसर पर गाए जाने वाले बुंदेली लोकगीत का हास्यपरक उद्‌गार सुनने वालों को रस सिक्त कर देता है–

''अरे चलो नरबदा पार जहां मेला लगे
कक्का ह मारे सम्हर के निकर गय
काकी निकर न पाई रेपट ने तुम परियो...''

इतना ही नहीं जहां शिष्ट साहित्य मौन हो जाता है, वहां भी लोकसाहित्य मुखरित है। लोक में उभरे भाव काव्य शास्त्र के पंडितों के लिए विस्मयकारी हो जाता है, जब वे कठिन ग्रंथों के भाव, लोक के सहज अंकन में पाते हैं। भाषा, छंद, आदि में भले ही अंतर हो किंतु भाव के धरातल पर लोकसाहित्य पर लोक गीत कमतर नहीं है, लोक अनुष्ठान जवांरा की आरती में समस्त देवी-देवताओं का स्मरण किया जाता है। लोक में सहज सुलभ प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को भगवती के श्रीचरणों में भावपूर्ण समर्पण किया जाता है। तन का दीपक और मन की बाती बनाकर प्रेमरूपी तेल डालकर सारी रात जलने के भाव में स्वयं के साथ समूह के कल्याण की भावना सन्निहित है–

''आरती हो माय सवांगा ले ले।
लेई लेबे हियर लगाय ओ सवांगा ले।
तन लागे दीया अउ मन लागे बाती।
प्रेम के तेल जलाई के जरत हे सारी राती।
हो सवांगा...
हिगंलाज के तीत पतंग
जहां भवानी तोर उत्पन्न।
आसन मार सिंगासन बइठे,
लिम्बू लाट सदफल लटके
आती-पाती देवता बइठे
मांझ मचोलना माता बइठे
चौंसठ जोगनी करे आरती
लंगुरा चंवर डोलाय। हो...''

बांसगीतों से पौराणिक, ऐतिहासिक और दंतकथाओं का परिचय मिलता है। लोक गाथाओं का विविध रसों में चित्रण बांसगीतों की प्रमुख विशेषताएं हैं। जाति विशेष के इन गीतों के गायक आशु कवि भी होते हैं। परंपरा से प्राप्त कथानक में ये सामयिक संदर्भों को भी जोड़ते चलते हैं। नारी के प्रति सहानुभूति उसके निःसंतान होने के कारण और सौंदर्य चित्रण की एक बानगी दृष्ट्व्य है–

''कोन बरन तोरे सेंदुर दीखे गोरी,
कोने बरन तोर मांग हो
कोने वरन तोरे छतिया दीखे गोरी,
कइसे मा पर गय बांझ हो
रकत बरन तोरे सेंदुर दीखे
गोरी गउहां बरन तोरे मांग हो
कमल फूल कस छतिया दीखे गोरी,
कोने गुन पर गय बांझ हो।''

प्रियजन प्रवास पर हों तो चिंता होना स्वाभाविक है। विरह की अवस्थाएं और दशाओं का परिगणन शास्त्रियों का कार्य है, लोक में इसकी अभिव्यक्ति सहज भाव से होती है। शृंगार और वीर रस की पृष्ठभूमि में लोकनायिका के इस उद्‌गार को फाग, विवाह और नचौड़ी गीत के रूप में सुनकर आज भी रस सिक्त होते हैं। ये सीजनली नहीं बल्कि सदाबहार गीत हैं। जैसे–

''संइया गइन हे बनिजवा रे, देवरा खलिहान
बइला गंवाये रूप धंवरा, खोजत होगे बिहान
जियरा बियाकुल तोरे बिना, मैं का जानौ राम
पांच रुपइया के टेटवा रे, पटरा असवार
पागा ला बांधे लहरिया कंमर खोंचे कटार
जियरा बियाकुल तोरे बिना...''

रावत नाच के सरल दोहों में भी स्थान, पात्र विशेष की जानकारी मिलती है। नीतिपरक, शौर्यपरक, भक्तिपरक तथा शृंगारिक दोहे आज भी गाये जाते हैं। लोक के द्वारा लोक का आकर्षक रूप इसमें मिलता है, इसलिए ये दोहे आज भी प्रासंगिक हैं–

''दांत के मंजन दतवन मुंह के मंजन पान।
पेट के मंजन तीन जात कोदो राहेर धान।
राम नघरिया राम के बसे गंग के तीर।
अटलराज महराज हनुमत चौकी बीर।।
आरी रुधेंव बारी रुधेंव बीच मा राखे खोभा।
कतको टूरी खोपा पारे तीन दिन के शोभा।।
केकती बड़े के केंवरा गुंगुर बड़े के धूप।
तोला पूछौं पंडित छोकरा चाल बड़े के रूप।।
चोंगी दिये माखुर दिये बोली दिये कठोर।
काल परो दिन मर हर जाबे का गुन गाबो तोर।।''

मानव जीवन क्षणभंगुर है। संसार की नश्वरता की बातें भी लोकगीतों में उपदेश रूप में मिलती है। सोहर से लेकर मृत्यु गीत की परंपरा में लोकगीतों की लाली बिखरी हुई है। चार वेद, छह शास्त्र और अठारह पुराणों में कई कथानकों के माध्यम से जिस क्षणभंगुर शरीर की बातें की गई हैं, वैसे ही भाव लोग में प्रचलित मृत्यु गीत की निम्न पंक्तियों में देखते हैं–

''बंगला अजब बने रे,
भाई बंगला अजब बने रे भाई
नयना में पनमेसर देखेंवं
बंगला अजब बने रे भाई।।
ए बंगला के दस दरवाजा
पवन चलावय हंसा।
आवत जात कोनो नहि
करथे ईश्वर मनसा।।
हाड़ चाम के ईंटा बनाये
लहू रकत के लोई।
रोवां केस के छानी बने है
हंसा रहे सुख सोई।।''

सारांश यह है कि लोकगीतों की प्रासंगिकता बनी हुई है, अपने मूल रूप में न सही समयानुकूल आंशिक परिवर्तित रूप में आज भी लोकगीत सुने व गाए जाते हैं। लोकगीत शिष्टगीतों से कमतर नहीं हैं, बल्कि विद्वतजन लोकगीतों से ही शिष्ट गीतों की उत्पत्ति मानते हैं। खेत-खलिहानों में न सही निर्जन कछारों में न सही, आधुनिक संसाधनों के माध्यम से

लोकगीतों की गूंज सुनाई देती है। यह भी कटु सत्य है कि आज श्रुत परंपरा की वकालत चाहे जितनी की जाए, किंतु युग का यथार्थ कहता है कि समय श्रुत परंपरा का नहीं है। अब वाचिक परंपरा में गीत, कविताएं कहानियां और अन्य स्तरीय रचनाएं नहीं आती। करमा, पंथी सुवा, ददरिया, फाग आदि लोकगीत अभी भी सामान्य रूप से पढ़ी-लिखी जनता द्वारा गाये सुने जाते हैं, किंतु संचार क्रांति ने लोक विधा को खूब प्रभावित किया है। बाहरी चमक-दमक और बाजारवाद से जड़ से कटने का खतरा तब है, जब हम स्वयं की संस्कृति के प्रति सजग न हों। आज के वैश्वीकरण में उपभोक्तावादी स्वकेंद्रित भाव है। इसलिए हम संशकित हो रहे हैं, किंतु यह भी स्मरण रखें कि वैश्वीकरण का नारा पाश्चात्य का नहीं, हमारा रहा है जो तब और अब तथा आगे भी प्रासंगिक रहेगा, जिसमें संपूर्ण पृथ्वी को परिवार कहा गया है—वसुधैव कुटुंबकम्।

यह भी सत्य है कि हम संचार क्रांति के युग में जी रहे है। इस क्रांति से लोकविधा प्रभावित हुई है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समयानुरूप परिवर्तित नहीं होंगे तो पिछड़ने का खतरा है। यदि नकल नवीसी के फैशन को छोड़कर मौलिक चिंतन और सहज रहन-सहन का सहारा लिया जाए तो बहुत कुछ बात बन सकती है। जैसी जहां की मिट्टी होती है, खाद-पानी की सुलभता होती है, हवा बयार होती है, वैसी वहां फसल उगती है। लोक से उत्पन्न होने वाली साहित्य संपदा का यदि क्षरण हो रहा है तो संरक्षण के प्रति भी सजग रहें क्योंकि लोक का संरक्षण ही हमारी जातीय जीवन धारा को दीर्घायु करेगा। हमारी लोक संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी हैं और जो संस्कृति मिट्टी से जुड़कर लोकरस लेकर चलती है वह कभी नष्ट नहीं होती। ददरिया आज भी गा रहे हैं, सुन रहे हैं, खेत-खलिहान में न सही स्टूडियो में गा रहे हैं, मंचों पर गा रहे हैं और हम अत्याधुनिक संचार माध्यमों से सुन रहे हैं। लोकगीतों के प्रस्तुतिकरण व बाह्य आवरण बदलते रहे किंतु आत्मा बनी रहे इसके लिए भी हम सजग रहें।

संदर्भ—

1. सुमन श्री रामनाथ (सं) सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, हिंदी साहित्य, सम्मेलन प्रयाग, संस्करण 1974, पृ. 276
2. ऋग्वेद—पुरुष सूक्त—10/90/24
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—जनपद (पत्रिका) वर्णन, अंक—1 पृ. 65
4. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय—लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, प्रा.लि. इलाहाबाद, संस्करण 2004, पृ.193
5. डॉ. कालीचरण यादव—मड़ई 2010, बिलासपुर (छ.ग.) पृ.19-20

श्री संतोष यादव, श्री चंद्रिका यादव, श्रीमती सुकवारा ध्रुव, अंदेसा ध्रुव, मंगलू निषाद, ग्राम पीपरमाटी, जिला कबीरधाम से श्रुत परंपरा से प्राप्त लोकगीत।

डॉ. भरत पटेल, अधिष्ठाता लोककला एवं संगीत संकाय एवं डॉ. नत्थू तोड़े, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ से लोक गीत।

इंजीनियर विनोद ठाकरे, बिलासपुर से प्राप्त जंवारा गीत।

श्री ऋषि विश्वकर्मा, लोकगायक सागर म.प्र. से प्राप्त लोकगीत।

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़,
क्वार्टर नं.-3 विश्वविद्यालय परिसर,
खैरागढ़—491881 (छ.ग.)

चंबा एक 'अचंबा' है

प्रवीण कुमार सिंह

बारह वर्ष से पत्रकारिता में सक्रिय प्रवीण कुमार सिंह कई मीडिया संस्थानों में नौकरी करने के उपरांत आजकल स्वतंत्र लेखन में सक्रिय हैं। कहानी लेखन के अलावा कई वृत्त चित्रों का निर्माण।

हिमालय के हिमाच्छादित शिखर पंक्तियों की गोद में बसा हुआ चंबा पर्यटन, पुरातात्विक अवशेषों, पुरानी मूर्तियों, कलाकृतियों, अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य आदि विशेषताएं अपने में समेटे हुए है। इसके बारे में सही कहा गया है–चंबा अचंबा! पूरे हिमालय में इतिहास और पुरातत्व सामग्री के मामले में चंबा की कोई बराबरी नहीं कर सकता है।

हिमाचल प्रदेश का यह जनपद पश्चिम में जम्मू और उत्तर पूर्व में लद्दाख क्षेत्र तथा दक्षिण में पंजाब के गुरुदासपुर से घिरा हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 6,528 किलोमीटर है। इसके चारों तरफ गगनचुंबी पहाड़ियां हैं। यह पूर्णतः पहाड़ी क्षेत्र है, जिसकी ऊंचाई लगभग 2 हजार फुट से 21 हजार फुट मानी गई है। चंबा उत्तरी अक्षांश 32' 10' तथा पूर्वी देशांतर 75' 33' के मध्य स्थित है।

यह पर्यटन और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। चंबा शहर तीन सौ फुट ऊंचाई पर बसा हुआ है। शहर में प्राचीन लक्ष्मीनारायण मंदिर है, जो चंबा के राजधानी बनने के समय का है। शहर के बाहर जालपा देवी का मंदिर है, जिसमें बारहवीं सदी की कुछ मूर्तियां हैं। यहां की बूढ़ी सिंह संग्रहालय अपने आप में अद्वितीय है। इसमें अनेक दुर्लभ चित्र, मूर्तियां और ताम्रलेख रखे हुए हैं।

चंबा की पुरानी राजधानी ब्रह्मपुर (भरमौर) रही है। यहां के ऊपर वाले पहाड़ पर दत्राढ़ी गांव है। वहां हजार वर्ष पुरानी देवी की मूर्ति है। भरमौर किसी समय हिमालय खंड की राजधानी था। हिमाचल के बारे में यायावर राहुल सांकृत्यायन ने 'हिमालय एक सांस्कृतिक यात्रा' किताब में लिखा है कि भरमौर का 'चौरासी' राष्ट्रीय संग्रहालय है। यहां नरसिंह, लक्ष्मी देवी और गणेश की 7वीं और 8वीं शताब्दी की धातु मूर्तियां हैं। इनके ऊपर उत्कीर्ण अभिलेखों के कारण यह मूर्तियां भारत में अद्वितीय हैं।

यहां जमीन से 13 हजार फुट की ऊंचाई पर मणी महेश का सुंदर सरोवर है, जो पर्यटन के लिए बहुत ही सुंदर और रमणीय स्थल है। आपको यह जानकर आश्चर्य लगेगा कि चंबा जनपद में पांच भाषाएं गद्दी, चुराही, पंगवाली, चंबयाली, भटियाती (कांगड़ी) बोली जाती हैं।

चंबा रियासत का सन् 1948 में हिमाचल प्रदेश में विलय हुआ। चंबा का पुराना राजवंश यहीं था। इस क्षेत्र को गदरान और लोगों को गद्दी कहा जाता था। यहां के बड़ा-बनगाहल में रावी नदी का उद्गम स्थल है। चंद्रभागा नदी यहां के पादा में प्रवेश करते समय 7 हजार फुट के ऊंचाई पर अविरल बहती है, यहीं तिरोत में उसकी धार 9 हजार फुट पर है। जांस्कर-श्रेणी की एक ऊंचाई बाही, गुरधार है, जिसके शिखर 21 हजार फुट ऊंचे हैं। यहां के निचली पहाड़ियों की ढलानों पर देवदार और कैल के घने जंगल हैं, जिनके पीछे 18

हजार से 21 हजार फुट ऊंचे हिम वाले शिखर अपनी शोभा से पर्यटक को चकित करते हैं।

चंबा की पर्वत श्रेणियों की चर्चा न की जाए तो इसका महत्त्व अधूरा रहेगा। यहां हाथीधार सबसे नीची पर्वत श्रेणी है। धौलाधार पर्वत श्रेणी की चट्टानें तृतीय युग के बलुआ पत्थर की हैं। बसंत के समय यहां बहुत मनमोहक दृश्य होता है। बुरांस के फूल से पहाड़ और घाटियां बिल्कुल नवदुल्हन की तरह सज जाती है।

यह जिला कभी लाहुल और पांगी दो भागों में बंटा था। पहले पांगीधार के उत्तर जाने के लिए कोई राज्य कर्मचारी तैयार नहीं होता था। इसे मौत के मुंह में जाना समझा जाता था, इसलिए वहां भेजे गए हरेक अधिकारी व कर्मचारी को श्राद्ध के लिए अलग से भत्ता मिलता था, जिसे जिंदा आने पर भी वापस नहीं लिया जाता था। सचमुच कभी पांगी देश का दूसरा काला पानी था क्योंकि वहां अपराधियों को निर्वासित करके भेजा जाता था।

यहां अति प्राचीन समूह अर्थात् प्राक्ककबरीय चट्टानें बहुत पुरानी हैं, देवीदागल्ला की सीमा को पार करने पर ये शिलाएं आती हैं। जिनमें चूना-पत्थर और स्लेट आदि मिलते हैं। वैसे तो पूरा हिमालय खनिज संपदा से भरा हुआ है। यहां के भरमौर, चुराह और पांगी के कुलाल में लोहा मिलता है। वहीं हल परगने में पहले तांबे की खान थी। यहां के दरवास क्षेत्र में अभ्रक भी पाया जाता है। जिप्सम धातु भी बाथरी के पास मिलता है। राजा प्रताप सिंह वर्मा (1559-66) के समय काफी खुदाई होती थी।

चंबा वन-संपदा से भरा-पूरा है। सन् 1864 के पहले यहां के जंगल पुराने ढंग से रियासत के जिम्मे थे। उसी वर्ष राजा हरि सिंह ने अंग्रेज सरकार को 99 वर्ष के लिए जंगल ठेके पर दे दिए, जिसके लिए 21 हजार वार्षिक की रकम तय हुई। फिर अंग्रेज सरकार ने सन् 1908 में जंगल रियासत को वापस कर दिया। यहां भोजपत्र, अमलतास, अमला, अखरोट, बेहकट, बेकली आदि के वृक्ष हैं। वन विभाग की उदासीनता के कारण लाल ब्रास, धुपी, पदम, अंगू, थांगी, चिलगोजा के पेड़ खत्म हो गए हैं।

यहां के जंगलों में लाल भालू, ठार, कस्तूरी मृग, चीता, भालू, जंगली बकरी, जंगली बिल्ली, बर्फानी तेंदुआ, सराव आदि जानवर पाए जाते हैं। मौसम में हो रहे परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के कारण मोकाल, कोकलास फूल की घाटी अब खत्म हो गई है।

चंबा ने अलेक्जेंडर कनिंघम और डॉ. फोगल जैसे पुरातत्वविदों का ध्यान अपनी ओर खींचा था। इन्होंने यहां के बारे में पुरातत्व विभाग की रिपोर्टों में बहुत सी बातें लिखी हैं। कनिंघम ने नई राजधानी चंबा और पुरानी राजधानी भरमौर तथा प्रमुख मंदिरों का विवरण लिखा है। ये भरमौर और छतराढ़ी में पाए गए मेरूवर्मा के अभिलेखों का जिक्र किया है तथा तीन ताम्र पत्रों और एक शिलालेख का विवरण लिखा है। इन तीनों ताम्र पत्रों में सबसे

प्राचीन का संपादन प्रो. कील हर्न ने (सन् 1888 ई. की इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द 17, पृ. 7) किया है। यहां 6वीं से 17वीं सदी तक के 150 से ज्यादा अभिलेख मिले हैं, जिन्हें पुरातत्व विभाग ने प्रकाशित किया है।

चंबा में दान पत्र के लिए अक्सर ताम्र पत्र प्रयोग किया जाता था। यहां के राजाओं ने मंदिरों और ब्राह्मणों को दान दी गई भूमि का उल्लेख इन ताम्र पत्रों में किया है। प्रायः चंबा के हरेक राजा ने ऐसे 80 ताम्र पत्र दिए हैं। राजा पृथ्वी सिंह (1641-64 ई.) के समय तक ऐसे 80 ताम्र पत्र मिले हैं। लोगों का अनुमान है कि इसकी संख्या और ज्यादा हो सकती है। दस शताब्दियों तक लगातार दिए जाने वाले ऐसे ताम्र पत्र देश में और कहीं नहीं मिले हैं।

प्राग मुस्लिमकालीन ताम्र पत्रों में सबसे पुराने ताम्र पत्र में साहिल्ल वर्मा का जिक्र आता है। जिसने भरमौर से अपनी राजधानी को हटाकर चंबा में स्थापित किया था। साहिल्ल के पुत्र युगा भरमौर के नरसिंह देव मंदिर के लिए इस दान पत्र को प्रदान किया था। 10वीं-11वीं शताब्दी के अभिलेखों से पता चलता है कि उस समय चंबा एक स्वतंत्र राज्य था।

चंबा के इतिहास पर सबसे पहले जनरल कनिंघम और उसके उपरांत डच विद्वान डॉ. फोगेल के शोध से उसके स्वर्णिम इतिहास का पता चलता है। चंबा के अभिलेखों और इतिहास को देखें तो मालूम होता है कि चंबा राजवंश (550-1948 ई.) हिमालय का सबसे पुराना राजवंश है।

पर्यटन की बात की जाए तो यहां की डलहौजी और खजियार झील बहुत ही मनमोहक, शांत व जीरो प्रदूषण वाला हिल स्टेशन है। चंबा और पांगी में बहुत सारे ट्रैकिंग रूट है, जो कश्मीर और लाहौल स्पीति, कांगड़ा निकल जाते हैं।

चंबा की कला अपने आप में बेमिसाल है। यहां का चंबा रूमाल और चित्रकला विश्व प्रसिद्ध है। चंबा शहर में महिलाएं रंगीन रेशम व सूत से कपड़े पर कसीदा काढ़ती हैं। कसीदे की खासियत यह है कि कपड़े के दोनों तरफ एक ही चित्र बनता है। यहां का रुमाल और चित्र कई देशों के संग्रहालय में शोभा बढ़ा रहे हैं। पहाड़ी पेंटिंग के लिए यहां के विजय शर्मा को पद्मश्री पुरस्कार मिला है। राष्ट्रपति पुरस्कार भी कई लोगों को मिल चुका है।

हमारे देश में नदियों को देवी का रूप माना जाता है। इसकी पूजा बहुत पहले से की जा रही है। साल्ही में नदी देवियों की आठ मूर्तियां एक तरह की हैं, जिनको उनके वाहन से पहचाना जाता है। सभी नदियां हाथ में जलकुंभ लिए खड़ी हैं। कुंभ के ऊपर नदी का नाम लिखा हुआ है। जिनसे गंगा, यमुना, सिंधु, वितस्ता, झेलम, व्यास और सतलुज का पता लगता है। दो मूर्तियां नष्ट प्राय हैं, जिनके बारे में बताया जाता है कि चंबा की दोनों नदियां रावी और चंद्रभागा हैं। गंगा और यमुना की मूर्तियां देश में बहुत मिली हैं। लेकिन गंगा से लेकर सिंधु तक की सभी बड़ी-बड़ी नदियों की मूर्तियां देश में और कहीं नहीं मिलती हैं।

यहां लाहौल में त्रिकोल नाथ का मंदिर हिंदू और बौद्ध दोनों धर्मों के अनुयायियों के श्रद्धा का केंद्र है। मंदिर का पुजारी लामा है। नेपाल, तिब्बत और लद्दाख से बौद्ध दर्शन करने आते हैं।

यहां नग्गर और शिखर शैली में बने लक्ष्मी नारायण, हरिराय मंदिर, वंशीगोपाल मंदिर, सीताराम मंदिर, चंद्रशेखर मंदिर, चामुंडा मंदिर, चंपावती मंदिर है। ये मध्यकाल या उससे पहले के बने हुए हैं।

यहां मौसम ऋतुओं और तापमान के अनुसार सदैव आकर्षक रहता है। ठंड में बर्फ बहुत नीचे तक पड़ जाती है, लेकिन गर्मियों में हिम रेखा ऊपर की ओर हटने लगती है। चंबा के बारे में जितना कहा जाए, कम है। इतिहास और सौंदर्य से सराबोर चंबा में होने का अनुभव का वर्णन शायद शब्दों में नहीं हो सकता है।

ई-20 (प्रथम तल), जवाहर पार्क,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

कहानी

हरा-भरा रेगिस्तान

भगवती प्रसाद द्विवेदी

कथाकार समालोचक कवि भगवती प्रसाद द्विवेदी की 70 पुस्तकें प्रकाशित। हिंदी के अलावा भोजपुरी में भी लेखन।

पति बैंक में हेड कैशियर थे, अतः दस का एलार्म बजते ही दफ्तर की तरफ भागे। वह दरवाजे तक उन्हें छोड़ने गई और फिर एक गहरा निःश्वास छोड़ती वापस कमरे में लौट आई।

मिनाल और सलिल ने झटपट तैयार होकर कॉलेज की राह पकड़ी। अब विभा को दिन भर बिल्कुल फुर्सत थी। पुनः एक सांस छोड़ती वह पलंग पर निढाल हो गई।

चित लेटी विभा कमरे की तमाम तस्वीरों को एक-एक करके अपलक निहारती चली जा रही है। फिर कुछेक तस्वीरों को वह बड़े गौर से देख रही है और उनमें जैसे उनकी प्रतिध्वनि-सी गूंजती है। उसकी डबडबाई आंखें कुछ क्षणों के लिए बंद होती हैं और जब खुलती हैं तो उसके दिल में एक अजीब-सी हलचल होने लगती है। अतीत के बिखरे ढेर-सारे छिलके उसकी आंखों के आगे न चाहते हुए भी एकत्र होते जा रहे हैं और वह यादों के दायरे में इस कदर डूबती जाती है कि अपनी सुधबुध तक खो बैठती है...

तब भी एक समय था। बीतने को तो तकरीबन पांच साल बीत गए होंगे, मगर आज भी वे सभी विभा के मानस-पटल पर बिलकुल वैसे ही अंकित हैं। नारी की जिंदगी उसे एक खूबसूरत कपड़े-सी प्रतीत होती है। वही कपड़ा जब किसी दुकान में टंगा होता है तो कितना सुंदर दिखता है! सब एक से बढ़कर एक! फिर भी कितनी एकरूपता होती है उनमें। खरीदार उन पर लपकता है और स्वेच्छा से चुनता है—कोई सुंदरता को परखकर तो कोई अन्य कारणों से लुभाकर। ग्राहक उस कपड़े को अपने ढंग से सिलवाता है और फिर जैसा चाहता है, उपभोग करता है। औरत भी तो मां-बाप के घर से एक ग्राहक के हाथ आ लगती है। फिर वह जैसा चाहे, उसे उपयोग करे। वह खुद से सवाल कर बैठती है, क्या उसकी जिंदगी भी ठीक वैसी ही नहीं है?

तब वह केवल सपनों की इंद्रधनुषी दुनिया में खोई रहती थी। सपने, जो कभी सच नहीं होते। राजेश की सशक्त बांहों में सिमटकर वह अपने सारे गमों को भूल जाया करती थी। माना, उसका रंग कुछ सांवला है, फिर भी उसे कोई चाहने वाला तो था। राजेश भी कोई ऐरा-गैरा नत्थू खैरा तो था नहीं। एक करोड़पति बाप का बेटा, गोरा रंग-रूप, छरहरा बदन और बड़ी-बड़ी आंखें। और उसमें भी किस चीज की कमी थी? पूरे कॉलेज में प्रथम स्थान रखने वाली लड़की को भला कौन नहीं चाहेगा?

एक बार राजेश की भुजाओं के बीच समाती हुई वह पूछ बैठी थी, ''राज, क्या हम दोनों सदा के लिए एक हो पाएंगे? समाज हम दोनों के बीच रोड़े तो नहीं अटकाएगा?''

तभी राजेश ने उसे अपनी सशक्त बांहों में कसकर जकड़ लिया था और उसका सवाल माहौल की नीरवता में खो गया था कहीं। उसी दिन मंदिर पहुंच कर दोनों ने भगवान को साक्षी रख, एक होने की शपथ ली थी।

उस दिन वसंत पंचमी की छुट्टी थी। विभा, राजेश के साथ 'सुरहा ताल' जाने का वायदा कर चुकी थी। आईने को सामने रखकर उसने मेकअप करना आरंभ कर दिया। मां बैठ कर रामचरितमानस का पाठ कर रही थी। मां की तरफ उसने एक बार देखा। नित्य की भांति उस दिन भी बालकांड की कुछ पंक्तियां तोते की तरह रटती मां को देखकर वह अपने को रोक न सकी और खिलखिलाकर हंस पड़ी।

अचानक दरवाजे पर दस्तक हुई तो उसने लपक कर सिटकनी खोल दी। सामने बैंक का चपरासी नरेश खड़ा था।

''कहिए चाचा, अच्छे हैं न? बाबू जी ने जरूर किसी काम से भेजा होगा। आइए, मां पूजा पर बैठी हैं।'' कहती हुई वह नरेश के साथ आंगन में बढ़ गई थी।

''देखो बिटिया.... एक चिट्ठी है।'' नरेश बड़ी मुश्किल से यह वाक्य कह पाया था।

उस पर एक पहाड़ टूट पड़ा। पत्र पढ़ते ही वह बेहोश हो गई। उसके बाबूजी को दफ्तर में चौथा 'हार्ट अटैक' हुआ था और अबकी बार तो हृदय की गति रुक जाने से वे सदा के लिए सो गए थे।

घर में आंसुओं की गंगा बहने लगी। रोते-रोते सबके दिल बैठ गए। उसके बाबूजी बैंक में बड़े साहब के यहां जमादार थे, अतः सहानुभूति दिखाने बैंक के लगभग सभी कर्मचारी आए। अपने भाई-बहनों में वही तो सबसे बड़ी थी और उन सब को मझधार में छोड़कर बाबूजी जुदा हो गए। कॉलेज छोड़कर विभा घर की खाक छानने लगी।

मां पर विभा की शादी का बहुत बड़ा बोझ आ पड़ा और वह अपने को सब तरह से बेसहारा पाकर परेशानियों के दरम्यान छटपटाने लगी। विभा, मां का दर्द समझती थी। जब उसका राजेश जिंदा है, फिर चिंता किस बात की! सोचती हुई विभा आशा से भरी कॉलेज की तरफ चल दी। उसने तो सिर्फ राजेश को ही अपना पति माना था और इस ख्याल के साथ ही उसकी आंखों में भगवान के आगे ली गई शपथ की स्मृति नाच उठी।

कंपाउंड में प्रवेश करते ही राजेश उसके पास से ही होकर गुजरा, मगर बोला तक नहीं। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। मगर हो सकता है, राजेश ने उसे आजमाने की ठानी हो। सोचकर उसने पुकारा, ''राज!''

राजेश उसके पास आकर खड़ा हो गया। वह भी बुत बनी खड़ी रही। राजेश ने तो सहानुभूति के दो शब्द भी नहीं कहे उससे। यह कैसा परिवर्तन! हारकर विभा ने ही सब बातें बतायीं। अंत में उसने मुस्कराते हुए सिर्फ इतना कहा, ''जानता हूं।''

वह दीनता से बोली, ''मुझे अपना बना लो, राज! मैंने जिंदगी में सिर्फ तुम्हें ही चाहा है भगवान से मैंने केवल तुम्हें मांगा है मुझे मत ठुकराओ'' ऐसा लग रहा था जैसे कोई विवश नारी आंचल फैलाए अपने प्यार की भीख मांग रही हो।

''मगर प्यार और शादी में फर्क होता है, विभा! वह तो बस एक लड़कपन था।'' राजेश अब भी मुस्करा रहा था।

''लड़कपन! मगर मैंने तो'' विभा की आंखें डबडबा आई थीं।

''तो वह तुम्हारी नादानी थी और क्या।'' कहता हुआ वह लंबा डग भरता आगे बढ़ गया था।

''राज... सुनोगे भी या...?'' वह गिड़गिड़ाई, मगर प्रत्युत्तर न मिला।

विभा बुत बनी राजेश को देखती रही।

आगे किसी दोस्त ने पूछा था राजेश से, ''आजकल विभा से तुम्हारा प्यारा चल रहा है न?'' विभा को सारी बातें स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं।

''तुम भी क्या बकते हो! उस बदरूप से मैं भला प्यार करूंगा? अरे, वह तो उससे 'नोट्स' लेने का एक तरीका था... बस!''

अचानक एक तीखी आवाज गूंजती है और उसका अतीत टूटकर बिखर जाता है। हड़बड़ा

कर उठती है वह। सामने मेज पर रखा दूध पीने की इच्छा से संभवतः बिल्ली ने धावा बोला होगा, जिससे टेबिल पर रखी रमन की मढ़ी तस्वीर फर्श पर लुढ़क कर टुकड़े-टुकड़े हो गई है। फोटोग्राफ को उठाकर वह निहारने लगती है। पचास साल के रमन उसके पति हैं—बैंक के हेड कैशियर रमन। दोनों की उम्र में पच्चीस साल का अंतर है। विभा को यह एक अजीब-सा संयोग लगता है—यौवन व बुढ़ापे का संयोग!

पलंग तक पहुंच कर वह पुनः अतीत की तरफ लौट आती है। मां ने रमन को ही चुना था विभा के लिए।

''रमन के पास ढेर सारे रुपयों का बैंक-बैलेंस है। खेती-बारी है। शहर में इज्जत-आबरू है। एक जाने-माने प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। क्या नहीं है उनके पास! मेरी औकात ही क्या थी उन तक पहुंचने की, सिर्फ उन्होंने दहेज में एक पैसा भी न लेने की कसम खा रखी है।'' एक दिन विभा की मां अपनी पड़ोसिन को बता रही थीं। विभा झरोखे से कान लगाए मुस्करा रही थी।

और आज वह देखती है, जितना कुछ मां ने कहा था, सभी कुछ है उसके पास। मां ने विदाई के वक्त उससे कहा भी था, ''विभा, तुम एक बड़े घराने में कदम रखने जा रही हो। एक बेटा और बेटी बस दो ही संतान हैं उनके। आज से तुम्हारी जिम्मेदारी बढ़ रही है। जाओ, राज करो।'' और वह सिसकती हुई कार में जा बैठी थी।

उमर में उससे तकरीबन दो-तीन साल छोटी मिनाल अब उसकी बेटी है और मिनाल से पांच वर्ष छोटा सलिल उसका बेटा। पहली शादी से सिर्फ दो संतान हैं उनके। हनीमून की रात ही रमन ने विभा से कहा था, ''विभा, मैंने बच्चों की देखरेख की खातिर ही दूसरी शादी की है। आज से इनकी पूरी जिम्मेदारी तुम्हारे सिर पर है। देखना, इन्हें किसी चीज की तकलीफ न होने पाए।''

यादों की कड़ियां अपने आप जुड़ती जा रही थीं।

एक दिन मिनाल की एक सहेली आई थी। उसके कमरे से गुजर कर दोनों पास वाले बरामदे में जा बैठीं। सहेली ने मिनाल से पूछा था, ''बगल वाले कमरे में तुम्हारी दीदी बैठी है न?''

सब्जी काटना छोड़कर विभा विस्मृत-सी सुनने लगी थी।

''ऊहं!'' मिनाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया था।

''तो फिर?'' सहेली जिज्ञासावश पुनः पूछ बैठी थी।

मिनाल आहिस्ता-से कह पाई थी, ''मेरी सौतेली मां है।''

उस समय 'सौतेली' शब्द विभा को बहुत चुभा था। दिन भर वह रोती रही थी।

देखते-ही-देखते एक साल बीत गया। एकाएक विभा का जी मिचलाने लगा था। उल्टी होनी आरंभ हो गई। खबर सुनते ही रमन परेशान हो उठे थे। तत्काल अस्पताल ले गए। रास्ते-भर वह आश्वस्त थी—यह सोचकर कि रमन उसे कितना चाहते हैं—शायद अपनी जान से भी ज्यादा। थोड़ी ज्यादा अवस्था होने से क्या हो गया।

अस्पताल में उसने डॉक्टर को रमन से कहते सुना—''मां बनने वाली हैं।'' फिर दोनों फुसफुसाए।

जब दोनों वार्ड से बाहर निकले तो रमन ने बताया, ''सब ठीक-ठाक हो जाएगा।''

''क्या मतलब?'' विभा ने उसकी बात को समझा नहीं।

''एबार्शन करा देंगे।''

''एबार्शन!' कुलांचे भरती हिरनी को जैसे तीर लगा हो।

उन्होंने समझाने के अंदाज में कहा था, ''मुझ जैसे बूढ़े को अब और बच्चे की क्या जरूरत है! मिनाल और सलिल तुम्हारे ही बच्चे तो हैं। बस, वे ही भगवान की दया से'' इसके बाद भी उन्होंने ढेर-सारी बातें कहीं, मगर उसने सुना नहीं। दूसरी तरफ मुंह करके वह सुबकती रही। पर बात तो रमन की ही रही, वह स्त्री जो थी!

उसके बाद कई रातों को विभा ने अपनी आंखों में गुजारा। रमन पास ही खर्राटे ले रहे होते और वह उनके भोले-भाले चेहरे में किसी दैत्य की झलक पाकर सुबक-सुबक कर आंसू बहाती रहती।

और फिर तो वह पुत्र पैदा करने के काबिल भी नहीं रही। एक दिन उसके पेट दर्द के इलाज के साथ ही उन्होंने उसका ऑपरेशन भी करा डाला था। फिर भी वह यह सोचकर आश्वस्त थी—शायद उसके भाग्य में यही सब कुछ लिखा था।

आज वह दो बच्चों की मां है। धन-दौलत, बंगला, सुहाग सब कुछ है उसके पास। मगर एक चीज उसे आज भी कचोटती है। जिसे वह अपना समझी, जिस पर भरोसा किया, उसी ने उसे धोखा दिया। जिस पर उसने अपना सर्वस्व न्योछावर किया, उसी ने उसके साथ विश्वासघात किया। राजेश ने भी अपने स्वार्थ के आगे उसके प्यार को कुछ न समझा और रमन ने भी।

एक ओर वह पुत्रवती और सुहागन है, वहीं दूसरी ओर निपूती और बांझ भी। उसकी आंखों से झरते आंसू उसके गालों से ओस की बूंदों की भांति लुढ़क रहे हैं। मिनाल और सलिल को देखते ही न जाने क्यों एक अजीब-सी टीस उसके अंतस् से पनपने लगती है। रमन की हर बात उसे सिर्फ दिखावा लगती है। उसे लगता है, जैसे उसका जीवन एक हरा-भरा रेगिस्तान हो—एक ऐसा रेगिस्तान, जहां हरे-भरे खेत हों, पंपिंग सेट से बहता पानी हो, मगर फिर भी वहां कोई फूल न खिले, कोई वनस्पति न उगे।

घड़ी ने चार बजाए। सलिल के आने का वक्त हो गया है। सिसकती हुई उठकर वह बाथरूम में जा घुसी।

शॉवर में आंखों को धोती हुई वह सामान्य बनने की कोशिश कर रही है। मगर आंखों में आज बाढ़-सी आ गई थी। उसे लगा जैसे उसके हरे-भरे रेगिस्तान में तूफानी हवाएं चलने लगी हों तथा रेत के ढेर-सारे कण उसकी आंखों में समा गए हों, जो उसके संजोए सपनों को आंसू के रूप में बहाए जा रहे हों और वह उन सपनों को, अपने यौवन की हरियाली को हाथों से पोंछ-पोंछ कर दूर फेंकती जा रही हो।

कमरा नं.-204, टेलीफोन भवन, आर. ब्लॉक, पोस्ट बॉक्स-115, पटना-800001 (बिहार)

कहानी

नहीं अम्मा

रणीराम गढ़वाली

कहानी लेखन एवं संपादन से सबंद्ध रणीराम गढ़वाली की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन तथा तेलुगू, कन्नड़ एवं असमिया भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद। कई पुरस्कारों से सम्मानित।

देहरी में बैठी झांपा आज भी अपने पुत्र राजी के पत्र का इंतजार कर रही थी। घर में अकेली जर्जर व बूढ़ा शरीर लिए वह हर रोज आस लगाए रहती है कि उसके बेटे का पत्र आएगा। जिसमें लिखा होगा कि मां तू कैसी है? तू मेरी चिंता मत करना। अपना खयाल रखना। लेकिन राजी का पत्र नहीं आया। पहले तो उसके पत्र आते थे। कभी महीने में एक या फिर दो। तब वह उन पत्रों को बार-बार गांव के लड़कों से पढ़वाते हुए कहती, ''पढ़ बेटे पढ़। क्या लिखा है मेरे राजी ने इस पत्र में? उसकी नौकरी लगी या नहीं लगी? देख... देख... इसमें तारीख देख। कितनी तारीख को भेजा है उसने यह पत्र?''

लेकिन अचानक ही कुछ महीनों के बाद से राजी के पत्र आने बंद हो गए थे। कोई कहता कि राजी ने शहर की किसी लड़की से शादी कर ली है। कोई कहता कि आदमी की नीयत कब बदल जाए। कुछ पता नहीं। हो सकता है कि चोरी व लड़ाई-झगड़े के इलजाम में वह जेल चला गया होगा। छूटेगा भी या नहीं, कोई नहीं जानता।

लोगों की बातें सुनकर झांपा परेशान व तंग हो जाती है। उसने राजी को शहर जाने से पहले कई बार समझाया था कि वह शहर जाकर क्या करेगा? कितना कमाएगा? बाप-दादा की जमीन है। उसी में दो वक्त का गुजारा हो जाएगा। तू शहर मत जा। तेरे शहर चले जाने के बाद वह निपट अकेली हो जाएगी। कभी अगर रात-आधी रात को उसकी तबीयत खराब हो गई तो उसे कौन देखेगा? तू साथ में रहेगा तो फिर कोई चिंता की बात ही नहीं। बुढ़ापा शरीर है। मर भी गई तो तू कंधा लगाकर उसे फूंकने कुट्या में तो ले जाएगा। तेरी अनुपस्थिति में अगर वह मर गई तो उसे कंधा कौन देगा? स्वर्ग में फिर पितरों के साथ उसे जगह नहीं मिलेगी। पितरों के साथ मिलने के लिए उसकी आत्मा सात जन्मों तक भटकती रहेगी। घर में अकेली रहते हुए उसे देखने वाला भी कोई नहीं है। अगर वह रात-बिरात में बाहर निकलते हुए सीढ़ियों से गिर गई तो उसे कोई उठाने वाला भी नहीं है।

लेकिन वह चुपचाप अपनी मां की बातों को सुनता रहा। जब मां का कहना रुका तो उसने कहा, ''मां गांव की इस पथरीली जमीन में कुछ भी नहीं होता। वो समय चला गया है जब यहां की जमीन में गुजारे लायक अनाज हो जाता था। मैं कुछ गलत नहीं कह रहा हूं। यह तो सभी जानते हैं कि यहां की फसल बारिश पर ही निर्भर करती है। सावन-भादो की फसल अच्छी हो जाया करती थी। बारिश हो गई तो फसल हो गई। अन्यथा सूखे खेतों को टकटकी लगाए देखते रहो। अब तो पहले जैसे सावन-भादो गायब हो गए मां। मेरा शहर जाने का कोई मन नहीं था। लेकिन सारा सामान तो दुकान से ही लाना पड़ता है। कोदो व झंगोरा की फसल तो अब होती ही नहीं।''

''लेकिन यह तेरे बाप-दादा व पुरखों की जमीन है बेटा। इस जमीन में हमारी न जाने कितनी ही पीढ़ियां पली व बढ़ी। फिर एक तू ही से छोड़कर क्यों जा रहा है?''

''मैं इसे छोड़कर कहां जा रहा हूं मां? मैं तो अपने लिए रोजगार की तलाश में जा रहा हूं। एक बात बता मां, क्या तूने इस जमीन में अपना जीवन व्यतीत करते हुए कभी चैन से खाया, या फिर तू कभी चैन से सोई? मैं जमीन नहीं छोड़ रहा हूं। मैं तो कुछ कमाना चाहता हूं।''

राजी की जिद्द के आगे वह हार गई थी और फिर उसने राजी को शहर जाने की इजाजत दे दी थी। उसने गांव के गजी से ही कुछ रुपए उधार लिए और फिर वह भगता के साथ शहर के लिए चल पड़ा था।

जब तक राजी के पत्र आते रहे, तब तक गजी खामोश रहा। लेकिन जब से राजी गया है, गजी ने अपना नियम नहीं तोड़ा है। वह रोज झांपा के पास आकर उसके सुख-दुख के बारे में पूछते हुए कहता है, ''काकी खाना खाया है या नहीं? बूढ़ा शरीर है, खाना खा लिया कर। अगर तुझसे खाना नहीं बनता है तो बता दिया कर। मैं तेरे लिए घर से बनवा कर ले आया करूंगा।''

''राजी परदेश में है गजी। मैं भूखी भी तो नहीं रह सकती। चूल्हा जलाना भी तो बहुत जरूरी है।''

लेकिन जब झांपा के लिए राजी के पत्र आने बंद हो गए तो गजी झांपा से अपने रुपए

मांगने लगा था। शायद उसने सोच लिया था कि राजी लापता हो गया है। वह गांव आएगा भी या नहीं? झांपा जिएगी भी तो कितने दिन जिएगी? आखिर है तो बूढ़ा शरीर ही। सोचते हुए वह झांपा से कहता, ''काकी अगर तू मेरे रुपए वापस नहीं लौटा सकती तो रुपयों के बदले में अपना एक खेत मुझे दे दे।''

''बेटे, राजी का पत्र आ जाता तो मैं उससे पूछ कर एक खेत तुझे दे देती। मेरा राजी पहले तो तेरे रुपए लौटाएगा, अन्यथा सोच ले कि एक खेत तेरा पक्का। लेकिन राजी का पत्र तो आने दे बेटा।''

कहते हुए झांपा अपनी बूढ़ी पलकों को निचोड़ने लगती। उस वक्त ऐसा लगता जैसे कि झांपा की बूढ़ी आंखें किसी रेगिस्तान में बरसों पड़े सूखे नाले की तरह बेजान व नीरस हैं। वह रोती लेकिन आंखों से एक भी बूंद पानी नहीं होता। राजी की याद में वह दिन-रात आंखें बिछाए रखती। शायद राजी आएगा और वह भी गांव वालों की तरह अपने खेतों में बीज बोएगा। लेकिन जब राजी नहीं लौटा तो वह लाठी टेकते हुए गांव के एक-एक घर में अपने हाथ जोड़ते हुए कहती, 'मेरे खेत बंजर हो गए हैं कोई उनमें बीज बो दो?''

''बुढ़िया मरती भी नहीं...!'' उसे कई स्वर सुनने को मिलते, ''सबको परेशान कर रखा है इसने। राजी तो लापता हो गया है फिर इने यह जमीन किसलिए रखी है? कौन खाएगा उसे? बेच क्यों नहीं देती? कुछ रुपए हाथ में आते तो जब तक जीती बैठ कर खाती।''

लोगों के शब्दों को सुनकर वह सोचती कि गांव वाले ठीक ही कह रहे हैं कि उसे मर जाना चाहिए। जवान लड़के का कुछ पता नहीं है तो वह जी कर क्या करेगी? कोई भी उसके बेटे के बारे में नहीं सोचता। सबकी नजरें उसकी जमीन पर लगी हुई हैं। तब चैन मिलेगा इन जालिमों को जब वे मेरी जमीन हथिया लेंगे। सोचते हुए झांपा बहुत बेचैन होने लगती ओर फिर वह सारी रात अकेली चुपचाप राजी की यादों में अंधेरे कमरे में बैठी रहती।

सुबह उठते ही वह रसोड़े में जाती। अपने लिए चाय बनाती। कभी मीठा नहीं होता तो कभी चाय पत्ती ही नहीं होती। जब चाय की ज्यादा ही तलब लगती तो वह किसी दूसरे के अमरूद के पेड़ से पत्ते तोड़कर लाती और उन्हें चाय पत्तियों के बदले काम में लाकर गरम पानी ही सुड़कने लगती।

तभी डाकिये की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ती। रसोड़े में से हड़बड़ाहट में बाहर की ओर भागती। कई बार वह हड़बड़ाहट में गिर भी चुकी है। फिर भी वह अपनी परवाह न करते अपनी धोती से अपनी बहती नाक को पोछते हुए बाहर आती है तो डाकिया उसे देखकर अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहता है, ''नमस्ते अम्मा...।''

''नहीं अम्मा...।''

डाकिया के शब्दों को सुनकर वह निरुत्तर हो जाती है। उसके बूढ़े व झुर्रियों भरे चेहरे पर गहन उदासी के बादल छा जाते हैं। उसकी आंखें मिचमिचाने लगती हैं। उस वक्त वह अपनी जगह पर बैठी हुई किसी पत्थर के बुत की तरह डाकिया को जाते हुए देखती रहती है। वह हर रोज डाकिया का इंतजार करती रहती है। लेकिन जब पोस्टमैन आता तो उसका एक ही उत्तर होता, ''नहीं अम्मा...।''

राजी को शहर गए एक लंबा समय हो गया था। पहले तो वह कुछ-एक महीनों तक पत्र भेजता रहा। मगर बाद में उसके पत्र आने बंद हो गए थे। उसके पत्र क्यों बंद हुए यह किसी को पता नहीं चला। लेकिन शहर की चकाचौंध में राजी जैसे खो सा गया था। फिर भी उसे लगता कि अपने गांव जैसा तो कुछ हो ही नहीं सकता। बेरोजगारी ने उसे नाको चने चबवा दिए थे। जब उसके पास पत्र डालने के लिए भी पैसे नहीं रहे तो उसने झांपा को पत्र भेजने ही बंद कर दिए थे। शहर में जो उसके गांव वाले रहते थे वह उनके पास जाता तो सबमें खुसर-फुसर होने लगती थी। उसे खाना देते वक्त भी उनका व्यवहार उसके प्रति सही नहीं होता। जो भी होता उसे तरह-तरह की बातें सुनाते हुए ताने मारता कि यह गांव नहीं है, जो कि लोगों से मांग-मांग कर अपना पेट भर ले। यह तो शहर है, यहां तो बहुत सोच-समझकर चलना पड़ता है। एक रोटी भी किसी को खिलाना मुश्किल होता है। एक रुपया भी अगर जेब में न हो तो कोई नहीं पूछता। नौकरी खोज राजी नौकरी...? ऐसे कब तक काम चलाएगा? कभी किसी के घर तो कभी किसी के घर।''

लोगों की बातें सुनकर वह मन मसोस कर रह जाता। मन में आता कि वह खाना छोड़कर चुपचाप चल दे। लेकिन कहां जाएगा। साली जिंदगी का तो कोई ठिकाना है ही नहीं। अगर इनकी बातें नहीं सुनेगा तो खाएगा कहां से? इधर-उधर नौकरी की तलाश में जाने के लिए बस का किराया भी तो ये ही लोग देते हैं। कुछ बोलेगा तो वह भी नहीं मिलेगा।

कहां पहुंच गया है वह? शहर के इस प्रदूषण भरे वातावरण में। जहां घुटन महसूस होती है। सांस लेने में कठिनाई महसूस होती है। अस्पतालों के आगे लंबी-लंबी लाइनें लगी होती हैं। आपस में धक्का-मुक्की व होड़ सी लग गई है मात्र एक बिस्तर पाने के लिए। दिन-दहाड़े चोरी-डकैती, कत्ल, बलात्कार अर्थात सब कुछ।

इससे अच्छा तो गांव था। जहां अपनापन है, प्रेम है, हमदर्दी है। ऊंची-ऊंची हरी-भरी पहाड़ियां व हरे-भरे पेड़ हैं। उन पर खिलते हुए लाल-लाल फूल हैं। तरह-तरह की पक्षियों का गूंजता हुआ कलरव है। लोकगीतों पर थिरकते पांव, गीत गाती लड़कियां और दूर कहीं मंदिर से आती शंख की आवाज, टनटनाती हुई घंटियों की आवाज मन को झकझोर कर रख देती है।

लोग वहां जाते हैं सैलानी बनकर और वह अपनी बूढ़ी मां व अपने खेतों को छोड़कर चला आया है नौकरी की खोज में। इतने दिनों से क्या मिला? कुछ भी तो नहीं। बिना जान-पहचान व रिश्वत के कहीं नौकरी नहीं। कब दंगा हो जाए, कब कर्फ्यू लग जाए... कुछ पता नहीं।

शहर की कड़वी, भीड़-भाड़ वाली जिंदगी में रम गया था वह। एक दिन जब वह थका-हार सोया तो रात को उसने सपने में अपनी मां को देहरी पर बैठे आंसू बहाते देखा, ''कैसा है रे तू? मां की याद नहीं आती तुझे? भूल गया तू अपनी मां को, जिसने तुझे जन्म दिया?''

''नहीं मां, मैं...।'' और फिर वह हड़बड़ा कर उठ बैठा था। नींद अचानक ही उसकी आंखों से कोसों दूर हो गई थी। मां का चेहरा व गांव की प्रत्येक चीज उसकी आंखों के आगे तैरने लगी थी। वह उठकर बाहर आया। सुनसान खाली सपाट सड़कें नजर आ रही थी। कभी-कभार हवा का तीव्र झोंका सरसराता हुआ निकल जाता। या फिर आस-पड़ोस में से किसी बूढ़े की खों-खों करती खांसी उसके कानों से टकराने लगती। वह बड़ी देर तक बाहर देखता रहा और फिर वह अपनी मां के लिए पत्र लिखने लगा था।

''मेरी प्यारी आदरणीय मां, चरण स्पर्श। मां तू ठीक है न? मां तू जरूर गुस्सा हो रही होगी कि मैंने तुझे पत्र नहीं भेजे। मैं सोच रहा था कि मैं अब हमेशा-हमेशा के लिए गांव लौट जाऊंगा और फिर कभी शहर का नाम ही नहीं लूंगा। मैंने देख लिया मां कि शहर में अपने भी पराए व अजनबी बन जाते हैं। तू रोती क्यों है मां? मैं जल्दी ही तेरे पास आ रहा हूं।''

पत्र लिखकर उसने दूसरे दिन डाक में डाल दिया था। अब वह सोचने लगा था कि जितनी जल्दी हो सके उसे अपनी मां के पास वापस गांव लौट जाना चाहिए।

रोज आने वाली डाक को पोस्टमैन गौर से देखता। मगर झांपा के नाम कोई पत्र नहीं होता। जब वह गांव में जाता तो लाठी के सहारे बैठी झांपा पोस्टमैन को देखते ही कहती, ''कोई चिट्ठी आई है बेटा?''

''नहीं अम्मा...।''

लेकिन आज जब उसने डाक देखी तो झांपा के नाम उसके बेटे राजी की चिट्ठी देखकर वह जल्दी से जल्दी गांव की ओर चल पड़ा था। वह मन ही मन सोचने लगा था कि आज जब अम्मा उससे पूछेगी कि मेरी कोई चिट्ठी आई है तो वह कहेगा कि हां अम्मा तेरी चिट्ठी आई है। वह जब अम्मा को चिट्ठी पढ़कर सुनाएगा तो वह कितनी खुश होगी। उसे ढेरों आशीर्वाद देगी। सोचते हुए वह गांव पहुंचा तो झांपा दीवार के सहारे बैठी थी।

''अम्मा तेरी चिट्ठी आई है।'' मगर अम्मा एकटक उसे घूरे जा रही थी।

''अम्मा, आज तेरी चिट्ठी आई है। तेरे बेटे राजी की...। तू रोज कहती थी न कि बेटा मेरी कोई चिट्ठी आई है, तो आज मैं तेरी चिट्ठी

लाया हूं। पढ़कर सुना दूं अम्मा?'' कहते हुए उसने अम्मा को हिलाया तो अम्मा का शरीर एक ओर लुढ़क गया था।

''तू बगैर पत्र सुने ही चली गई अम्मा? हर रोज तो तू पत्र का इंतजार करती रहती थी। थोड़ी देर के लिए और इंतजार कर लेती तो मैं तुझे ''नहीं अम्मा'' के बदले ''हां अम्मा'' का जवाब देता।''

लोग एकत्र हो चुके थे। गजी रो रहा था। राजी की चिट्ठी आई है। कुछ तो बोल काकी।''

मगर झांपा का मृत शरीर क्या जवाब देता? उसका शरीर अपने आप में चिट्ठी के शब्दों को सुनने की ताकत नहीं जुटा सका था। लेकिन लोगों का कहना था कि झांपा सुबह से बहुत खुश थी। क्योंकि उसने सपने में राजी को देख लिया था। वह कह रही थी कि आज राजी की चिट्ठी जरूर आएगी। जबकि पोस्टमैन झांपा के मृत शरीर को देखकर मन ही मन में सोच रहा था कि उस देहरी में बैठे उसे प्यार से कौन पूछेगा, ''मेरी चिट्ठी आई है बेटा?'' तो वह किसे जवाब देगा, ''नहीं अम्मा!''

एच-76, नानकपुरा, नई दिल्ली-110021

कहानी

दलदल

सुशांत सुप्रिय

कई पुरस्कारों से सम्मानित सुशांत सुप्रिय कविता, कहानी तथा अनुवाद के क्षेत्र में विशेष रूप से सक्रिय हैं। इसके अलावा दो काव्य संग्रह प्रकाशित।

''मैं उस समय बारह साल का था। वह दस साल का रहा होगा। वह मेरा सबसे अच्छा मित्र सुब्रोतो था।'' बूढ़े की सारी आवाज कमरे में गूंज उठी। वह हमें अपने जीवन की सत्य कथा सुना रहा था।

कुछ पल रुक कर बूढ़े ने फिर कहना शुरू किया, ''मेरा जन्म सुंदरबन इलाके के पास एक गांव में हुआ। गांव से दो मील दूर दक्षिण में दलदल का इलाका था। पिता मछुआरे थे जो गांव के उत्तर में बहती नदी से मछलियां पकड़ने का काम करते थे। पिता बताते थे कि पच्चीस-तीस मील दूर जाकर यह नदी एक बड़ी नदी में मिल जाती थी। गांव के पूरब और पश्चिम की ओर घने जंगल थे।

मेरा मित्र सुब्रोतो बचपन में ही अपाहिज हो गया था। पोलियो की वजह से उसकी एक टांग हमेशा के लिए बेकार हो गई थी। पर मेरी सभी शरारतों और खेलों में वह मेरा भरपूर साथ निभाने की कोशिश करता था। सुब्रोतो की आवाज बहुत सुरीली थी। वह बहुत मीठे स्वर में गीत गाता था।

हमें गांव के दक्षिण में स्थित दलदली इलाके की ओर जाने की सख्त मनाही थी। उस दलदल के भुतहा होने के बारे में अनेक तरह की कहानियां प्रचलित थीं। हम बच्चे अक्सर गांव के उत्तर में बहती नदी कि किनारे जा कर खेलते थे। मैं नदी में किनारे के पास ही तैरता रहता जबकि सुब्रोतो किनारे पर बैठा नदी के पानी में एक कोण से चपटे पत्थर फेंक कर उन्हें पानी की सतह पर फिसलता हुआ देखता।

अपने हम-उम्र बच्चों के बीच मैं बड़ा बहादुर माना जाता था। दरअसल मैंने एक बार गांव में घुस आए एक लकड़बग्घे पर पत्थर फेंक-फेंक कर उसे गांव से बाहर भगा दिया था। एक बार नदी किनारे खेलते-खेलते गांव के कुछ बच्चों ने मुझे चुनौती दी कि क्या मैं गांव के दक्षिण के दलदली इलाके में अकेला जा सकता था? बात जब इज्जत पर बन आई तो मैंने चुनौती मान ली। हालांकि सुब्रोतो ने मुझे ऐसा करने से मना किया पर तब तक मैंने हामी भर ली थी। यह तय हुआ कि कल मैं गांव के दक्षिण में स्थित दलदली इलाके में जाऊंगा और सकुशल लौट कर दिखाऊंगा।

नियत दिन सुबह गांव के सभी बच्चों की टोली गांव के दक्षिणी छोर पर पहुंची। मैं और सुब्रोतो भी उन सबके साथ थे। मुझे दो मील दूर के दलदली इलाके में जा कर कुछ समय वहां बिताना था और फिर सकुशल वापस लौट कर दिखाना था। सबूत के लिए मुझे दलदल की कुछ गीली मिट्टी साथ ले जाए जा रहे थैले में भर कर वापस लानी थी। बाकी बच्चे वहीं मेरा इंतजार करने वाले थे। उस दलदली इलाके में जाने से सभी डरते थे।

लेकिन ऐन मौके पर मुझे भी उस दलदली इलाके में अकेले जाने में डर लगने लगा। मैंने बाकी बच्चों से इजाजत मांगी कि मेरा प्रिय सुब्रोतो भी मेरे साथ जाएगा। बाकी बच्चे बड़ी मुश्किल से माने पर सुब्रोतो ने दलदली इलाके में जाने से साफ इनकार कर दिया। जब मैंने उसे हमारी मित्रता का वास्ता दे कर भावुक किय तब जा कर वह मेरे साथ चलने के लिए तैयार हुआ।

आखिर उस सूर्य-जले दिन हमने अपना सफर शुरू किया। दो-ढाई मील चल कर अंत में हम दोनों उस इलाके में पहुंच गए। सामने खदकता हुआ दलदल था, जिसमें डरावने बुलबुले फूट रहे थे और अजीब-सी भाप उठ रही थी। दलदल के किनारे से कुछ दूर पहुंच कर हम दोनों बैठ गए। सुब्रोतो लंगड़ा कर चलने की वजह से बेहद थक गया था और हांफ रहा था। लेकिन असली काम तो अभी बाकी थी। सबूत के तौर पर हमें दलदल की थोड़ी गीली मिट्टी साथ लाए थैले में भर कर वापस ले जानी थी।

सुब्रोतो को वहीं छोड़कर मैं दलदल की ओर आगे बढ़ा। जमीन घास, मरे हुए पत्तों और फिसलन भरी काई से ढंकी हुई थी। ठीक से कुछ पता नहीं चल रहा था कि कहां ठोस जमीन खत्म हो गई थी और गहरा दलदल शुरू हो गया था।

अगला कदम जमीन पर रखते ही मैंने पैर को धंसता हुआ महसूस किया। इससे पहले कि मैं संभल पाता, मेरा दूसरा पैर भी दलदल में धंसने लगा था।

मैं सुब्रोतो का नाम ले कर जोर से चिल्लाया। लेकिन जब तक सुब्रोतो लंगड़ाते हुए मेरे पास पहुंचता, मैं कमर तक दलदल में धंस गया था। जैसे नदी में डूबता हुआ आदमी तिनके को भी सहारा समझ कर बचने के लिए व्याकुल हो कर छटपटाता है, उसी तरह मैंने भी सुब्रोतो के अपनी ओर बढ़े हुए हाथ को कस कर अपने हाथों में पकड़ लिया और व्याकुल होकर छटपटाते हुए खुद को किसी तरह दलदल से बाहर निकालना चाहा। लेकिन जब मैंने उसके हाथ के सहारे दलदल से बारह निकलने की कोशिश की तो उसका हाथ खींचने की वजह से सुब्रोतों के पैरों की किनारे पर से पकड़ ढीली हो गई और वह भी मेरे साथ ही दलदल में आ गिरा। देखते ही देखते वह भी दलदल में कमर तक धंस गया। दलदल हर पल हम दोनों को नीचे खींचता जा रहा था।

घबरा कर मैंने इधर-उधर देखा। किनारे पर एक बरगद के पेड़ की शाखाएं दलदल के ऊपर फैली थीं। वहां से कुछ लंबी जटाएं नीचे दलदल की ओर आ रही थीं। मैं पूरा जोर लगा कर ऊपर की ओर उचका। पता नहीं यह मेरे उचकने का असर था या जटाओं को ही मुझ पर दया आ गई थी, नीचे दलदल की ओर लटकी एक मजबूत जटा मेरी हथेलियों की गिरफ्त में आ गई। उस जटा की पकड़ के सहारे मैं किसी तरह धीरे-धीरे खुद को दलदल से बाहर खींचने में कामयाब हो गया। मैं वैसे भी शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। जटा को पकड़ कर मैं बरगद की शाखा पर चढ़ गया। तब तक सुब्रोतो छाती तक दलदल में धंस चुका था।

मुझे पता था, यदि मैंने सुब्रोतो को बचाने के लिए कुछ नहीं किया तो दलदल उसे साबुत निगल जाएगा। लेकिन मेरे हाथ-पैर ठीक विपरीत दिशा में काम कर रहे थे। डर ने मुझे जकड़ रखा था। मेरी देह जल्दी-से-जल्दी उस दलदल की पहुंच से दूर भाग जाना चाहती थी।

मुझे खुद भी नहीं याद, किस तरह मैं पेड़ से उतर कर किनारे पर पहुंचा। जब मुझे होश आया, तब तक सुब्रोतो गले तक दलदल के भीतर जा चुका था। लेकिन उसके हाथ अब भी बाहर थे। मैंने भाग कर पेड़ से लटकती एक लंबी जड़ तोड़ कर उसकी ओर फेंकी। पर शायद तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

हालांकि सुब्रोतो ने जटा अपने हाथों में पकड़ी और मैंने उसे बाहर खींचने की कोशिश भी कि किंतु वह जटा सुब्रोतो के अशक्त हाथों से बार-बार छूट जाती थी। संभवतः वह उस दलदल में बहुत गहराई तक धंस चुका था। शायद उसकी देह में अब अधिक ऊर्जा नहीं बची थी। या फिर कोई अथाह शक्ति तमाम कोशिशों के बावजूद उसे धीरे-धीरे खींचती चली जा रही थी।

देखते ही देखते सुब्रोतो दलदल में गायब होने लगा। मेरी आंखों के सामने ही दलदल ने उसे जिंदा निगल लिया। नीचे जाते समय उसके चेहरे पर एक अजीब कातर भाव था, जैसा भाव मारने के लिए ले जा रहे बकरे के चेहरे पर होता है। एक अजीब-सी आवाज हुई और सुब्रोतो का सिर दलदल के भीतर गायब हो गया। दलदल की सतह पर पहले जहां सुब्रोतो था, वहां कुछ पल बड़े-बड़े बुलबुले फूटते रहे। फिर एक ऐसी मनहूस सघन चुप्पी वहां छा गई जैसे विश्व की आवाजें किसी दानवी शक्ति ने सोख ली हों।

मैं सन्न रह गया। सब मेरी ही गलती थी। वह तो इस दलदली इलाके में आना ही नहीं चाहता था। मैं ही उसे मौत के मुंह में घसीट लाया। मैं अपनी जगह पर जड़ हो गया था।

सुब्रोतो को दलदल में गायब हुए एक-दो मिनट बीत चुके थे। तभी एक अजीब-सी भयावह आवाज हुई—जैसे गले में कुछ फंस जाने पर कोई चिल्लाने की मर्मांतक कोशिश कर रहा हो।

अब मैं आपको जो बताऊंगा, उस पर आप यकीन नहीं करेंगे। मुझे मालूम है, आपको वह असंभव लगेगा। आप कहेंगे वह मेरा भ्रम था। वहम था। पर नहीं। मैं अपने पूरे होशो-हवास में था। यही सच है।

दलदल में पूरा धंस कर गायब हो जाने के लगभग दो मिनट बाद एक अजीब-सी भयावह आवाज के साथ अचानक सुब्रोतो का कीचड़ से सना सिर और दोनों हाथ दलदली मिट्टी से ऊपर निकल आए! जी हां, मेरा सबसे अच्छा मित्र सुब्रोतो जिसे कुछ देर पहले दलदल पूरा का पूरा लील गया था, उसने एक झटके से अपना कीचड़-सना सिर और अपने दोनों हाथ दोबारा दलदल से बाहर निकाल लिए थे। क्या उसने अपनी समस्त संचित ऊर्जा केंद्रित करके जीवित बचे रहने का एक एक अंतिम महाप्रयास किया था? क्या वह मौत के पंजों में छटपटा रहे जीवन की एक अंतिम फड़फड़ाहट थी? या वह कुछ और ही था जो मेरी समझ और कल्पना, दोनों से परे था? ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूं क्योंकि सुब्रोतो का चेहरा उसका अपना चिर-परिचित चेहरा नहीं लग रहा था। यह मेरा वह मित्र नहीं लग रहा था जिसे मैं बरसों से जानता था।

दरअसल सुब्रोतो के कीचड़-सने चेहरे पर एक विकृत मुस्कान फैली थी जिसके भीतर से उसकी दो खुली आंखें किसी अतिरिक्त ऊर्जा से चमक रही थीं। दहकते अंगारों-सी लाल आंखें? मेरी दिशा में फैले उसके दोनों हाथ मदद मांगते-से नहीं लग रहे थे बल्कि मुझे पकड़ कर उस भुतहे दलदल में खींच लेने को आतुर-से लग रहे थे। बल्कि यदि मैं पास होता तो ये हाथ मुझे निश्चित-ही दबोच लेते।

मैं बेहद डर गया और थर-थर कांपने लगा। हालांकि मेरा जहन मुझे कह रहा था कि मैं फिर से पेड़ से तोड़ी गई लंबी जड़ उसकी ओर फेंक कर उसे बचाने का प्रयास करूं, किंतु मेरी पूरी देह इस सोच के विरुद्ध एकजुट हो गई थी। बदहवास-सा मैं पलटा और वहां से सरपट भागा। बहुत दूर जाकर ही मैंने हांफते हुए मुड़ कर देखा। सुब्रोतो का सिर अब दोबारा दलदल में नीचे धंसने लगा था। किंतु उसके दोनों हाथ अब भी मुझे अपनी ओर बुलाते प्रतीत हो रहे थे...।

जब मेरी आंख खुली तो मैं गांव में अपने घर के बिस्तर पर पड़ा था। मेरी मां मेरे सिरहाने बैठी थी। पिता बगल में खड़े थे। मैंने उन्हें सुब्रोतो वाली घटना बता कर रोने लगा। मां ने मुझे सीने से लगा लिया। तब पिता ने बताया कि जब मैं कई घंटों तक नहीं लौटा तो गांव के बच्चे बड़ों को ले कर दलदली इलाके की ओर गए। मैं उन्हें दलदल से कुछ दूर जमीन पर बेहोश पड़ा मिला था। तेज बुखार में तपता हुआ। वे सब मुझे उठा कर गांव ले आए। पिता ने बताया कि तीन दिनों तक नीम-बेहोशी की हालत में बिस्तर पर पड़ा सुब्रोतो का नाम बड़बड़ाता रहा। गांव का ओझा आ कर अपना यत्न कर गया था। उसका कहना था कि उस भुतहा दलदल वाले इलाके में जाने की वजह से मेरे अंदर किसी प्रेत का वास हो गया था। लेकिन अंत में पड़ोसी गांव के वैद्य जी के देसी उपचार से ही तीन दिन के बाद आज मुझे होश आया था।

उस त्रासद घटना के बाद मेरा जीवन पहले जैसा नहीं हो पाया। सुब्रोतो के पिता इस सदमे से अर्द्ध-विक्षिप्त हो गए। वे मुझे अक्सर गांव के दक्षिणी दलदल इलाके की ओर बौराए से भटकते दिखते। मैं इस दुर्घटना के लिए खुद को कभी माफ नहीं कर पाया। मुझे लगता, मैं सुब्रोतो को बचा सकता था। लेकिन मैं कायर निकला। भयभीत मैं उसे दलदल में धंसता हुआ छोड़ कर भाग आया। उसकी वह अंतिम छवि मेरे स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गई थी—दलदली कीचड़ से सना उसका चेहरा... उसकी विकृत मुस्कान... अंगारों-सी दहकती उसकी आंखें... मेरी ओर फैले उसके दोनों हाथ...। चाह कर भी मैं उस मारक छवि से मुक्ति नहीं पा सका।

अक्सर सुब्रोतो मेरे दुःस्वप्नों में आता। मेरी ओर फैले उसके दोनों हाथ मुझे दबोच लेते और अपने साथ उस भुतहा दलदल में खींच ले जाते। सर्दियों की रात में डर की कंपकंपी के कारण मेरी नींद खुल जाती और मैं खुद को पसीने से तरबतर पाता। यह भावनात्मक सदमा मुझे चैन से जीने नहीं दे रहा था। जब मैं आईने में देखता था तो मेरी छवि अपना मुंह मोड़ लेना चाहती थी। मेरा जीवन जैसे उस दलदल का बंधक बन कर रह गया था। मैं अपने दुःस्वप्नों के भीतर फंसा छटपटाता रहता।

मेरी ऐसी हालत देख कर पिता ने मुझे पढ़ने के लिए एक रिश्तेदार के पास कोलकाता भेज दिया। पढ़ाई के बाद मेरी नौकरी दिल्ली में लग गई। मैं फिर कभी गांव नहीं गया। दरअसल मैंने अपना गांव हमेशा के लिए छोड़ दिया था। मुझे दुःस्वप्न आने कम हो गए। लेकिन पूरी तरह बंद नहीं हुए। मैं गांव से दूर चला आया था लेकिन गांव की स्मृतियां मुझसे पूरी तरह दूर नहीं जा सकी थीं।

मैंने शहर की ही एक लड़की से शादी कर ली। फिर मेरे घर बेटे ने जन्म लिया। समय का चक्र अबाध गति से चलता रहा। कई बरस बाद मां-बाबूजी भी चल बसे। पर मैं वापस गांव नहीं गया। उन्हीं दिनों मैंने यह कविता लिखी थी—

''तुम डरते हो
एड्स से
कैंसर से
मृत्यु से
मैं डरता हूं
उन पलों से
जब जीवित होते हुए भी
मेरे भीतर कहीं कुछ
मर जाता है।''

धीरे-धीरे मेरा बेटा दस साल का हो गया। वह भी बहुत सुरीली आवाज में गाना गाता था। उसके गाए गीत सुन कर मुझे सुब्रोतो की बहुत याद आती। कभी-कभी मुझे लगता जैसे सुब्रोतो ने ही मेरे घर बेटे के रूप में जन्म ले लिया है। पता नहीं आप इसके बारे में क्या कहेंगे किंतु धीरे-धीरे मेरी यह धारणा बलवती होती जा रही थी।

अंत में मैंने निर्णय किया कि मैं वापस गांव जाऊंगा। अब मैं चालीस साल का हो गया था। कब तक मैं उस त्रासद घटना का बोझ सलीब-सा अपने कंधों पर ढोता रहता?

गर्मी की छुट्टियों में मैं तीस बरसों का लंबा अंतराल तय करके गांव चला आया। मेरी पत्नी और बेटा भी मेरे साथ थे। दूर से देखा मैंने गांव के अपने घर को, गोया अंतरिक्ष से देखा धरती उर्वर को। मन में एक धुकधुकी भी थी कि मेरी अधेड़ आंखें मेरे बचपन के दृश्यों का सामना अब न जाने कैसे कर पाएंगी। मेरे जहन में बचपन के मधुर दिनों की स्मृतियां लौटने लगीं। लेकिन गांव अब पहचाना भी नहीं जा रहा था। वह जैसे एक बड़े बाजार में तब्दील हो चुका था। अब घरों में घुस आया था बाजार। बाजार में खो गए थे घर। अब पक्की गलियों वाले कस्बेनुमा स्वरूप में बदल चुके मेरे गांव में जगह-जगह कोका-कोला

और पेप्सी बेचने वाली दुकानें खुल गई थीं। दुकानों में वोडाफोन, एयरटेल और आइडिया कनेक्शन के सिम-कार्ड बिकने लगे थे। गांव में डिश टीवी, टाटा स्काई और केबल कनेक्शन पहुंच चुका था। सुनने में आया कि 'वालमार्ट' भी वहां अपना आउटलेट खोलने वाला था। कई और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आउटलेट तो गांव में पहले ही खुल चुके थे। गांव अब बाजार की गिरफ्त में जा चुका था।

गांव के पूरब और पश्चिम में उगा जंगल काट दिया गया था। वहां कारें बनाने वाली एक विदेशी कंपनी ने अपना प्लांट लगा लिया था। इस कंपनी ने हर तरह के हथकंडे अपना कर कई गांव वालों से भी उनकी जमीन खरीद ली थीं। उत्तर में बहती नदी पर बांध बन गया था। इसकी चपेट में आने से हमारा गांव तो बच गया था लेकिन उत्तर में स्थित कई गांव बांध के पानी में डूब गए थे और वहां के लोग विस्थापित हो गए थे।

लेकिन जो बात आपको चौंका देगी, अब वह सुनिए। गांव से दो मील दूर दक्षिण में स्थित दलदल को टनों मिट्टी डाल कर बिल्कुल भर दिया गया था। इस ठोस जमीन पर विदेशी सामान बेचने वाली कई दुकानें खड़ी हो गई थीं। उस पुराने दलदल वाले स्थान पर अब बाजार मौजूद था। बाजार का नया नाम 'दलदल'—मैंने सोचा।

खैर! समय कब का करवट बदल चुका था। फिर मैं अपने दुःस्वप्नों के जाल में अब तक क्यों फंसा हुआ था, वहीं खड़े-खड़े मैं बहुत देर तक यही सब सोचता रहा।

मैं सुब्रोतो की याद में कुछ करना चाहता था। मैंने गांव में जमीन खरीद कर एक अस्पताल बनाने का फैसला किया। मैंने वहीं जमीन खरीद ली जहां पहले दलदल हुआ करता था और अब दुकानें थीं। दुकानें तुड़वा कर वहीं मैंने अपने बचपन के मित्र के नाम पर 'सुब्रोतो मुखर्जी अस्पताल' बनवाया। अब इस अस्पताल में इलाके के बीमार लोगों की अच्छी तरह देखभाल होती है।''

इतनी कहानी सुनाकर बूढ़ा खामोश हो गया। मैंने खिड़की से बाहर देखा। बाहर हवा चुप थी। सामने मैदान में खड़े हुए ऐंठे पेड़ चुप थे। वहीं बेंच के नीचे बैठा रोज अपनी ही दुम से झगड़ने वाला लंगड़ा कुत्ता चुप था। एक सिमसिमी खामोशी चू-चू कर सड़क की छाती पर बिछती जा रही थी। और सड़क चुप्पी की केंचुल उतार फेंकने के लिए कसमसा रही थी।

आखिर सघन चुप्पी को रौंदते हुए बूढ़े की भारी आवाज फिर गूंजी, ''अपने डर से कभी मत डरो। डर को देख कर अपनी आंखें कभी मत मूंदो क्योंकि जो डर गया, समझो वह जीते-जी मर गया। आपके मामले में वह डर क्या है, मुझे नहीं पता। पर मेरे मामले में वह डर दलदल था।''

द्वारा श्री एच.बी. सिन्हा, 5174, श्यामलाल बिल्डिंग, बसंत रोड (निकट पहाड़गंज), नई दिल्ली-110055

डोगरी कहानी

रिश्ते

मूल/अनुवाद : कृष्ण शर्मा

विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित कृष्ण शर्मा के डोगरी भाषा में पांच लघु कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में डोगरी-हिंदी भाषा में लेखों का प्रकाशन।

कमला का चित्त अशांत था। अभी-अभी वह अपनी दस वर्षीया बेटी गुड़िया को दो थप्पड़ लगा चुकी थी, लेकिन अब वह पश्चाताप की आग में जल रही थी।

उधर, गुड़िया आंगन की दीवार से सिर टिकाए अभी भी सुबक-सुबक कर रो रही थी। हालांकि, अब उसके रोने का स्वर काफी धीमा पड़ चुका था।

वैसे, बेचारी गुड़िया से कोई बहुत बड़ी भूल नहीं हुई थी। केवल कांच का एक गिलास उसके हाथ से छूट कर धरती पर आ गिरा था। गिरते ही चूर-चूर हो कर गिलास के टुकड़े यहां-वहां बिखर गए थे। यह सब कुछ हुआ जब चाय पीने के उपरांत गुड़िया खाली गिलास को धो-पौंछ कर किचन में रखने जा रही थी। जाने कैसे सहसा गिलास उसके हाथों से छूट कर नीचे जा गिरा था। इस बात पर कमला के साथ-साथ गुड़िया भी हैरान थी।

गिलास टूटने की आवाज सुन कर कमला की भाभी फौरन अपने कमरे से निकल कर बाहर आ गई थी। गिलास के बिखरे टुकड़े को देख उसका गुस्सा आसमान छूने लगा था। खा जाने वाली निगाहों से उस अबोध बालिका को घूरते हुए उसने चिल्ला कर कहा—''अरी मुंहजली, तुम्हारे हाथ क्या टूटे हुए हैं जो कभी कुछ गिरा देती हो और कभी कुछ...?''

क्रोधित भाभी की ये बातें निकट खड़ी कमला ने सुनीं तो उसे एक झटका-सा लगा। उसे कतई उम्मीद नहीं थी कि तीन रुपए की एक तुच्छ वस्तु की खातिर भाभी इस प्रकार से खरी-खोटी सुना देगी। उसके शब्द तीर बन कर कमला के दिल के आर-पार हो रहे थे।

प्रतिउत्तर में कमला अपनी बड़ी भाभी से बहुत कुछ कहना चाहती थी, लेकिन कुछ न कह सकती और चुप की चुप बनी खड़ी रही। हां, अपने दबे हुए क्रोध को उसने अपनी मासूम बेटी के गालों पर तड़ातड़ दो थप्पड़ लगा कर निकाल दिया था। थप्पड़ तो वह लगा बैठी थी, लेकिन अब उसे अपनी इस हरकत पर पछतावा हो रहा था।

कमला के पति का देहांत सात वर्ष पूर्व कैंसर रोग से हुआ था तो उसकी बसी-बसाई दुनिया उजड़ गई थी। वह जैसे अर्श से फर्श पर आ गिरी थी। पति यदि कहीं सरकारी नौकरी में होते तो कमला को पैंशन आदि मिल जाती, लेकिन उसके पति का अपना एक छोटा-मोटा व्यवसाय था। पति की मेहनत की कमाई से पति-पत्नी और उनकी दो बेटियों का परिवार आराम से चल रहा था। बदकिस्मती से उसके पति को कैंसर रोग ने ग्रस लिया और ईलाज आदि पर घर की लगभग सारी पूंजी जाती रही।

मजबूरी में कमला को घर चलाने और अपनी दोनों बेटियों को पढ़ाने-लिखाने के लिए लोगों के वस्त्र सी कर गुजारा करना पड़ रहा था। आज, एक संघर्षमय जीवन जीते हुए भी वह संतुष्ट थी और अपनी बेटियों को यत्नपूर्वक पढ़ा रही थी और यह उसके लिए प्रसन्नता की बात थी कि उसकी दोनों बेटियां पढ़ने-लिखने में खूब होशियार होने के साथ-साथ काफी समझदार भी थीं।

पति की मृत्यु के पश्चात अपने घर से मात्र तीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित अपने मायके में कमला मुश्किल से दो या तीन बार ही गई थी। हर बार दो दिनों से अधिक वह वहां कभी नहीं रही थी। माता-पिता का देहांत हो चुका था। दूसरा, उसके इकलौते बड़े भाई का काम-रोजगार इतना अच्छा नहीं चल रहा था। ऊपर से भाई की पत्नी बड़े तेज स्वभाव की थी और हर समय गुस्से में रहती थी। यही सब कारण थे कि कमला ने मायके जाने का ख्याल ही छोड़ रखा था।

इस वर्ष जब स्कूलों में सर्दियों की छुट्टियां हुईं तो कमला की बेटियों ने ननिहाल जाने की जिद्द पकड़ ली। कमला जाना तो नहीं चाहती थी, लेकिन उसे ख्याल आया कि उसकी भाभी अपने बच्चों सहित गर्मी की छुट्टियों में हर वर्ष उसके घर आ धमकती है, अतः कुछ दिनों के लिए यदि वह भी अपनी बेटियों के

साथ मायके के घर में भाई के पास रह लेगी तो भला क्या हर्ज है?

कमला को आशा थी कि उसके भाई-भाभी को उसका आना अच्छा लगेगा। स्वयं तंगी और अभाव वाला जीवन जीते हुए भी कमला ने हर बार घर आई भाभी और उसके बच्चों की खूब खातिर-सेवा की थी। अपने बच्चों से अधिक उनके दुःख-सुख का ध्यान रखा था।

अभी कुछ महीने पहले की ही बात है कि उसकी भाभी अपने बेटे-बेटी के साथ छुट्टियों में कमला के घर आई हुई थी। उन्हीं दिनों खेल-खेल में एक दिन कमला के महाशैतान भतीजे ने पड़ोसियों की बकरी को कमला की बगीची में छोड़ दिया था और उस बकरी ने चंद मिनटों में ही वहां उगे फूलों और सब्जियों का सफाया कर डाला था। ये फूल और सब्जियां कमला ने घर में बेकार पड़ी जमीन पर बड़ी मेहनत से उगाई थीं, ताकि घर में इस्तेमाल के अलावा इन्हें बाजार में बेच कर थोड़ी-बहुत आमदनी की जा सके। बगीची की हालत देख कर कमला का मन रो उठा था, लेकिन एक भी शब्द उसने मुंह से नहीं निकाला था।

उधर झूठे अहं की मारी ओछे स्वभाव वाली उसकी भाभी ने एक बार भी अपने शैतान बेटे को न तो डांटा था और न ही समझाया था। कमला को स्मरण हुआ कि ठीक उसके अगले दिन उसकी भतीजी ने सरसों के तेल की पूरी की पूरी बोतल ही गिरा कर उसका अच्छा-खासा नुकसान कर दिया था। बेचारी कमला कई दिनों तक फर्श पर पड़े तेल के धब्बे ही साफ करती रही थी। वह दुखी थी कि इसी तेल से उसने अपनी रसोई में पूरा महीना भर काम चलाना था, लेकिन...। दुःख, पीड़ा और क्लेश को वह अंदर ही अंदर पीती रही थी। अपने माथे पर उसने एक भी बल नहीं पड़ने दिया था। अजीब बात थी कि अपने बच्चों की इन हरकतों पर भाभी ने एक बार भी अफसोस प्रकट नहीं किया था। उल्टे भाभी हींऽ-हीऽ करके हंसते हुए अपने बच्चों से कहती फिरी थी—''बच्चो, खूब तोड़-फोड़ करो... तुम लोगों ने कौन रोज़-रोज़ अपनी बुआ के घर आना है...''

बेचारी कमला को अपनी भाभी की इस ओछी और असमय की हंसी में न चाहते हुए भी साथ निभाना पड़ा था। कितना अंतर था कमला और उसकी भाभी की सोच में।

लेकिन आज, आज कभी-कभार मायके आने वाली कमला मन ही मन सुलग रही थी। उसकी बेटी के हाथों एक मामूली गिलास टूट गया तो भाभी कैसे आग-बबूला हो उठी थी। परसों, दूसरी बेटी के हाथों जरा-सी स्याही फर्श पर गिर गई थी तो तब भी भाभी गुस्से में उछलने लगी थी। लेकिन, ऐसे हर मौके पर चाहते हुए भी कमला अपनी बेटियों को कुछ इस तरह से नहीं कह पाई—''कोई बात नहीं लड़कियो, नुकसान हो गया तो क्या हुआ, तुम लोगों ने कौन-सा रोज-रोज मामा के घर आना है...''

कमला तो उस वक्त भी कुछ नहीं बोल पाई थी जब उसकी बेटियों ने खाना खाने के उपरांत दो रोटियों के उपरांत तीसरी रोटी मांगी थी तो भाभी ने हर बार उन्हें घूर कर देखा था... उस वक्त भी कमला कुछ न बोल पाई थी जब भाभी ने उसकी दोनों बेटियों से चोरी अपने बच्चों को मिठाई दे कर कहा था कि वे छत पर जा कर सबसे छिपा कर मिठाई खा लें ऐसे हर अवसर पर कमला की बेटियां एक-दूसरे का मुंह ताकती रह जाती थीं।

सामने दीवार पर फ्रेम जड़ी अपने स्वर्गीय माता-पिता की तस्वीर को लगातार निहारती विचारमग्न कमला धीरे से उठी और गुड़िया की ओर बढ़ी। धीमे-धीमे सुबक रही गुड़िया को कमला ने अपनी ओर खींचा और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

मन ही कमला निश्चय कर चुकी थी कि कल सुबह वह अपनी बेटियों के साथ अपने घर लौट जाएगी।

152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

इतिहास

अमरेंद्र खटुआ

श्री अमरेंद्र खटुआ आजकल अर्जेंटीना, उरुग्वे और पराग्वे के भारत के राजदूत के रूप में कार्यरत हैं। वह हिंदी, उड़िया तथा अंग्रेजी में लेखन करते हैं। उन्हें उड़िया साहित्य में योगदान के लिए राजीव गांधी सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

हथेली पर रख लिया
खून से सराबोर एक इतिहास का
सूर्योदय

लथपथ हो जमीन पर आ गिरी
पक्षियों की सफेद चादर
हवा रोने लगी

मालूम था, पूरी दुनिया में तुम ऐसे
अश्वारोहण का आवेग फैलाने पर
विधवा होती रहती है प्रतीक्षारत नारीमूर्ति

फिर भी गोलियों की आवाज से
प्रतिध्वनित होंगे
बूढ़े बरगद की शाखाओं से
उड़कर जाते चमगादड़ों और
कबूतरों के सामान्य चित्र

हथेली पर रखे तुमने
स्वाधीन परंपरा के कुछ अंगारे
और आंके दो घाव, पुनः विद्रोह के

क्या विद्रोह धर्म है
अंधविश्वास है
या यों ही तड़के उठकर
सांझ को ही सो जाने वाले गांव के
छप्पर पर
शून्यता का करवट बदलना

उसके बाद मुट्ठी बांधे
यों ही बैठा रहता है इनसान
हथेली पसारकर भीख मांगेगा
या हथेली को मुट्ठी बनाकर
आकाश को लाल और
रक्तरंजित कर देगा।

सुख-दुःख, संबंध और मृत्यु

याद रखो
जो सुख का है वह सबका है
जो दुःख का है सिर्फ अपना है

सुख का प्रारंभ नहीं होता और
दुःख का अंत
जो प्रेम में, प्रार्थना में
विह्वल करता है, वह अधिकतर
सुख-दुःख की सीमा-रेखा के ठीक
बीचोबीच आत्मिक युद्ध-विराम है

जो उड़ा देता है
सजाकर रखे ऐसे
दृश्य प्रति दृश्य के असहज दिगंत से
आनुमानिक दुःख के
सैकड़ों सफेद पक्षी और एक पतंग
सम्मोहन से

अब संबंधों की दिशा-निर्धारण की खूंटी
के उस पार
तुम हो बीतता रूटीन मेरे जीवन का
इस तरह राह दिखाते
खुद-ब-खुद

हर चीज का समय होता है
भूख का, हड्डी के भीतर
जलती मोमबत्ती का
पेट में जगती सघन सांसारिकता का

समय होता है जीवनयापन का, रूटीन का,
रमणीय बनाए रखे पुरुसता को

और अनुपम सुख-दुःख के विश्वयुद्ध के
बाद
शायद मृत्यु का समय भी होता है।

भारतीय राजदूतावास, ब्यूनस आयर्स, अर्जेंटीना

खुली पुस्तक

अलेक्सांद्रा जिनोव्येवा

हिंदी अनुवादक और विदेशी भाषाओं की शिक्षिका के रूप में कार्य कर रहीं रूसी मूल की अलेक्सांद्रा जिनोव्येवा की भारतीय धर्म, दर्शन, कला और भाषाओं में विशेष रुचि है। हिंदी में कविता लिखने वाली अलेक्सांद्रा ने भारत एवं भारतीय भाषाओं से संबंधित विषयों पर आयोजित संगोष्ठियों में अपने आलेख भी प्रस्तुत किए हैं।

एक खुली पुस्तक बन जाना चाहती हूं
अपने हृदय के गहरे आंगन खोलूं
इस विश्व के लिए नहीं
आपके लिए ही
बन जाइए मेरे दृष्टा और भोक्ता
देवता और सृष्टिकर्ता
प्रकाश और छाया
आज मैंने अपने मन का राजा पाया
आपके ही रूप में।

मैं आपका दर्पण हूं

इस धरती पर दिव्य प्रेम की लहरों में तैरना
आपकी एक दृष्टि से संसार के दुःखों को
भूल जाना
संदेह और भय से मुक्त
मैं आपकी आंखों में
अपने प्रश्नों के उत्तर ढूंढ रही हूं
इस श्रेष्ठ सुंदरता में
जो पहले मैंने देखी ही नहीं
कौन हैं आप? मेरे कवि
तब मैं हूं आपकी कविता
या मेरे चित्रकार
तब मैं हूं आपका चित्र
या मेरे देवता हैं
तो मैं हूं आपका मंदिर
आप मेरे दर्पण हैं
और मैं हूं आपका दर्पण।

झूठ नहीं बोलता दर्पण

आप मेरे दर्पण हैं
मैं ऐसा सोचती थी
आपने कहा दर्पण
झूठ बोलता ही नहीं
झूठ बोल सकता है वह
तभी जब पारदर्शी
वह हो नहीं
जब इसकी सतह पर
दरार, धब्बे और धूलि हो
आपके लिए आसान है
अपने को बस रंगमंच पर
एक अभिनेता मानना
'कुछ नित्य है नहीं'
'संसार एक माया है'
'तो होता है मुझसे'
'संयोग से होता है'
'बेहोश', 'अचानक' आपके सर्वप्रिय शब्द हैं
पर आप हैं कौन? कहां हैं आप
और मैं कौन हूं आपके लिए
मैं तो हूं ही नहीं
मैं केवल मूर्ति हूं
एक सुंदर प्रतिमा
जिसकी उपासना में
आप अपने आप से मिलने का
प्रयत्न करते हैं
पर मिलते ही नहीं।

117042, Bulvar Admirala
Ushakova, 18, 114

पत्थरों के ढेर पर...

डॉ. मालिनी गौतम

गुजरात उच्च शिक्षा विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत डॉ. मालिनी गौतम का एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। कई पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

पत्थरों के ढेर पर पलता है बचपन
रोटियों की आस में जलता है बचपन

होटलों में चाय के कप खड़खड़ाता
चंद इच्छाओं तले गलता है बचपन

अपने भाई और बहन की हर खुशी का
बोझ कांधे पर लिए चलता है बचपन

है न आंखों में सुनहरा स्वप्न कोई
एक भारी बोझ-सा खलता है बचपन

अपने बचपन से निरंतर यूं बिछड़कर
मन मसोसे हाथ निज मलता है बचपन

कितना भोला, कितना प्यारा है सभी का
कब किसी इनसान को छलता है बचपन

कारखानों और मिलों में काम करके
वक्त के पहले ही लो ढलता है बचपन।

उम्मीदों के चरागों में...

पड़े पैरों में हैं छाले मगर मैं फिर भी चलता हूं
कभी सहरा कभी दरिया से अक्सर मैं गुजरता हूं

नहीं गहराई नदियों की, नहीं सागर का खारापन
बुझाने प्यास औरों की मैं झरना बन के बहता हूं

दिलों में सबके जिंदा हूं, मिटा कर अपनी हस्ती को
कभी पायल, कभी बिंदिया, कभी काजल में बसता हूं

जहां देखों वहा हर शाख पे गिद्धों का डेरा है
नुचा कर देह अपनी रोज मैं खामोश मरता हूं

नई राहें, नए साथी, नए सपने हैं आंखों में
खुले आकाश में यारो उड़ानें रोज भरता हूं

कभी तो इन अंधेरों से किरन आशा की फूटेगी
उम्मीदों के चरागों में पतंगे सा मैं जलता हूं।

574, मंगल ज्योत सोसायटी,
संतरामपुर-389260 (गुजरात)

मुक्तक

हरीलाल 'मिलन'

कवि कथाकार हरीलाल 'मिलन' की चार पुस्कें प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित। सरकारी सेवा में कार्यरत।

किताबें

कभी सुख, कभी दुःख के किस्से कहेंगी
गजल, गीत, दोहे की नदियां बहेंगी
मुझे याद करता रहेगा जमाना
मेरे बाद मेरी किताबें रहेंगी।

गीत

सत्य, शिव और सुंदर की संपृक्ति है
शब्द औ' अर्थ की चेतना-शक्ति है
गीत आंसू भी है, गीत मुस्कान भी
गीत संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है।

हम कवि हैं

कितनों के कल्पना-दुर्ग ढह जाते हैं
कितने भीतर ही भीतर रह जाते हैं
हम कवि हैं, कह लेते हैं पीड़ा अपनी
लोग कहां अपनी पीड़ा कह पाते हैं।

कहां रोएं?

मुसाफिर हैं, थके भी हैं, कहां जाएं, कहां सोएं
लिए हैं बोझ यादों का सफर में कब तलक ढोएं
हमारे आंसुओं में भी बुराई देखते हैं वो
स्मरण में ये नहीं आता कि हम जाकर कहां रोएं।

वक्त जिंदा रखेगा

कभी घर तो कभी वनवास लिख रहा होगा
कभी पतझर कभी मधुमास लिख रहा होगा
वक्त जिंदा रखेगा प्यार की किताबों में
कोई तेरा-मेरा इतिहास लिख रहा होगा।

कुदरत

यहां भगवान ने भी कष्ट उठाया है मिलन
एक तूफान अयोध्या में भी आया है मिलन
देखते-देखते धरती में समाई सीता
राम को भी यहां कुदरत ने रुलाया है मिलन।

300-ए/2 (प्लाट सं. 16-बी), दुर्गावती सदन,
हनुमंत नगर, नौबस्ता, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

कहीं हद से गुजर जाए...

अशोक आलोक

गजलकार अशोक आलोक के दो गजल संग्रह प्रकाशित। कई पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

न जाने क्यों मुझे अच्छी लगी आवारगी उसकी
मेरी तन्हाइयों में झांकती है दिल्लगी उसकी

अनोखी चाहतें दिल में हमेशा मुस्कुराती हैं
कहीं हद से गुजर जाए नहीं दीवानगी उसकी

नया पैगाम लिखती है सलीके से मुहब्बत का
नए एहसास का मंजर है तन्हा जिंदगी उसकी

कभी झांका किया एक पल अगर दिल के दरीचे से
निगाहों में समा जाती गजब की सादगी उसकी

नया मौसम संवर जाता है दिल के आशियाने में
हवाओं के फलक पर तैरती है ताजगी उसकी।

दिल के आंगन में...

शोख मौसम में कोई टूट के रोया होगा
जख्म गहरा ही सही अश्क से धोया होगा

रात लिपटी यूं नई चांदनी की बाहों में
दिल के आंगन में हंसी चांद भी सोया होगा

मौन आंखों में कई ख्वाब की कलियां लेकर
आदमी तन्हाइयां भी उम्र भर ढोया होगा

कोई मंजिल भी कहां अजनबी सी राहों में
वक्त ऐसे ही कोई बारहा खोया होगा

जिस्म घायल है मगर जीत का जज्बा बाकी
चाहे कांटे ही कोई राह में बोया होगा।

रिश्तों की भीड़ में...

यादों की सरजमीं पर ताजा गुलाब में
मिलता सुकून अक्सर ऐसे ही ख्वाब में

टूटा जो दिल का शीशा क्या सच बयां करें
अच्छे भले भी चेहरे आए नकाब में

दीवार खड़ी है यूं सांसों के दरमियां
अक्सर तमाम लम्हे गुजरे अजाब में

रिश्तों की भीड़ में जब अपनी खबर नहीं
क्या फर्क करे कोई अच्छी खराब में

हर दिल के आईने में जख्मों का सिलसिला
पत्थर का आदमी है अपने शबाब में।

द्वारा इलाहाबाद बैंक, नीलम रोड,
मुंगेर-811201 (बिहार)

हाइकु

चक्रधर शुक्ल

दोहा, गजल, व्यंग्य, बाल गीत विधा में लेखन करने वाले चक्रधर शुक्ल की एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। फिलहाल स्वतंत्र लेखन।

(1)

रोटियां बिकी
बाढ़ की विभीषिका
सामने दिखी।

(2)

भूखे रहना
उनकी मजबूरी
फसलें नष्ट।

(3)

प्रकृति की मार
उन पे ऐसी पड़ी
खटिया खड़ी।

(4)

भूख मांगती
रोटी, गुड़, चबेना
हाथ पसारे।

(5)

अदालत में
सफाई देता रहा
गुनहगार।

(6)

कन्या पूजन
फिर कोख में हत्या
दोहरी बातें।

(7)

सामने आया
आदमी का चरित्र
स्थिति विचित्र।

(8)

ये कैसी बला
पानी का जलजला
चारों तरफ।

(9)

जल प्रलय
ऐसे ही आती होगी
दिखाई दिया।

(10)

मायाजाल से
बाहर तो निकलो
खुली हवा में।

एल.आई.जी.-1, सिंगल स्टोरी, बर्रा-6,
कानपुर-208027 (उत्तर प्रदेश)

किनारों को समंदर काटता है

डॉ. कृष्ण कुमार सिंह ‘मयंक’

डॉ. कृष्ण कुमार सिंह ‘मयंक’ की चौबीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कई पुरस्कारों से सम्मानित।

जिसे सच्चाई का डर काटता है
वो मेरी बात अक्सर काटता है

मैं तनहा हूं खुदारा आ भी जाओ
अकेले में मुझे घर काटता है

समंदर के किनारों पर न बैठो
किनारों को समंदर काटता है

अगर मतलब निकलता हो तो यारो
फलक धरती के चक्कर काटता है

ये पूछो दुश्मने-अमनों अमा से
कबूतर के कोई पर काटता है

जिन्हें चरखे ने बख्शी हुक्मरानी
उन्हीं को आज खद्दर काटता है

‘मयंक’ इनसान बैठा आज जिस पर
उसी डाली क्यूं कर काटता है।

बाकी लोग हैं सूरत से गऊ

डॉ. कृष्ण कुमार सिंह 'मयंक'

नेक बंदे वो, जो हैं फितरत से गऊ
जबकि बाकी लोग हैं सूरत से गऊ

पालते थे पहले इज्जत से गऊ
अब तो रखते हैं जरूरत से गऊ

जिनको कुत्ते पालना आसान है
देखते हैं वो ही नफरत से गऊ

इसका रुतबा है यहां पर मां के बाद
पूजी जाती है अकीदत से गऊ

पहले मिल जाती थी बछिया दान में
इन दिनों मिलती है कीमत से गऊ

दूध मिलने तक ही सेवा होती है
देखते हैं फिर हिकारत से गऊ

यों अगर निर्यात होगा तो 'मयंक'
खत्म हो जाएगी भारत से गऊ।

**गजल-5/597, विकास खंड,
गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश)**

लौट गए घन बिन बरसे

रजनी मोरवाल

कवयित्री, गीतकार और कहानीकार रजनी मोरवाल के अब तक दो गीत-संग्रह तथा एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। राष्ट्रीय स्तर की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित और कई पुरस्कारों से सम्मानित।

बिन बरसे ही लौट गए घन
मन को नहीं छुआ

प्यासी धरती ने अंखियों की
सूजन को सहलाया
पेड़ों ने धानी चून को
यह कहकर बहलाया
प्रियतम से बिछुड़ी सजनी संग
अक्सर यही हुआ

रात कटी फिर तन्हाई के
आंगन अलख जागते
इंतजार के सही मायने
खुद को ही समझाते
चांद, देह में अगन लगाकर
हंसता आज मुआ

रिक्त हवाएं तपती छत को
संदेशा दे आई
धीर धरो आएंगी फिर से
बूंदों की पहुंनाई
खेतों में बैठा हलकू
करता है रोज दुआ।

प्रीति के कथानक

हिचकियां आने लगी मुझको अचानक

रात का पहला पहर
मैं हूं अकेली
छेड़ दी तुमने भला
यह क्या पहेली

याद मुझको कर रहे हो तुम यकायक

एक छवि मानस-पटल
पर मुसकुराई
रात रानी सेज पर
उनमत्त छाई

प्रीति ये रचने लगी सारे कथानक

नाम मेरा क्या किसी ने
है पुकारा
खिड़कियों से ये
किया किसने इशारा

वक्त बनकर रह गया है मूक याचक।

**सी-204, संगाथ प्लेटीना, साबरमती-गांधीनगर
हाईवे, मोटेरा, अहमदाबाद-380005 (गुजरात)**

गुल खिलाने लगी...

डॉ. अशोक 'गुलशन'

गीतकार, कहानीकार डॉ. अशोक 'गुलशन' की 15 पुस्तकें प्रकाशित। 13 पुरस्कारों में संपादन सहयोग। कवि-सम्मेलनों, मुशायरों में हिस्सेदारी सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित।

जब से आने लगी आप की चिट्ठियां
मुझको भाने लगीं आप की चिट्ठियां

कुछ न दी जब खबर लौटकर आने की
दिल दुखाने लगीं आप की चिट्ठियां

जब भी रुसवाइयों ने दिया गम मुझे
गीत गाने लगीं आप की चिट्ठियां

चूमकर मैंने इतना तो कर ही दिया
मुस्कुराने लगीं आप की चिट्ठियां

फाड़कर जब इसे फेंकने मैं चला
तब मनाने लगीं आप की चिट्ठियां

दिल के 'गुलशन' में जब फूल हंसने लगे
गुल खिलाने लगीं आप की चिट्ठियां।

मुक्तक

कब तक तेरे आने की अब और प्रतीक्षा करता मैं
कब तक यादों से तेरी अब खाली झोली भरता मैं
इसीलिए आंसू से मैंने तन अपना नहलाया है
बारिश के मौसम में तन्हा रह करके क्या करता मैं।

अकिंचन को कभी कंचन
बहुत मुश्किल से मिलता है
सभी मां-बाप को श्रवण
बहुत मुश्किल से मिलता है।

सभी सुख-दुःख सहन करते
हमेशा साथ रह करके
हमारे गांव में दुश्मन
बहुत मुश्किल से मिलता है।

रूप रंग का रस और गंध का
गीत मैंने लिखा एक दो बंद का
तुमने जबसे कहा मुझको अपना सनम
हो गया दिल कबूतर बिना पंख का।

गगन के पंख पर मैंने तुम्हारा नाम लिख डाला
धरा के अंग पर मैंने तुम्हारा नाम लिख डाला

काल के पृष्ठ पर अंकित सभी अक्षर मिटा करके
सुमन के गंध पर मैंने तुम्हारा नाम लिख डाला।

तुम्हारी याद के झोंके से घर-आंगन महकता है
तुम्हारे जिस्म की खुशबू से चंदन-वन महकता है
तुम्हारा जब हुआ स्पर्श पावन हो गया तन-मन
तुम्हारी सांस से अब तक मेरा गुलशन महकता है।

उत्तरी कानूनगोपुरा, बहराइच-271801 (उत्तर प्रदेश)

मुहब्बत गीत वो है...

अशोक 'अंजुम'

गीतकार गजलकार अशोक अंजुम की 41 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। त्रैमासिक पत्रिका 'अभिनव प्रयास' में संपादक।

ये बच्चा क्या ही बच्चा है खुदा का नूर पाया है
जो गुल्लक तोड़कर अपनी दवाई मां की लाया है

गलत करने चले जब भी तभी अंदर कोई बोला
सदा जिसने भी ये सुन ली कदम पीछे हटाया है

मिले हैं खूब व्यौपारी, ईमानों के वो सौदागर
मेरी गुरबत ने मुझको हर कदम पे आजमाया है

अंधेरों में दिए न्यौते हमें अक्सर बुलंदी से
नफा-नुकसान कब देखा उजालों से निभाया है

मुसाफिर वो कभी मंजिल तलक पहुंचे बहुत मुश्किल
जरा-सी धूप से जिनका इरादा डगमगाया है

उसूलों की तरफदारी में गुजरी है उमर सारी
हवाओं ने तो की कोशिश दिया बुझने न पाया है

कोई गाता है छुप-छुप के कोई खुलकर सुनता है
मुहब्बत गीत वो है जिसको सबने गुनगुनाया है

परिंदे उड़ गए आकाश में ऊंचे, बहुत ऊंचे
शिकारी आज फिर जंगल से खाली लौट आया है

सफर में धूप कितनी हो मगर रहती है ठंडक-सी
सफर में साथ मेरे मां के आशीषों का साया है।

गली-2, चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद), क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202 002 (उत्तर प्रदेश)

तब मेरे पास कोई उत्तर नहीं था

अखिलेश आर्येंदु

कई पत्र-पत्रिकाओं में लेखन कर रहे अखिलेश आर्येंदु को पत्रकारिता का भी अनुभव है। चार पुस्तकें प्रकाशित। स्वतंत्र लेखन।

प्रातः जब धूप
छत व दीवार पर उगी
बहुत भोली लगी
प्रातः जब धूप
कुएं के मुंडेरों पर उगी
बहुत पवित्र लगी
प्रातः जब धूप
खेतों में उतरी
हंसती हुई लगी
प्रातः जब धूप
बाग में टहलती दिखी
बहुत सच्ची लगी
धूप सुबह की हो
या शाम की
हमारे हर पल को संवारती है
मैं सहेजना चाहता हूं
तिनका-तिनका धूप
और बनना चाहता एक सूरज
बहुत कोशिशों के बाद भी
धूप को सहेज न सका
धूप तो मुट्ठियों में
आने को तैयार थी
और न तो मन की झोलियों में ही
न तो चेतना के संदूक में
भरना चाहती थी
और न तो नए खरीदे गए बोरे में ही
फिर मैंने फैलाया
अपना हृदय
इस कामना के साथ कि
धूप हृदय में बस जाएगी
जिंदगी संवर जाएगी
तभी
धूप ने एक प्रश्न किया
तुम्हारा हृदय क्या इतना पावन
उदार और निःस्वार्थपूर्ण है
कि वहां सुरक्षित रह
तुम्हें सूरज बना सकूं
धूप के
इस प्रश्न का मेरे पास
कोई उत्तर नहीं था
क्योंकि अंधेरा मेरे साथ था।

अंतरदीप के बिना दीपावली

जगमगाते दीपावली के
दीपों के मध्य
हम एक ऐसा दीप जलाना
अक्सर भूल जाते हैं
जो जीवन/समाज में
छाए तमिष को
छिन्न-भिन्न कर दे
हम भूल जाते हैं
उन मूल्यों को
जिससे जीवन का दीप
अनवरत् जलता रहे
जगमगाती मोमबत्तियों की कतारो
या
बिजली के महंगे झालरों को सजाकर
हर बार
दीपावली की सार्थकता
समझ लेते हैं
यह भूल है
या
परंपरा का निर्वाह
जो भी हो
दीपावली की अर्थवत्ता से
हम बहुत दूर होते जा रहे हैं
अंतर-सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन
अपसंस्कृति के बम/पटाखों
के सम्मुख
बौने हो गए हैं
इसलिए
कृत्रिमता को ही
वास्तविकता समझ बैठे हैं
कृत्रिमता से नहीं जलाए जा सकते
'अंतरदीप'
इसलिए
हर क्षण
अंतर-प्रकाश के असंख्य प्रश्न
हमारे सम्मुख मुट्ठियां भींचें
खड़े रहते हैं
और हम
दीपावली पर
हर बार यही करते हैं
अंतरदीप के बिना
दीपावली बनाने का पाखंड।

ए-11, त्यागी विहार, नांगलोई, दिल्ली-110041

मेरे देश अब तो जाग

डॉ. कैलाश निगम

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. कैलाश निगम की दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता, गीत और गजल के लेखन में विशेष रूप से सक्रिय।

द्वेष, हिंसा, घृणा की चारों तरफ है आग
मेरे देश अब तो जाग

विश्व-विजयी हिंद था, विश्वास भुजबल में
सिद्धियों के थे अमित वरदान तप-बल में
भूमि यह सद्धर्म के आलोक पुरुषों की
ज्योति-पथ का था हुआ संधान ऋषिकुल में

छोड़ वीणा, बज रहा क्यों वहीं हिंसक राग
मेरे देश अब तो जाग

कर्म का उद्देश्य सिमटा, सिर्फ संचय में
लोग डूबे हैं अहर्निशि स्वार्थ की लय में
लोभ ने ऐसा बदल डाला चरित्रों को
मौन साधे हैं निकष गहरे अनिश्चय में

खो रहीं संवेदनाएं, मिट रहा अनुराग
मेरे देश अब तो जाग

सरहदों पर युद्ध, भीतर पल रहा आतंक
घूमते हैं रक्तपातीदल यहां निःशंक
आस्था के कोष में बाकी नहीं कुछ भी
सोचते हित स्वयं का, सम्राट हो या रंक

छीनने को बढ़े आतुर दूसरों का भाग
मेरे देश अब तो जाग

यह समय है, फिर सुनहरे पृष्ठ अपने खोल
कृष्ण की गीता तथागत के सुना फिर बोल
प्रेम, समता, न्याय की पावन त्रिवेणी का
एक अमृततत्व हर धमनी-शिरा में घोल

मौर्य का हो शौर्य तो चाणक्य का वैराग
मेरे देश अब तो जाग!

वो बोले

जो धार्मिक थे वो बोले, शरीर का अपराध
मगर ये सिद्ध हुआ, सब था तीर का अपराध

उचित बताया गया जा के गिरना सागर में
किसी की प्यास बुझाना है नीर का अपराध

वो आत्महत्या न करती तो और क्या करती
किसी से प्रेम जताना था हीर का अपराध

गई थी जानकी रावण को दक्षिणा देने
मैं उसको कैसे बताऊं लकीर का अपराध

हवस जो चीरहरण की न हो सकी पूरी
तो कौरवों ने बताया, है चीर का अपराध

विचित्रवीर ने कुंडल-कवच का दान किया
गंवाए प्राण, ये था दानवीर का अपराध।

ये प्रेमदूत है, इसको घृणा से क्या 'कैलाश'
ये रक्तपात नहीं है, अबीर का अपराध

**4/522, विवेक खंड-4, गोमती नगर,
लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश)**

पुस्तक-समीक्षा

बाल गीत एक नए अंदाज में

विमला पांडे

कविता, कहानी, गीत एवं गजल लेखन में सक्रिय विमला पांडे के विभिन्न समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में लघु लेख प्रकाशित।

मानव जीवन प्रकृति के अनुकूल ही सतरंगी है। परिवार में नए सदस्य के जन्म लेने पर जो खुशी खासकर माता-पिता को होती है उससे कहीं अधिक उसके दादी-दादा व परिवार के अन्य बुजुर्गों को होती है।

इसी वात्सल्य रस में गीतकार प्रदीप जैन कुछ इस तरह डूब गए कि उन्होंने बच्चों के प्रिय चिड़िया रानी, बिल्ली मौसी, घोड़ा राजा, हाथी दादा, बंदर जी, नन्हीं-नन्हीं चींटीं जी, नहलाती क्यों, सूरज चाचू, चंदा मामा, रंग-बिरंगी पतंगें, दादी जी व रेल जैसे प्रतिमानों को केंद्र बनाकर बाल मन में उठने वाले प्रश्नों व उनके उत्तर बालक बनकर बाल गीतों के माध्यम से दिए हैं। प्रकृति जिसका संपूर्ण आनंद आज हम शहरी सभ्यतानुसार अपने नवागंतुकों को नहीं दे पार रहे हैं व प्रकृति व मानव के बीच बढ़ती इस खाई को पाटने का प्रयास गीतकार द्वारा किया गया है। जब कभी बच्चे पार्क, चिड़ियाघर या किसी पशु-पक्षी को देखते हैं तो अचानक चहक उठते हैं। वे दादा-दादी, मम्मी-पापा से प्रत्येक चीज को देखने के बाद एक ही सवाल करते हैं कि ''मम्मी ये क्या है? इससे क्या होता है? यह ऐसा क्यों है? यह ऐसा क्यों करता है, आदि-आदि। बच्चों के इन्हीं प्रश्नों के उत्तर गीतकार ने उचित प्रतिमानों द्वारा एक बालसुलभ, मनोरंजक व शिक्षाप्रद शैली में दिलवाया है।

बच्चों को सबसे बड़ी परेशानी नहाने में होती है। नहाते वक्त बच्चा बड़ी जोरों से रोता व दादी से सवाल करता है—

''दादी जी, दादी जी, मेरी प्यारी दादी जी,
रोज हमें नहलाती क्यों,
ना नुकर करें बहलाती क्यों?
नंगु-नंगु करके हमें,
टब में रोज बिठाती क्यों?''

इसी तरह बिल्ली को देखकर जो रोमांच बालमन में पैदा है, उसकी एक बानगी देखिए—

''बिल्ली मौसी, बिल्ली मौसी,
बिन पूछे घर में घुस आई।
सफाचट्ट कर गई जलेबी,
मेरी सारी दूध मलाई।
हमें भूख लगने वाली है,
मम्मी हमें खिलाएंगी क्या?
दादी हमें पिलाएंगी क्या?''

पुस्तक : हनु-गनु की रेल चली...
गीत : प्रदीप जैन
प्रकाशक : अंकित प्रोडक्शंस, ए-115, जोशी कॉलोनी, आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

इसी प्रश्न का उत्तर बिल्ली ने कितने प्रेम से दिया है जरा देखिए—

''हनु-गनु तुमने पूछा है,
तो तुमको बतलाती हूं।
भरा भगौना रखा फ्रिज में,
फ्रिज खोलो दिखलाती हूं।''

प्रत्येक गीत में बालक के हर प्रश्न का उत्तर एक सीख के साथ दिया गया है। बालक घोड़े को देखकर प्रश्न करता है—

''घोड़ा राजा, घोड़ा राजा,
हमें बताओ इतना तुम,

इतने ताकतवर हो कैसे,
सरपट तेज दौड़ते तुम?''

प्रश्न का उत्तर स्वयं 'घोड़े राजा' द्वारा एक सीख के रूप में दिया जाता है—

''जब भी मालिक देता है,
हम चबा-चबाकर खाते हैं,
चने सख्त होते हैं कितने,
खाते-खाते पच जाते हैं।
जब भी मम्मी खाना दे,
तुम खूब चबाकर खाओगे,
सच कहता हूं हनु-गनु,
तुम ताकतवर बन जाओगे।''

इसी तरह हाथी जैसे विशाल जानवर की सूंड व पूंछ को देखकर बच्चों के मन में किस प्रकार की जिज्ञासा व प्रश्न उठते हैं, उनका उत्तर स्वयं 'हाथी दादा' किस प्रकार देते हैं, देखिए—

''प्रश्न तुम्हारा जो उलझा है,
अभी उसे सुलझाते हैं।
नहीं सूंड होती गर लंबी,
कैसे पेड़ पत्तियां खाते?
पूंछ जरा-सी भी ना होती,
बच्चे 'शेम-शेम' चिल्लाते।''

इस जवाब को सुनकर बच्चे तो बच्चे उनके दादा-दादी भी ठहाका मारे बगैर नहीं रह सकते।

पर्यावरण असंतुलन व अंधाधुंध शहरीकरण के चलते आज सबसे अधिक परेशान हमारे 'बंदर मामा' हैं, जो पेट की भूख मिटाने के लिए जबरन घरों में घुसकर जो भी खान-पान की वस्तु मिले उस पर हाथ साफ कर जाते हैं। यही देखकर हनु-गनु 'बंदर मामा' से प्रश्न करते हैं जिसका उत्तर 'बंदर मामा' एक सीख के तौर पर उन्हें देते हैं—

''हनु-गनु तुमने पूछा है,
तो तुमको बतलाते हैं।
घर में घुसकर फल खाने का,
राज तुम्हें बतलाते हैं।
पहले यहां पेड़ होते थे,
जहां तुम्हारे घर हैं अब।
डाली-डाली कूद फांदकर,
बंदर फल खाते थे तब।
भूखे पेट नहीं रह सकते,
खाना बहुत जरूरी है।
घर में घुसकर फल खाना,
हम बंदर की मजबूरी है।''

पर्यावरण, प्रदूषण व शहरीकरण के दुष्परिणाम उक्त पंक्तियों में द्रष्टव्य होते हैं। जिसका समाधान सोचने के लिए बाल मन को एक प्रश्न व उसका उत्तर भी दिया गया है।

बच्चों की सर्वाधिक प्रिय वस्तु 'चंदा मामा' को देख बालक पुरानी किस्सागोइयों को नए अंदाज में किस प्रकार बयां करते हैं, एक बानगी देखिए—

''गोल मटोलू चंदा मामा,
नहीं पास तेरे पाजामा।
नंगू-नंगू शरमाते हो,
दिन उगते ही छुप जाते हो।
ऐसा करना चंदा मामा,
हनु-गनु के घर आ जाना।
दादी मेरी पहना देगी,
रंग-बिरंगा पेंट-पाजामा।''

इसी प्रकार रेल जो केवल एक इंजन के होते हुए रेल नहीं बनती, बल्कि जब इंजन में डिब्बे जोड़े जाते हैं, तभी वह रेल कहलाती है। हनु-गनु की रेलगाड़ी में कितने डिब्बे जुड़े हुए हैं यह पुस्तक के आवरण से ही द्रष्टव्य होता है। मानव परिवार भी एक रेलगाड़ी ही है, जो कई डिब्बों के जुड़ने से बनता है। इसी रेलगाड़ी में यदि वात्सल्य व प्रेम परिपूर्ण रूप से भरा हो तो उस रेलगाड़ी को चलने में कभी रुकावट नहीं आएगी। इसी बात को सिद्ध करने के लिए ही गीतकार ने गीतों का संचयन किया है। किसी भी पारिवारिक त्योहार को एक यादगार अवसर बनाने हेतु आज हम वीडियो, सीडी व एलबम बनाते हैं परंतु गीतकार ने अपने इन खुशहाल क्षणों को एक पुस्तक का रूप देकर नया प्रयोग किया है।

कुल मिलाकर यह लघु पुस्तक पूर्ण रूप से शिक्षाप्रद व सरल भाषा से युक्त है। विषयानुसार चित्रों एवं कलाकृतियों का संचयन अत्यंत कलात्मक ढंग से किया गया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

लेखकों से निवेदन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' में सुधी पाठकों और रचनाकारों के मौलिक और अप्रकाशित लेख, कहानी, कविताएं आमंत्रित हैं। पत्रिका के आगामी अंकों में लेख भेजते समय लेखक इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि वे अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी लेख के साथ भेजें। आपका परिचय आपकी रचना के साथ प्रकाशित किया जाएगा। बिना संक्षिप्त जीवन परिचय के हमारे लिए आपका लेख पत्रिका में प्रकाशित करना संभव नहीं होगा।

हमें अपने पाठकों को यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि 'गगनांचल' का मई-जून, 2015 अंक 'प्रवासी हिंदी साहित्य' पर आधारित होगा। प्रवासी हिंदी साहित्य व लेखकों से जुड़े अनछुए पहलुओं को अगर आप हमारे पाठकों के साथ साझा करना चाहते हैं, तो यथाशीघ्र उनके जीवन और साहित्य से संबंधित लेख हमारे पास भेजें। लेख भेजते समय उससे संबंधित चित्र अवश्य भेजें। रचना भेजते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि वह पत्रिका के स्तर और गरिमा के अनुरूप हो। रचना 3000 शब्दों के बीच हो, उससे अधिक नहीं। कृपया अपने लेख 30 अप्रैल, 2015 से पहले भेजें।

कृपया अपने लेख एवं सुझाव निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

संपादक, गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

एवं

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी), भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310
ई-मेल : **ddgas.iccr@nic.in** तथा **pohindi.iccr@nic.in**

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भातीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

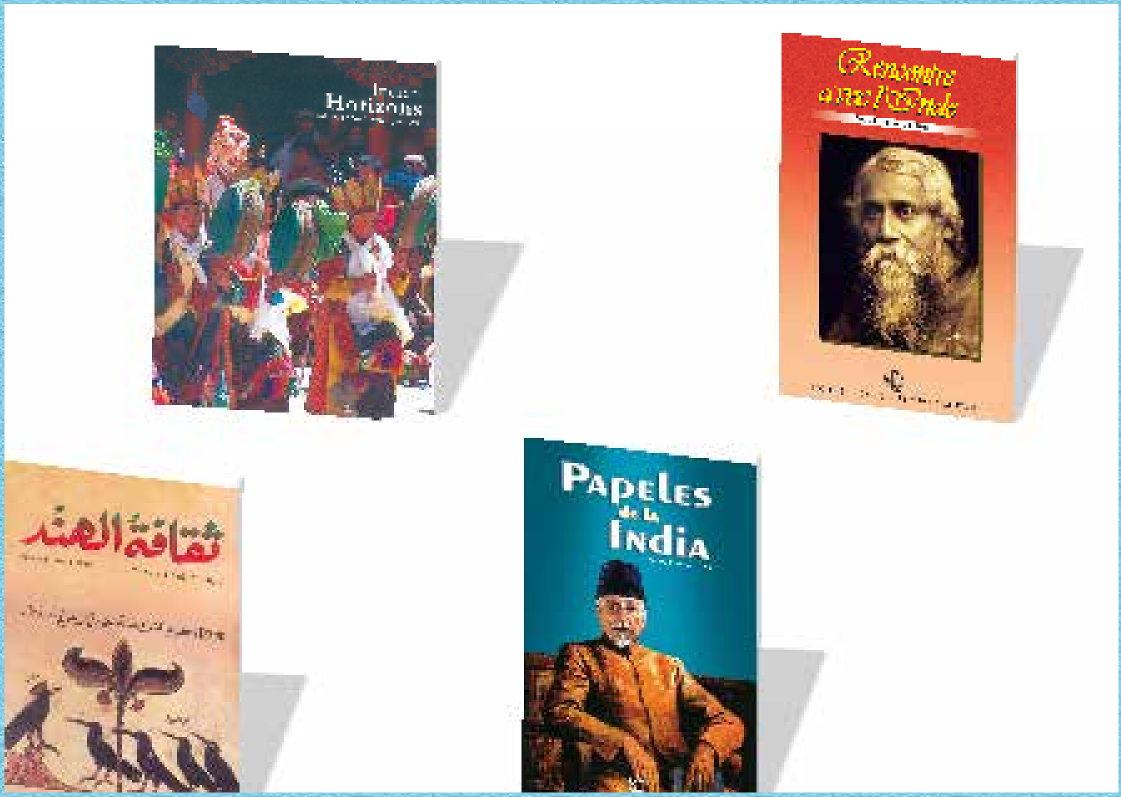

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

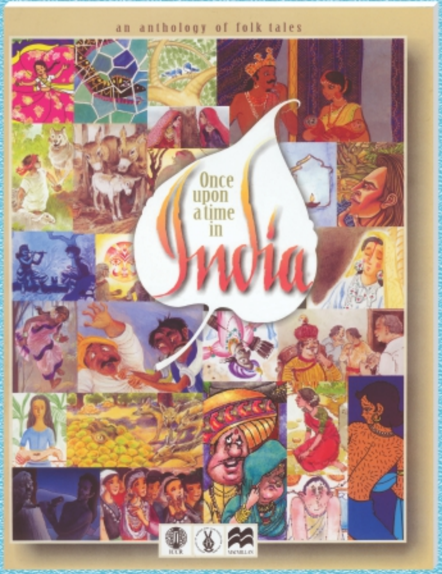

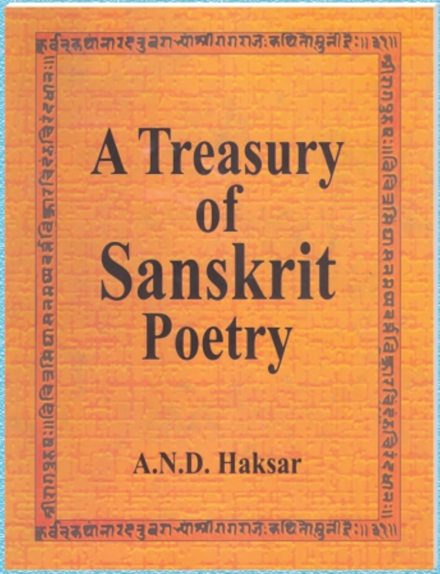

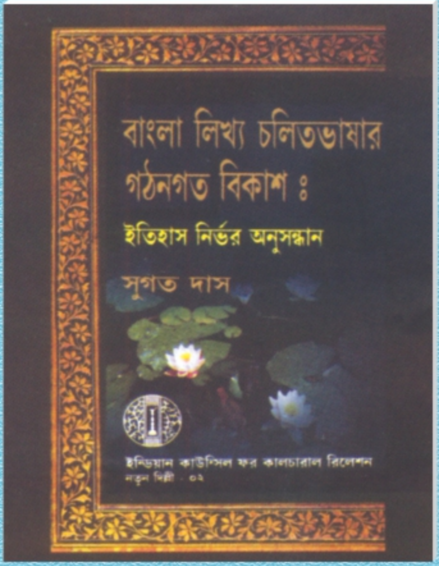

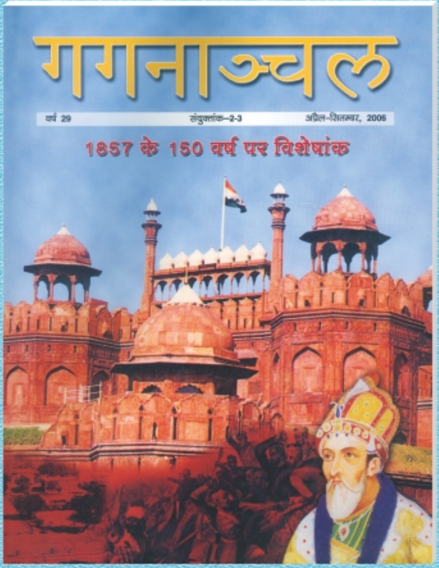

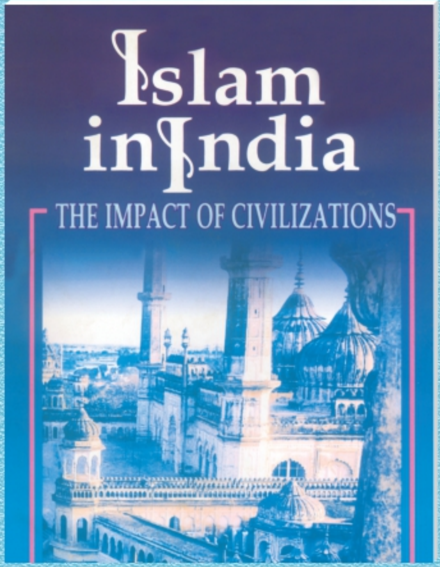

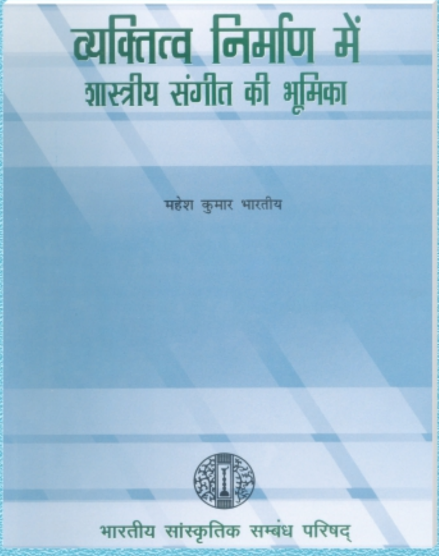

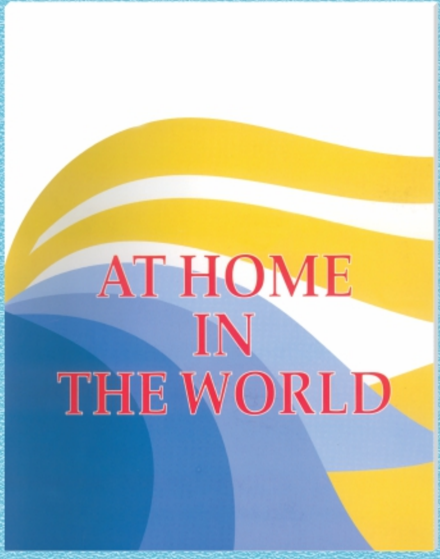

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

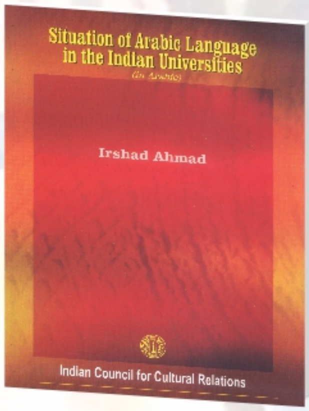

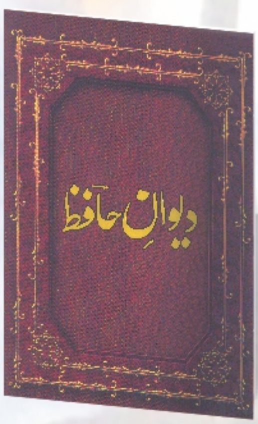

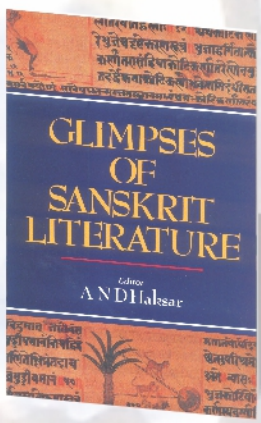

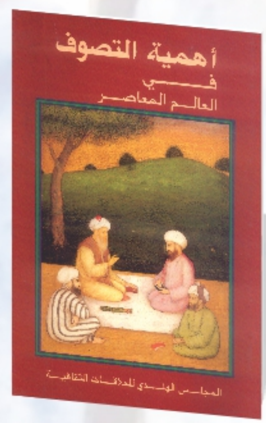

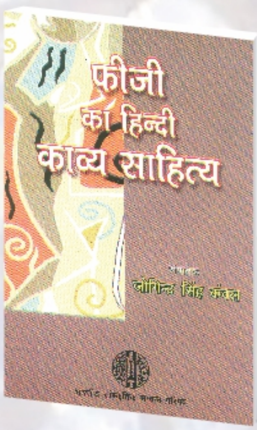

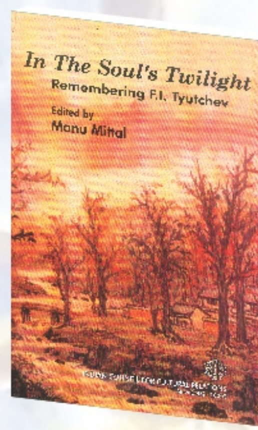

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in